इकाई–1 : संरचनात्मक संगठन, कोशिका संरचना एवं कार्य
(Structural Organisation, Structure and Functions of Animal Cell)

संरचना

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 मानव शरीर के विभिन्न तन्त्र एवं उनके अवयव
1.2.1 आवरण तंत्र
1.2.2 अस्थि तंत्र
1.2.3 पेशी तंत्र
1.2.4 तंत्रिका तंत्र
1.2.5 अंत:स्रावी ग्रन्थि तंत्र
1.2.6 रक्त परिवहन तंत्र
1.2.7 लसीका तंत्र
1.2.8 श्वसन तंत्र
1.2.9 पाचन तंत्र
1.2.10 उत्सर्जन तंत्र
1.2.11 प्रजनन तंत्र
1.3 जीवन के लक्षण
1.3.1 चयापचय
1.3.2 उत्तेजनात्मकता
1.3.3 प्रवाहकता
1.3.4 संकुचनशीलता
1.3.5 वृद्धि
1.3.6 वर्गीकृत विभेदन
1.3.7 प्रजनन
1.4 मानव शरीर की स्थूल योजना
1.4.1 सिर
1.4.2 ग्रीवा
1.4.3 धड़
1.4.4 उर्ध्वशाखाएं
1.4.5 अधोशाखाएं
1.5 शरीर के प्रमुख तल
1.5.1 सममितार्धी तल
1.5.2 किरीटी तल
1.5.3 क्षैतिज तल
1.6 कोशिका
1.6.1 कोशिका भित्ति
1.6.2 कोशिका भित्ति से होकर पदार्थों का आवागमन
1.6.3 कोशिका द्रव्य
1.6.4 कोशिकीय अंगक
1.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.0 उद्देश्य

तृतीय पत्र के प्रथम पाठ को पढ़कर आप जान सकेंगें-

1. शरीर का संगठनात्मक स्तर क्या है?
2. मानव शरीर के विभिन्न तंत्र कौन-कौन से हैं?
3. जीवन के लक्षणों को समझ सकेंगे।
4. मानव शरीर की स्थूल योजना को समझ सकेंगे।
5. शरीर के प्रमुख तंत्र कौन से हैं?
6. शरीर की सबसे छोटी इकाई कोशिका को जान सकेंगे।
7. डी.एन.ए. व आर.एन.ए. को समझ सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

संरचना की दृष्टि से मानव शरीर के कई संगठनात्मक स्तर होते हैं जो आपस में विभिन्न रूप में एक दूसरे से सम्बद्ध होते हैं। प्रमुख संगठनात्मक स्तर इस प्रकार हैं—

1. रासायनिक स्तर (Chemical Level)
2. कोशिकीय स्तर (Cellular Level)
3. ऊतकीय स्तर (Tissue Level)
4. अंगीय स्तर (Organ Level)
5. तंत्रीय स्तर (System Level)
6. शरीर स्तर (Organismic Level)

शरीर का प्राथमिक स्तर रासायनिक स्तर होता है जिसमें वे सारे आवश्यक रसायन आते हैं जो शरीर की रचना के लिए आवश्यक होते हैं तथा जो जीवन (Life) चलाने के लिए अपरिहार्य होते हैं। मूल रूप से शरीर का निर्माण उन्हीं तत्त्वों से होता है जिनका विवरण रसायन शास्त्र की तत्त्वसारिणी में उपलब्ध तत्त्वों के परमाणु मिलकर अणु बनाते हैं और अनेक अणु मिलकर अलग-अलग तरह के रसायन बनाते हैं, जो आगे चलकर विभिन्न प्रकार की जैविक रचनाओं का निर्माण करते हैं। उदाहरण के लिए ऑक्सीजन और हाइड्रोजन नामक दो तत्त्व आपस में संयोग करके पानी बनाते हैं और हमारे शरीर का एक बड़ा भाग पानी ही होता है।

अनेक रासायनिक पदार्थ जब एक निश्चित और नियमित रूप में आपस में मिलते हैं तो संगठन के अगले स्तर का निर्माण करते हैं, जिसे कोशिकीय (Cellular) स्तर कहते हैं। कोशिका (Cell) इस स्तर की इकाई होती है कोशिका ही किसी जीव की ऐसी प्राथमिक इकाई होती है जो रचना एवं क्रिया की दृष्टि से परिपूर्ण होती है। जीवन के जितने भी गुण होते हैं तथा जीवन में संपादित की जाने वाली जो सारी जैविक क्रियाएँ हैं, वे सभी हर कोशिका में मौजूद होती हैं। हमारे शरीर में पाई जाने वाली अनेक प्रकार की कोशिकाओं के उदाहरण हैं— तंत्रिका कोशिका, रक्त कोशिका, मांसपेशी कोशिका आदि। हर कोशिका के मूल अवयव वैसे तो एक ही होते हैं परन्तु कार्य की दृष्टि से इनकी संरचना में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो जाता है। हर प्रकार की कोशिका की अलग-अलग रचना होती है तथा उसके अपने विशिष्ट कार्य होते हैं।

एक जैसी अनेक कोशिकाएँ आपस में संयोग करके शरीर संगठन के नये और अपेक्षाकृत उच्च स्तर का निर्माण करती हैं, जिसे उत्तक (Tissue) कहते हैं। उत्तक का निर्माण करने वाली कोशिकाएँ आपस में अपने अन्तर्कोशिकीय पदार्थ (Intercellular substance) के द्वारा जुड़ती हैं तथा उनका भ्रूणीय उद्गम (Embryological origin) एक जैसा होता है। वे सभी कोशिकाएँ मिलकर एक विशेष कार्य संपादित करती हैं।

एपीथीलियम (Epithelium) नामक उत्तक की म्यूकस कोशिकाऐं म्यूकस नामक स्राव का स्रवण करती हैं जो भोजन के ग्रास को चिकना बनाता है जिसके परिणाम स्वरुप भोजन अपनी यात्रा में आसानी से आगे बढ़ता रहता है। पेराइटल कोशिकाएँ आमाशय में अम्ल का उत्पादन करती हैं। जाइमोजेनिक कोशिकाऐं ऐसे एन्जाइम का उत्पादन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

करती हैं जो प्रोटीन के पाचन के लिए आवश्यक होता है। पेशी उत्तक, संयोजी उत्तक तथा तंत्रिका उत्तक शरीर में पाये जाने वाले कुछ अन्य उत्तक हैं।

विभिन्न प्रकार के उत्तक आपस में मिलकर विशिष्ट रचना बनाते हैं जिन्हे अंग कहा जाता है। अंगों के इस स्तर को संगठन का अंगीय स्तर (Organ Level) कहा जाता है। एक अंग विशेष में दो या दो से अधिक उत्तक होते हैं, उत्तक का अलग–अलग कार्य होता हैं तथा हर उत्तक आकार–प्रकार में भी एक दूसरे से भिन्न दिखाई देता है। उदाहरण के लिए हृदय, यकृत, फुफ्फुस, मस्तिष्क आदि।

अनेक अंगों से मिलकर तंत्रीय स्तर (System level) का निर्माण होता है। एक तंत्र में बहुत सारे अंग होते हैं जो सभी संयुक्त रूप से एक ही कार्य में अपना–अपना योगदान देते हैं। उदाहरण के लिए पाचन तंत्र। ग्रासनली भोजन को आमाशय तक ले जाने का रास्ता देती है; आमाशय में भोजन का पाचन होता है; छोटी आंत में भोजन का अवशोषण होता है; बड़ी आंत में पानी तथा आवश्यक लवणों का अवशोषण होता है तथा मलाशय में मल एकत्र होता है जो समय–समय पर बाहर निकाल दिया जाता है। इसके अतिरिक्त यकृत में पित्त का निर्माण होता है; अग्नाशय में अग्नाशय रस बनता है। ये तथा कई अन्य रस भोजन को पचाने में तथा चयापचय की क्रिया में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

1.2 मानव शरीर के विभिन्न तंत्र एवं उनके अवयव

शरीर संगठन का सबसे उच्च स्तर जीव शरीर (organismic level) होता है। इसमें शरीर के सारे अवयव मिलकर एक दूसरे के साथ तालमेल बिठाते हुए एक जीव रूपी ईकाई के रूप में कार्य करते हैं।

1.2.1 आवरण तंत्र (Integumentary System)

अंग:– त्वचा तथा इसके सहयोगी अवयव— रोम, नाखून, स्वेद एवं तैल ग्रन्थियाँ।

कार्य:– शरीर के ताप नियन्त्रण में सहयोग, सुरक्षा, पसीने के रूप में त्याज्य पदार्थों का उत्सर्जन, विटामिन डी का उत्पादन तथा बाह्य उद्दीपनों जैसे स्पर्श, दाब एवं दर्द के प्रति संवेदनशीलता।

1.2.2 अस्थि तंत्र (Skeletan System)

अंग:– शरीर की समस्त अस्थियाँ एवं उपास्थियाँ तथा अस्थि संधियाँ।

कार्य:– शरीर का ढांचा, शरीर की सुरक्षा तथा रक्त कोशिकाओं के निर्माण में सहयोग।

1.2.3 पेशी तंत्र (Muscular System)

अंग:– शरीर की अस्थिपेशियाँ तथा अन्य पेशियाँ।

कार्य:– शरीर की गति एवं विभिन्न शारीरिक मुद्राओं का नियमन तथा ऊष्मा का उत्पादन।

1.2.4 तंत्रिका तंत्र (Nervous System)

अंग:– मस्तिष्क, सुषुम्ना एवं तंत्रिकाएँ।

कार्य:– शरीर की समस्त गतिविधियों का नियंत्रण।

1.2.5 अंतःस्रावी ग्रन्थि तंत्र (Endocrine System)

अंग:– वे समस्त ग्रन्थियाँ जो हॉर्मोन नामक रसायनों का स्राव करती हैं।

कार्य:– हॉर्मोन के द्वारा शारीरिक गतिविधियों का नियोजन।

1.2.6 रक्त परिवहन तंत्र (Cardiovascular System)

अंग:– हृदय, रक्त, रक्त वाहिकाएँ।

कार्य:– समस्त कोशिकाओं को ऑक्सीजन एवं पोषक तत्त्व उपलब्ध कराना, कार्बन–डाइ–ऑक्साइड का उत्सर्जन, शरीर में अम्ल–क्षार संतुलन बनाये रखना, रोग प्रतिरोध बनाये रखना, शारीरिक ताप के नियंत्रण में सहायता तथा रक्त का थक्का जमाकर अनावश्यक रक्त स्राव को रोकना।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.2.7 लसीका तंत्र (Lymphatic System)

अंग:- लसीका द्रव, लसीका वाहिकाएँ एवं अन्य लसीका ऊतक।

कार्य: शरीर के आन्तरिक द्रव को छानना, श्वेत रक्त कणिकाओं का संरक्षण तथा रोगों से सुरक्षा।

1.2.8 श्वसन तंत्र (Respiratory System)

अंग:- नासाद्वार, नासिका, श्वासनली एवं फेफड़े।

कार्य:- शरीर को ऑक्सीजन पहुंचाना, कार्बन-डाइ-ऑक्साइड बाहर निकालना तथा अम्ल-क्षार नियन्त्रण में सहायता करना।

1.2.9 पाचन तंत्र (Digestive System)

अंग:- आहार नाल (मुखगुहा, ग्रासनली, आमाशय, पक्वाशय, छोटी आंत, बड़ी आंत, मलाशय एवं मलद्वार) तथा सहायक अंग (लारग्रंथियाँ, यकृत, पित्ताशय एवं अग्नाशय)

कार्य:- भोजन का यान्त्रिक एवं रासायनिक पाचन एवं अवशोषण तथा अनपचे पदार्थों को मल के रूप में बाहर निकालना।

1.2.10 उत्सर्जन तंत्र (Excretory System)

अंग:- गुर्दे, मूत्राशय तथा मूत्रनलिका।

कार्य:- रक्त से त्याज्य पदार्थों को अलग करना तथा रक्त की रासायनिक संरचना का नियमन तथा अम्ल-क्षार नियन्त्रण में सहायता करना।

1.2.11 प्रजनन तंत्र (Reproductive System)

अंग:- पुरुषों में पुरुष जननांग—वृषण (Testes), अधिवृषण (Epididymis), शुक्रवाहिका, शुक्राशय, पुर:स्थ (Prostate), शिश्न (Penis)। स्त्रियों में स्त्री जननांग—भग (Vulva), डिम्बग्रंथि (Ovary), गर्भाशय (Uterus) एवं स्तन।

कार्य:- संतानोत्पत्ति।

1.3 जीवन के लक्षण

हर जीव के अन्दर कुछ ऐसे विशेष लक्षण होते हैं, जो उसे मृत वस्तुओं (Nonliving objects) से अलग करते हैं। यह भी कहा जा सकता है कि कुल मिलाकर कुछ लक्षण या गुण विशेष धारण करने वाले जीवित होते हैं और शेष मृत। इस संदर्भ में मनुष्य में पाये जाने वाले लक्षण (गुण) विशेष निम्न हैं—

1.3.1 चयापचय (Metabolism)

शरीर में होने वाली रासायनिक प्रक्रियाओं के समूह को चयापचय कहते हैं। इसे दो भागों में विभक्त किया जाता है—

(i) अपचय (Catabolism)— इस प्रथम चरण में जीवन चलाने के लिए आवश्यक ऊर्जा उपलब्ध कराई जाती है। इसमें भोजन एवं श्वसन प्रक्रिया के द्वारा खाद्य पदार्थों से ऊर्जा का उत्पादन तथा उस ऊर्जा को शरीर के लिए उपलब्ध कराने से सम्बन्धित सभी रासायनिक प्रक्रियाऐं सम्मिलित हैं।

(ii) उपचय (Anabolism)— इस प्रक्रिया में अपचय क्रिया के द्वारा उपलब्ध कराई गई ऊर्जा का उपयोग शरीर के लिए उपयोगी विभिन्न रसायनों के उत्पादन में किया जाता है और इन्हीं रसायनों के द्वारा शरीर के विभिन्न अवयवों का निर्माण भी किया जाता है। भोजन ग्रहण करना, पाचन, अवशोषण, श्वसन, रासायनिक स्राव तथा उत्सर्जन ये सभी चयापचय क्रिया के उदाहरण हैं।

1.3.2 उत्तेजनात्मकता (Excitability)

इस गुण के अन्तर्गत शरीर अपने आस-पास के वातावरण में होने वाले किसी भी परिवर्तन का अनुभव कर सकता है। वातावरण में होने वाले परिवर्तनों तथा प्रकाश, दबाव, शोर तथा रासायनिक तत्त्वों के उद्दीपनों के परिणाम स्वरूप शरीर में आवश्यक परिवर्तन करके स्वास्थ्य की सुरक्षा की जाती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1.3.3 प्रवाहकता (Conductivity)

इस विशेषता के द्वारा शरीर के एक हिस्से में स्थित कोशिका के द्वारा प्राप्त की गई सूचनाओं तथा उद्दीपनों की जानकारी दूसरे हिस्से तक पहुंचाई जा सकती है। यह कार्य विशेष रूप से विकसित एवं विशेष संरचना वाली तंत्रिका कोशिकाओं द्वारा किया जाता है।

1.3.4 संकुचनशीलता (Contractility)

इस विशेषता के कारण शरीर की एक कोशिका या उसका कुछ अंश, कोशिकाओं के समूह विशेष सक्रिय रूप से ऐसे कार्यबल को उत्पन्न कर सकते हैं जिसकी वजह से विभिन्न उद्दीपनों के फलस्वरूप शरीर के विभिन्न अंग आवश्यकतानुसार गति करते हैं। शरीर की पेशियों में यह गुण सर्वाधिक प्रबल होता है। मानव शरीर की गति मूल रूप से इसी गुण के कारण होती हैं।

1.3.5 वृद्धि (Growth)

आकार में बढ़ोतरी होने को ही वृद्धि कहा जाता है। यह कार्य दो प्रकार से हो सकता है— कोशिकाओं की संख्या में वृद्धि के द्वारा अथवा कोशिकाओं के आकार में वृद्धि के द्वारा। मनुष्य के शरीर में यह गुण अत्यन्त प्रखर होता है। उसी के परिणाम स्वरूप एक नन्हा शिशु वृद्धि करके प्रौढ़ मानव बन जाता है।

1.3.6 वर्गीकृत विभेदन (Differentiation)

वर्गीकृत विभेदन गुण के द्वारा एक साधारण कोशिका कई विशेष कोशिकाओं में विभाजित हो जाती है तथा ये विशेष कोशिकाएँ संरचना एवं कार्य की दृष्टि से मूल कोशिका से सर्वथा भिन्न होती हैं। इस विभेदन गुण के कारण ही निषेचित अंडे से शरीर के अलग-अलग अंगों का निर्माण होता है।

1.3.7 प्रजनन (Reproduction)

प्रजनन गुण जीवन का एक प्रमुख गुण है। इस प्रक्रिया में नवीन कोशिकाओं का जन्म, मरम्मत का कार्य एवं अपनी वंशावली में वृद्धि आती है। मूलरूप से एक पीढ़ी के सारे गुण दूसरी पीढ़ी (संतान) में पहुंचाने का कार्य प्रजनन प्रक्रिया के अन्तर्गत होता है।

1.4 मानव शरीर की स्थूल योजना

बाह्य रूप से देखने पर मानव शरीर केवल एक इकाई के रूप में दिखाई देता है पर अन्दर यह अनेक तंत्रों से मिलकर बना होता है जिनका वर्णन आप पीछे देख चुके हैं। बाहरी संरचना एवं आकार प्रकार के आधार पर पूरे शरीर को निम्नलिखित पांच भागों में विभाजित किया जाता है—

1. सिर (Head)
2. ग्रींवा (Neck)
3. धड़ (Trunk)
4. उर्ध्वशाखाएँ (Upper Extremities)
5. अधोशाखाएँ (Lower Extremities)।

1.4.1 सिर (Head)

सिर के दो भाग होते हैं:—1. खोपड़ी (Skull), 2. चेहरा (Face)।

खोपड़ी अनेक छोटी-छोटी अस्थियों की बनी होती है तथा एक गोलाकार डिब्बे की तरह होती है। इसके आन्तरिक खोखले भाग को कपाल गुहा (Cranial Cavity) कहते हैं। इसी गुहा में ही हमारा मस्तिष्क सुरक्षित रहता है। खोपड़ी की कड़ी एवं मजबूत हड्डियों के कारण ही मस्तिष्क किसी भी बाहरी आघात से सर्वथा सुरक्षित रहता है। कपाल अस्थियों से जुड़ा हुआ चेहरा होता है जिसके कोटरों में आँख, कान, नाक तथा जबड़े बने होते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

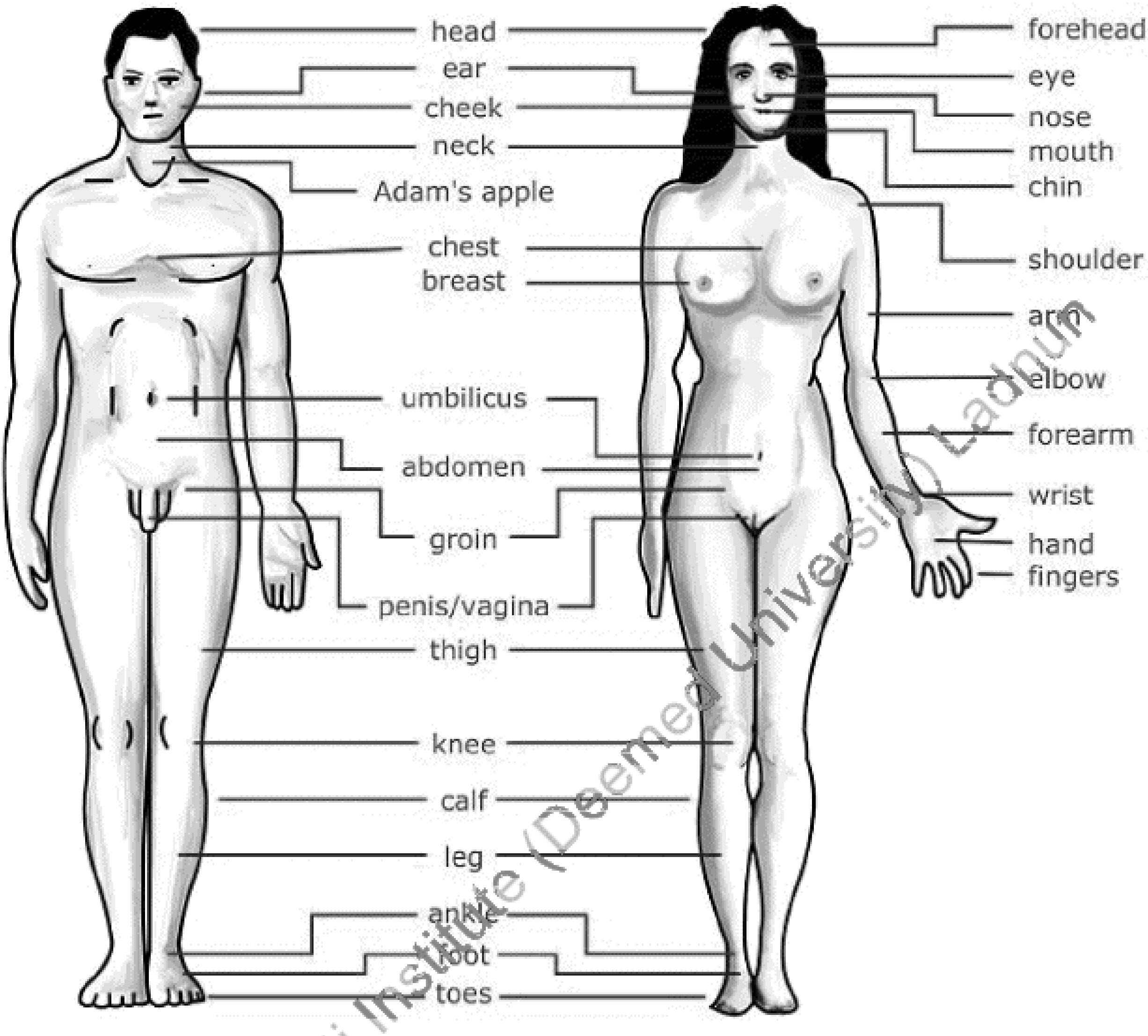

1.4.2 ग्रीवा (Neck)

यह छोटी-छोटी अस्थियों एवं मांसपेशियों के संयोग से बनी हुई लचीली संरचना होती है जिसके द्वारा सिर धड़ से जुड़ा होता है। नाक से आकर फेफड़ों तक जाने वाली श्वास नली (Trachea) तथा मुखगुहा से आकर आमाशय तक जाने वाली ग्रासनली (Esophagus) ग्रीवा से होकर गुजरती है। ग्रीवा में आगे की तरफ श्वासनली तथा पीछे की तरफ ग्रासनली होती है। ग्रीवा के सबसे पीछे के भाग में कशेरूकाओं (Vertebra) से बना हुआ कशेरुकदंड (Vertebral Column) का प्रारंभिक भाग होता है जो ग्रीवा को मजबूती प्रदान करता है। मस्तिष्क से निकलकर नीचे की ओर जाने वाली सुषुम्ना (Spinal Chord) मेरुदंड के अन्दर से होकर जाती है।

1.4.3 धड़ (Trunk)

यह शरीर के मध्य का सबसे बड़ा और भीतर से खोखला भाग है जिसके अन्दर सभी महत्त्वपूर्ण अंग स्थित होते हैं। धड़ डायाफ्राम पेशी (Diaphragm Muscle) के द्वारा दो भागों में विभक्त होता है। ऊपर वाले भाग को वक्ष (Thorax) तथा निचले भाग को उदर (Abdomen) कहते हैं। सम्पूर्ण वक्ष पीछे की तरफ से मेरुदंड तथा आगे की ओर पसलियों (Ribs), उरोस्थि (Sternum) एवं अंसमेखला (Pectoral Girdle) से सुरक्षित रहता है। ये सारी हड्डियाँ मिलकर एक पिंजरे का रूप लेती हैं। इसी पिंजरे में फेफड़े, हृदय आदि अंग स्थित रहते हैं। उदर में सामने से अस्थियाँ न होने के कारण यह ऊपर से मुलायम दिखाई देता है। इसके ऊपर पेशियों का बैंड

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

होता है तथा इसके अन्दर यकृत, अग्नाशय, गुर्दे एवं आंतें स्थित होती हैं। उदर के सबसे निचले हिस्से में, जिसे श्रोणि कहते हैं, मूत्राशय तथा जननांग स्थित होते हैं।

1.4.4 उर्ध्वशाखाऐं (Upper Extremities)

धड़ के सबसे ऊपरी भाग से दो शाखाऐं निकलकर नीचे लटकती हैं। बायीं शाखा को बांया हाथ तथा दाहिनी शाखा को दाहिना हाथ कहते हैं। धड़ के उस भाग को, जहाँ से ये शाखाऐं निकलती हैं, कन्धा कहते हैं। प्रत्येक शाखा को भुजा (Arm), कोहनी (Elbow), कलाई (Wrist) एवं उंगलियाँ में विभाजित किया जा सकता है। हर हाथ में पांच अंगुलियाँ होती हैं जिसके सर्वग्र भाग में नाखून होता है। कन्धा, कोहनी, कलाई एवं उंगलियाँ ऐसे विशिष्ट अस्थि-सन्धियों से सुसज्जित होते हैं जो आवश्यकता के अनुरूप शरीर की विभिन्न गतिविधियों में उसकी सहायता करते हैं।

1.4.5 अधोशाखाऐं (Lower Extre-mities)

धड़ के निचले हिस्से से दो शाखाऐं निकलती हैं जिन्हें दायाँ और बायाँ पैर कहते हैं। दोनों पैर धड़ की अस्थि श्रोणिमेखला से जुड़े होते हैं। प्रत्येक पैर को जांघ (Thigh), घुटना (Knee), पाँव तथा तलवा में विभाजित किया जाता है। दोनों पैरों में भी पांच-पांच अंगुलियां होती हैं जिनके सिरों पर नाखून होते हैं।

1.5 शरीर के प्रमुख तल (Body Planes)

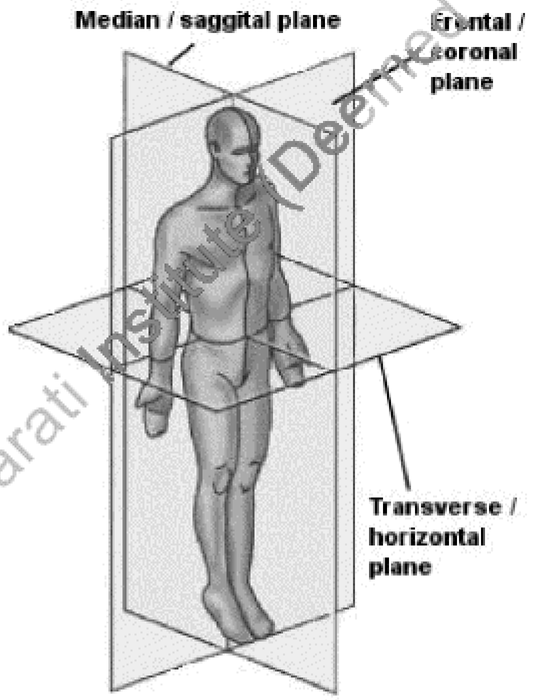

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

स्थूल शरीर की बाह्य संरचना को अलग-अलग तल के संदर्भ में जानना भी आवश्यक होता है। वास्तव में तल ऐसी सपाट रेखाऐं हैं जिनके द्वारा शरीर को दो बराबर या छोटे-बड़े भागों में बांटा जा सकता है। शरीर रचना विज्ञान एवं शरीर क्रिया विज्ञान में इनका बार-बार उपयोग आता है इसलिए इनका विवरण यहाँ दिया जा रहा है। शरीर के मुख्य तल इस प्रकार हैं—

1.5.1 सममितार्धी तल (®gittal Plane)

ऊपर से नीचे जाने वाला ऐसा तल जो शरीर को बांये और दांये दो भागों में बांटता है। यह दो प्रकार का होता है:—(i) मध्य सममितार्धी— ऐसी तल रेखा जिसमें शरीर के दो बराबर भाग बनते हैं, (ii) परासममितार्धी— ऐसी तल रेखा जिसमें शरीर के दो भाग बनते हैं परन्तु वे आपस में बराबर नहीं होते।

1.5.2 किरीटी तल (Frontal Plane)

सममिताधीं तल के समकोण से होकर गुजरने वाली तल रेखाओं को किरीटी तल कहते हैं। इनके द्वारा खड़े शरीर को आगे-पीछे के दो भागों में बांटा जा सकता है।

1.5.3 क्षैतिज तल (Horizontal Plane)

क्षैतिज तल रेखा धरती के समानान्तर अथवा सममिताधीं तल के समकोण से होकर गुजरती है। इसके द्वारा शरीर को ऊपर-नीचे के दो भागों में बांटा जा सकता है।

1.6 कोशिका (Cell)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

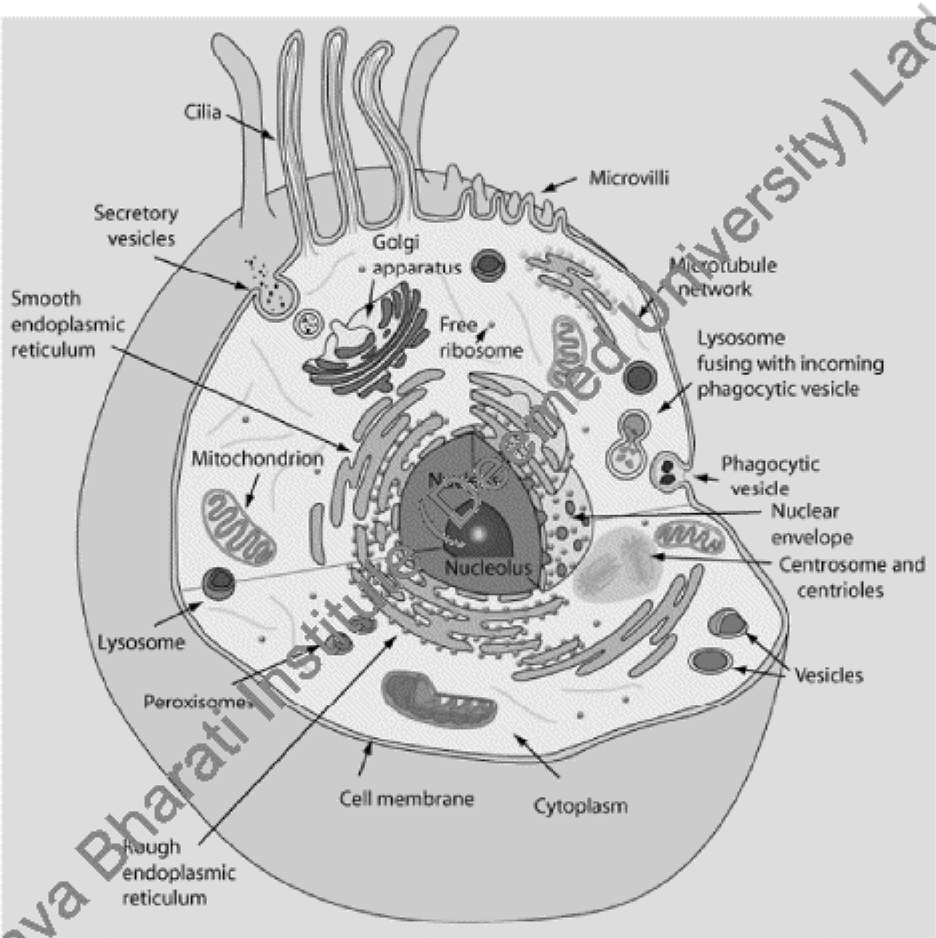

Human Cell

जिस तरह एक भवन की इकाई ईंट होती है उसी प्रकार शरीर की इकाई एक कोशिका होती है। हर कोशिका अपने आपमें जीवन के गुणों से परिपूर्ण, कार्य की दृष्टि से पूरी तरह सक्षम और संरचना की दृष्टि से परिपक्व होती है। कार्य की अपेक्षानुसार कोशिकाओं की संरचना में परिवर्तन हो जाता है और अलग-अलग तरह के अंग एवं तंत्र तैयार होते हैं। विभिन्न कोशिकाओं की संरचना में भिन्नता होते हुए भी सभी कोशिकाओं की मूल संरचना (Basic Structure) एक जैसी ही होती है और कई रचनात्मक विशिष्ट गुण उन सभी में समान होते हैं। कोशिका की संरचना एवं उसके अनेक जटिल परन्तु आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण कार्यों का अध्ययन विज्ञान की जिस शाखा के अन्तर्गत किया जाता है उसे कोशिका विज्ञान (Cytology) कहते हैं।

जन्तु एवं वनस्पतियां— दोनों ही जीवों की श्रेणी में आती हैं। इनके ऊतकों एवं अंगों का निर्माण कोशिकाओं से ही होता है। परन्तु दोनों की जीवन चर्या एवं रहन-सहन में सर्वथा भिन्नता के कारण इनकी कोशिकाओं की

संरचना में कुछ अन्तर पाया जाता है। एक जन्तु कोशिका आकार में इतनी छोटी होती है कि वह हमारी नग्न आँखों से दिखाई नहीं देती। अत: कोशिका की संरचना के अध्ययन के लिए आधुनिकतम इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शी यंत्रों का उपयोग किया जाता है।

कोशिका की संरचना के अन्तर्गत अनेक कोशिकीय अंगों को मिलाकर ही कोशिका कहा जाता हैं। एक सामान्य जन्तु कोशिका को संरचना की दृष्टि से मुख्यतया चार भागों में बांटा जा सकता है:—

1. कोशिका भित्ति (Cell Membrane)— यह कोशिका का बाह्य आवरण होता है जो कोशिका के आन्तरिक अंगों को बाह्य वातावरण से अलग करता है तथा कोशिका को एक निश्चित आकार देता है।

2. कोशिका द्रव्य (Cytoplasm)— एक ऐसा तरल रासायनिक पदार्थ जिसमें कोशिकीय अंगक (Bodies) स्थित होते हैं। यह कोशिका कला एवं नाभिक के मध्य होता है।

3. कोशिकीय अंगक (Cell Organells)— जीवद्रव्य के अन्दर पाई जाने वाली विभिन्न विशिष्ट स्थायी संरचनाएं जिनके द्वारा कोशिका की सभी महत्त्वपूर्ण क्रियाऐं सम्पादित की जाती हैं।

4. कोशिकीय अन्त:स्थ (Cellular Inclusions)— इसके अन्तर्गत वे रसायनिक स्राव तथा संग्रहीत पदार्थ आते हैं जो समय-समय पर बनते बिगड़ते रहते हैं। कोशिका के अन्दर इस तरह की रचनाऐं बराबर दिखाई देती हैं।

1.6.1 कोशिका भित्ति (Cell Membrane)

1.6.1.1 संरचना

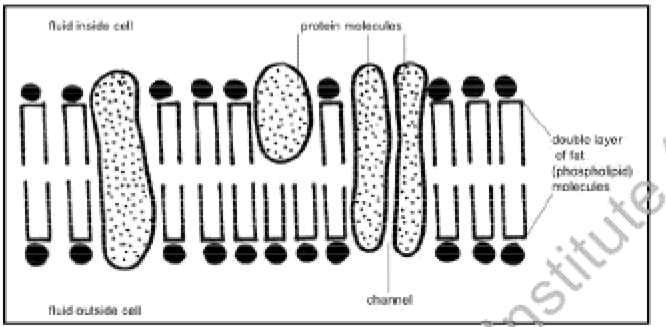

Cell Membrane (Fig. 1)

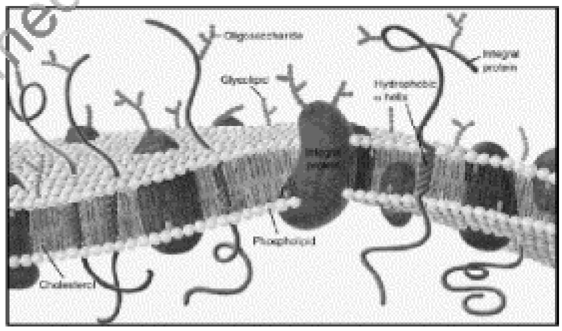

Cell Membrane (Fig. 2)

एक ऐसा झिल्लीनुमा पतला आवरण जो कोशिका के आन्तरिक अवयवों को बाह्य वातावरण से पृथक रखता है तथा कोशिका को एक निर्धारित स्वरूप प्रदान करता है, कोशिका भित्ति कहलाता है। इसकी मोटाई 4.5 nm से 10 nm के बीच होती है। इसकी रचना फास्फोलिपिड स्तर (Lipid+ Phosphorus) एवं प्रोटीन से मिलकर बनती है। कुछ अन्य रसायन जैसे कोलेस्टेराल, ग्लाइकोलिपिड और कार्बोहाइड्रेट अत्यन्त अल्प मात्रा में कोशिका भित्ति की संरचना में शामिल होते हैं। फास्फोलिपिड अणु दो समानान्तर लाइनों के रूप में होते हैं तथा इनके बीच में प्रोटीन के अणु बिखरे रहते हैं। प्रत्येक फास्फोलिपिड अणु के दो हिस्से होते हैं—1. सिर (Head) जो बाहर की तरफ निकला होता है, 2. पूंछ (Tail) अन्दर की तरफ। फास्फोलिपिड स्तर के बीच में पाये जाने वाले प्रोटीन के अणु दो तरह के होते हैं—

(1) अनिश्चित समाकल प्रोटीन (Integral Protein) : जो अपेक्षा एवं आवश्यकतानुसार स्थान बदलते रहते हैं। फास्फोलिपिड स्तर भी अत्यन्त तरल एवं परिवर्तनीय प्रकृति का होता है इसलिए समाकल प्रोटीन और फास्फोलिपिड स्तर का सम्बन्ध समुद्र में तैरती हुई बर्फ की बड़ी चट्टान की तरह ही होता है। समाकल प्रोटीन के अणु मिलकर ऐसे छिद्र या प्रवेश द्वार बनाते हैं जिनसे होकर रासायनिक पदार्थों का आवागमन कोशिका के अन्दर-बाहर हो सकता है।

(2) परिधीय प्रोटीन (Peripheral Protein) : परिधीय प्रोटीन के अणु फास्फोलिपिड स्तर से ढ़ीले जुड़े होते हैं और आसानी से अलग हो जाते हैं। ये प्रोटीन के अणु कोशिका की विभिन्न रासायनिक क्रियाओं में मदद करते हैं तथा भित्ति को मजबूती प्रदान करते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कोशिका भित्ति की संरचना को तरल मोजेइक माडल (Fluid Mosaic Model) के रूप में स्वीकार किया जाता है। इसके अन्तर्गत कोशिका भित्ति छोटे-छोटे प्रोटीन मोजेइक (Small-Small Blocks) और फास्फोलिपिड के संयोग से बनती है। कोलेस्टेराल के कारण कोशिका भित्ति का ढ़ीलापन और पारगम्यता कम होती है तथा ग्लाइकोलिपिड के कारण एक कोशिका से दूसरी कोशिका के मध्य संचार का क्रम बनता है।

1.6.1.2 कार्य

1. कोशिका भित्ति पारदर्शी एवं परिवर्ती प्रकृति की होती है और आवश्यकतानुसार अपनी आकृति में परिवर्तन कर सकती है।
2. कोशिकीय अंगों की सुरक्षा करती है।
3. इसके माध्यम से ही एक कोशिका का दूसरी कोशिका से तथा कोशिका का बाह्य वातावरण से सम्पर्क बनता है।
4. यह कोशिका के अन्दर जाने वाले तथा उससे बाहर निकलने वाले सभी रासायनिक पदार्थों के आवागमन को नियंत्रित करती है।
5. कोशिका भित्ति में ही विभिन्न प्रकार के ग्राही तत्त्व (Receptors) होते हैं जो कोशिका में प्रवेश करने वाले पदार्थों की प्रकृति के आधार पर उनके आवागमन का नियंत्रण करते हैं।
6. इसके द्वारा ही कोशिका को पोषक पदार्थ पहुंचते हैं तथा त्याज्य पदार्थ बाहर निकाले जाते हैं।
7. बाह्य उद्दीपनों को ग्रहण कर सकती है।

1.6.2 कोशिका भित्ति से होकर पदार्थों का आवागमन

कोशिका भित्ति से होकर ही विभिन्न रासायनिक पदार्थों का आवागमन होता है। इससे स्पष्ट है कि यह पारगम्य (Permeable) है। लेकिन वस्तुस्थिति कुछ भिन्न है। यह कुछ पदार्थों के अणुओं को तो अपने से होकर अन्दर-बाहर जाने देती है जबकि कुछ को नहीं। यहीं कोशिका भित्ति की विशेषता है। इसका वह गुण, जिसके कारण यह कुछ चुने हुए अणुओं को आने-जाने देती है शेष को नहीं, चयनित पारगम्यता (Selective Permeability) कहलाता है। कोशिका भित्ति का चयनित पारगम्यता गुण, इससे गुजरने वाले अणुओं के आकार, वसा (Lipid) में इन अणुओं की घुलनशीलता, उन अणुओं के आयनों पर आवेश तथा भित्ति में स्थित कैरियर अणुओं (समाकल प्रोटीन के रूप में) की उपलब्धता पर निर्भर करता है।

कोशिका भित्ति के आर-पार पदार्थों का आवागमन निम्न प्रकार से होता है—

1.6.2.1 निष्क्रिय प्रक्रियाएँ

इन प्रक्रियाओं में पदार्थ कोशिका भित्ति के आर-पार बिना किसी शक्ति के आ जा सकते हैं। इन प्रक्रियाओं में किसी प्रकार की कोशिकीय ऊर्जा खर्च नही होती। पदार्थ के अणुओं का ऐसा आवागमन उन अणुओं में निहित अपनी गतिज ऊर्जा के द्वारा ही हो जाता है। अलग से किसी प्रकार की ऊर्जा या शक्ति की आवश्यकता नहीं होती।

(क) विसरण (Diffusion):— विसरण प्रक्रिया के अन्तर्गत किसी पदार्थ के अणु या आयन अपनी अधिक सान्द्रता वाले भाग से कम सान्द्रता वाले भाग की तरफ गति करते हैं अर्थात् उस स्थान पर जहाँ उस पदार्थ के अणुओं की संख्या अपेक्षाकृत अधिक होती है वहाँ से अणु चलकर उस स्थान तक जहाँ उनकी संख्या कम हो पहुंचते हैं और जब पूरे क्षेत्र में अणुओं की संख्या लगभग बराबर हो जाती है तो इनका आवागमन बंद हो जाता है। उदाहरण के लिए जब हम एक रंगीन चाक का टुकड़ा किसी पानी से भरे बीकर में डालते हैं तो देखते हैं कि थोड़ी देर में सारा पानी रंगीन हो जाता है। ऐसा इसलिए होता है कि रंगीन चाक के अणु धीरे-धीरे गति कर सारे पानी में फैल जाते हैं। चयनित पारगम्य झिल्ली के आर-पार वसा अणुओं का जाना भी विसरण का उचित उदाहरण है। फेफड़ों से रक्त वाहिकाओं में प्रवाहित रक्त में ऑक्सीजन का मिलना और रक्त से कार्बन-डाई-ऑक्साइड का निकलकर फेफड़ों में आना भी विसरण प्रक्रिया द्वारा सम्भव होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

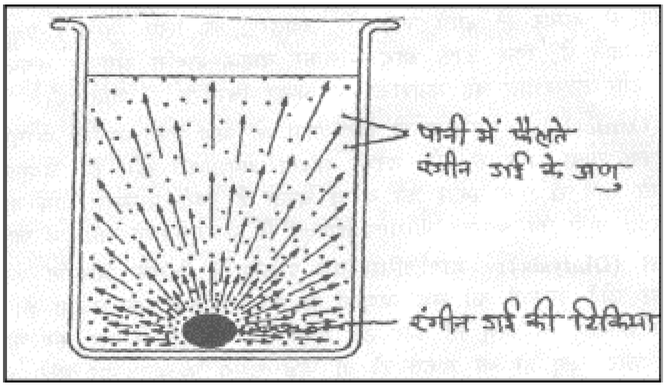

विसरण प्रक्रिया

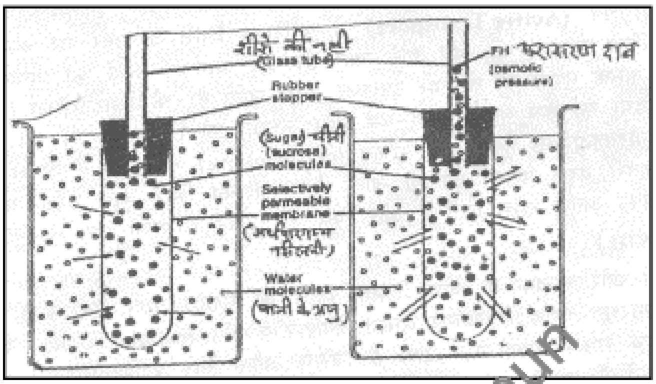

परासरण प्रक्रिया

(ख) सुगमीकृत विसरण (Facilitated Diffusion):— चयनित पारगम्य झिल्ली के आर-पार एक अन्य विसरण विधि द्वारा रासायनिक अणुओं, आयनों का आवागमन होता है जिसे सुगमीकृत विसरण कहते हैं। इसमें कोशिकाभित्ति के अन्दर निहित समाकल प्रोटीन के अणु वाहक का काम करते हैं। वे आवश्यक अणु या आयनों को भित्ति के अन्दर बने छिद्रों से अपने साथ अन्दर ले आते हैं। यद्यपि कुछ अणु आकार में छिद्रों से बड़े होते हैं फिर भी वे प्रोटीन वाहकों की मदद से अन्दर ले आये जाते हैं। उदाहरण के लिए विभिन्न प्रकार के शर्करा अणु प्रोटीन वाहकों के द्वारा पहचाने जाते हैं, फिर उनके साथ मिलकर वाहक-शर्करा संयुक्त बनाकर उसे फास्फोलिपिड स्तर में घोल दिया जाता है और तत्पश्चात वह कोशिका के अन्दर विसरित हो जाता है।

(ग) परासरण (Osmosis):— परासरण के द्वारा पानी के अणु एक चयनित पारगम्य झिल्ली के उस पार जा सकते हैं जहाँ पानी युक्त गाढ़ा घोल है और उनकी सांद्रता अपेक्षाकृत कम है। चयनित पारगम्य झिल्ली के पार पानी के अणुओं के जाते रहने से एक प्रकार का दबाव बनता है जिसे परासरण दाब कहते हैं। परासरण दाब वह दाब है जिसके कारण शुद्ध पानी का चयनित पारगम्य झिल्ली से होकर किसी घोल में जाना रूक जाता है।

(घ) डायलिसिस (Dialysis):— डायलिसिस वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत एक चयनित पारगम्य झिल्ली के द्वारा विसरण कराकर छोटे अणुओं को बड़े अणुओं से अलग किया जा सकता है। यदि हम एक ऐसा घोल ले जिसमें छोटे-बड़े हर आकार के अणु हों और उसे एक ऐसी झिल्ली में भर कर पानी से भरे बीकर में डाल दें जिससे होकर केवल छोटे अणु ही जा सकते हों तो कुछ समय पश्चात सारे छोटे अणु निकलकर पानी में आ जायेंगे और बड़े अणु थैली में ही रह जाऐंगे। इसी सिद्धान्त को कृत्रिम गुर्दा रूपी डायलिसिस मशीन में उपयोग में लाकर रक्त को शुद्ध किया जाता है। रक्त को डायलिसिस मशीन से होकर प्रवाहित कराया जाता है जिसके परिणामस्वरूप छोटे-छोटे अनुपयोगी और त्याज्य अणु रक्त से निकलकर बाहर आ जाते हैं और रक्त शुद्ध हो जाता है ओर फिर इस शुद्ध रक्त को वापस रक्त वाहिकाओं में पहुंचा दिया जाता है।

1.6.2.2 सक्रिय प्रक्रियाएँ

पदार्थों के आवागमन की इन प्रक्रियाओं में कोशिका को विशेष प्रयास करना पड़ता है तथा ए.टी.पी. के रूप में कोशिका में संचित ऊर्जा इस काम में खर्च होती है।

विभिन्न पदार्थों को कोशिका भित्ति के आर-पार ले-आने, ले-जाने के लिए कोशिका की संचित ऊर्जा का उपयोग किया जाता है तथा पदार्थ कम सान्द्रता से अधिक सान्द्रता की ओर ले जाये जाते हैं तो उसे सक्रिय प्रक्रिया (Active Process) कहते हैं। इसके अन्तर्गत सक्रिय आवागमन, फैगोसाइटोसिस, पिनोसाइटोसिस आदि प्रमुख क्रियाऐं आती हैं। **सक्रिय आवागमन** (Active Transport) में कोशिका भित्ति के आर-पार कम सान्द्रता युक्त रसायनों के अणु अपेक्षाकृत अधिक सान्द्रता की ओर चले जाते हैं। इस काम में ऊर्जा की आवश्यकता होती है जो कोशिका के अन्दर ए.टी.पी नामक पदार्थ को तोड़कर उपलब्ध कराई जाती है। **फैगोसाइटोसिस** (Phagocytosis) के अन्तर्गत कोशिका भित्ति पोडिया का रूप बनाकर बड़े-बड़े ठोस अणुओं को निगल लेती है। इसे **कोशिका भक्षण**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(cell eating) भी कहते हैं। **पिनोसाइटोसिस** जिसे सेल-ड्रिंकिंग (cell drinking) भी कहते हैं के अन्तर्गत कोशिकाएँ कोशिका भित्ति की मदद से बाहरी तरल पदार्थों को पी जाती हैं। कोशिका भित्ति कुछ तरल अणुओं को चारों तरफ से घेरकर उस द्रव को अपने अन्दर खींच लेती है और फिर उसे अपने कोशिका द्रव्य में मिला लेती है।

1.6.3 कोशिका द्रव्य (Cytoplasm)

1.6.3.1 संरचना

कोशिका भित्ति और केन्द्रक के बीच स्थिति पदार्थ जो मूलतः तरल रूप में होता है कोशिका द्रव्य कहलाता है। यह ऐसा आधारभूत पदार्थ है, जिसमें समस्त कोशिकीय अंग (cellular bodies) निहित होते हैं। यह मोटा, अर्धपारदर्शी तथा खिंच सकने वाला ऐसा द्रव्य है जिसमें अनेक कोशिकीय तंतु और तथाकथित कोशिकीय कंकाल-धागे बिखरे रहते हैं। इन्हीं कंकाल-धागों के कारण ही कोशिका को एक निश्चित आकार मिलता है तथा कोशिकीय गति में भी सहायता मिलती है। इस द्रव्य की रासायनिक संरचना में 75 से 90 प्रतिशत भाग पानी तथा शेष में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा एवं कुछ अन्य अकार्बनिक पदार्थ होते हैं। कोशिका द्रव्य के बारे में यह कहा जाता है कि यथावश्यक यह अपनी रचना में परिवर्तन कर लेता है। कभी तो यह रचनाहीन दिखाई देता है और कभी संभागी (homogenous) कभी इसमें जालयुक्त रचनाऐं दिखाई देती हैं और कभी फेनदार बुलबुले जैसी गोल-गोल रचनाएँ।

1.6.3.2 कार्य

कोशिका द्रव्य ऐसा पदार्थ है जिसमें ही कोशिका के अन्दर होने वाली समस्त क्रियाऐं होती हैं। बाहर से प्राप्त विभिन्न पदार्थों को परिवर्तित करके उससे ऊर्जा प्राप्त करने का काम कोशिका द्रव्य में होता है। इसमें ही नये-नये रासायनिक पदार्थों का उत्पादन होता है। कोशिका के एक भाग से दूसरे भाग को तथा एक कोशिका से दूसरी कोशिका को विभिन्न पदार्थों को ले-आने, ले-जाने का काम कोशिका द्रव्य से होता है तथा कोशिका से विभिन्न त्याज्य पदार्थों का उत्सर्जन भी कोशिका द्रव्य के माध्यम से होता है।

1.6.4 कोशिकीय अंगक (Cell Organells)

कोशिका द्रव्य के अन्दर अनेक विशिष्ट रचनाओं वाले अंगक होते हैं। इनमें से हरेक की रचना भिन्न होती है तथा हरेक का अपना-अपना विशिष्ट काम होता है। ये सारे अंगक मिलकर कोशिका के अन्दर होने वाली जटिल जैविक क्रियाओं का सम्पादन करते हैं। एक ही द्रव्य में रहते हुए भी इनके कामों में इस तरह का तालमेल होता है कि सब अपने-अपने विशिष्ट काम एक साथ करते हैं और एक दूसरे की गतिविधियों में कोई अवरोध भी नहीं होता। प्रमुख कोशिकीय अंग इस प्रकार हैं—

1. केन्द्रक (Nucleus)
2. राइबोसोम (Ribosome)
3. अन्तर्द्रव जालिका (Endoplasmic Reticulum)
4. गाल्जी कॉम्पिलेक्स (Golgi Complex)
5. लाइसोसोम (Lysosome)
6. माइटोकॉण्ड्रिया (Mitochondria)
7. पेराक्सीसोम्स (Peroxysomes)
8. साइटोस्केलेटन (Cytoskeleton)
9. सेन्ट्रोसोम (Centrosome)

1.6.4.1 केन्द्रक (Nucleus)

कोशिका के लगभग मध्य में एक गोल अथवा अंडाकार और कुछ ठोस रचना होती है जिसे केन्द्रक कहते हैं। इसके अन्दर आनुवांशिक तत्त्व जिसे जीन (gene) कहा जाता है, भरा होता है। शरीर की बहुतायत कोशिकाओं में प्रायः एक ही नाभिक होता है। लाल रक्त कणिकाओं जैसी कोशिकाओं में नाभिक अनुपस्थित होता है जबकि कुछ कोशिकाओं, जैसे अस्थिपेशी तंतु कोशिका में एक से अधिक केन्द्रक होते हैं। इसके बाहरी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

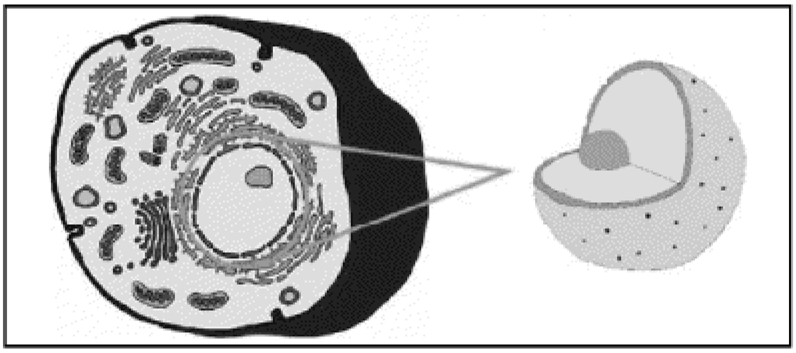

Cell Nucleus

आवरण को केन्द्रक आवरण कहते हैं जो दोहरी झिल्ली से बना होता है। इन झिल्लियों की संरचना कोशिका भित्ति की रासायनिक संरचना के समान ही होती है। केन्द्रक आवरण में पाये जाने वाले छोटे-छोटे छिद्रों के माध्यम से केन्द्रक का कोशिका द्रव्य से निरन्तर सम्पर्क बना रहता है। केन्द्रक के अन्दर एक गाढ़ा द्रव्य भरा होता है जिसे केन्द्रक द्रव्य (Nucleoplasm) कहते हैं। केन्द्रक में ही कई बार एक या एक से अधिक छोटी-छोटी गोल संरचनाऐं होती हैं जिन्हें केन्द्रकाणु (Nucleoli) कहते हैं। केन्द्रकाणु के चारों तरफ कोई आवरण नहीं होता है और ये प्राय: प्रोटीन के बने होते हैं। केन्द्रकाणु कोशिका के द्वारा नई प्रोटीन के निर्माण में योगदान करते हैं। केन्द्रकाणु के अतिरिक्त केन्द्रक द्रव्य में डी.एन.ए. (Deoxyribonucleic Acid) से बने हुए आनुवांशिक पदार्थ होते हैं। कोशिका जब सुप्तावस्था में होती है (जब विभाजन की प्रक्रिया नहीं चल रही होती), उस समय ये पदार्थ उलझे हुए धागों के गुच्छे के रूप में पड़े रहते हैं जिन्हें क्रोमेटिन (Chromatin) कहते हैं। विभाजन से ठीक पहले ये तन्तु खुलकर छोटे हो जाते हैं और छोटी छड़ का रूप लेकर अलग-अलग हो जाते हैं जिन्हें क्रोमोसोम (Chromosomes) या गुणसूत्र कहते हैं। डी.एन.ए. के अणु मिलकर एक जीन बनाते हैं और कई जीन मिलकर फिर एक क्रोमोसोम बनाते हैं। हर एक जीन एक गुण विशेष को वहन करता है। अलग-अलग जीव-जन्तुओं में क्रोमोसोम की संख्या अलग-अलग होती है। मनुष्य में कुल 46 क्रोमोसोम होते हैं जो जोड़े में रहते हैं। कुल जोड़ों की संख्या 23 होती है।

1.6.4.2 राइबोसोम (Ribosome)

राइबोसोम छोटे-छोटे दाने जैसी रचनाऐं होती हैं जो कोशिका द्रव्य में कभी एकाकी और कभी समूह में इधर-उधर बिखरे रहते हैं। इनका आकार अधिकतम 25 nm होता है तथा ये राइबोसोमल राइबोन्युक्लिक अम्ल (आर.एन.ए.) एवं कुछ राइबोसोमल प्रोटीन से मिलकर बनते हैं। इनका निर्माण केन्द्रकाणु के द्वारा होता है। आनुवांशिक निर्देश प्राप्त करके ये प्रोटीन संश्लेषण (Protien Synthesis) करते हैं। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत कई अमीनो एसिड मिलकर राइबोसोम के ऊपर एक प्रोटीन श्रृंखला का निर्माण करते हैं और पूरी श्रृंखला प्रोटीन के अणु के रूप में कोशिका को उपलब्ध कराई जाती है जो आवश्यकता पड़ने पर उपयोग में आती है। कुछ राइबोसोम ऐसे होते हैं जो सर्वथा मुक्त होते हैं तथा कोशिका के किसी अन्य अंगक से जुड़े नहीं होते उन्हें फ्री राइबोसोम (Free ribosome) कहा जाता है।

1.6.4.3 अन्तर्द्रव जालिका (Endoplasmic Rerticulum)

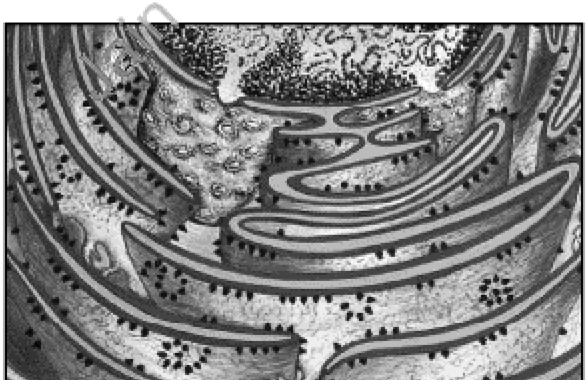

कोशिका के अन्दर दोहरी झिल्ली वाली अलग-अलग आकार की वाहिकानुमा रचनाएँ होती हैं जिन्हें अन्तर्द्रव जालिका कहते हैं। ये कुल्याओं तथा नलिकाओं से मिलकर बनी होती हैं। ये वाहिकाऐं केन्द्रक आवरण की दोहरी झिल्ली से मिली हुई होती हैं। अन्तर्द्रव जालिका दो प्रकार की होती हैं— एक वे जिनके साथ राइबोसोम के दाने लगे होते हैं, उन्हें दानेदार (रूक्ष) अन्तर्द्रव्य जालिका (Granular Endoplasmic Retieulum) कहते हैं। दूसरी वे जिनके साथ राइबोसोम नहीं होते हैं, उन्हें चिकनी अन्तर्द्रव जालिका (Agranular Endoplasmic Reticulum)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

कहा जाता है। कोशिका द्रव्य को यांत्रिक मजबूती प्रदान करने के साथ ये कई अन्य महत्त्वपूर्ण कार्यों में अपना योगदान देती हैं। ये द्रव्यों के अन्तर्कोशिकीय आदान-प्रदान में सहयोग करती हैं, कोशिका के एक हिस्से से दूसरे हिस्से को विभिन्न रासायनिक पदार्थ को पहुंचाती हैं, विभिन्न रासायनिक क्रियाओं के लिए प्लेटफार्म का काम करती हैं तथा अनेक नवनिर्मित अन्त:कोशिकीय पदार्थों को स्टोर करती हैं। गाल्जीकाम्पलेक्स के साथ मिलकर अनेक अणुओं के संश्लेषण एवं पैकिंग काम में मदद करती हैं।

1.6.4.4 गाल्जी काम्पलेक्स (Golgi Complex)

केन्द्रक के बहुत नजदीक स्थित चार से आठ चपटे झिल्ली वाले कोशों से निर्मित रचना को गाल्जी काम्पलेक्स कहते हैं। ये सारे कोश एक के ऊपर एक रखी बड़ी प्लेटों की तरह एक दूसरे के ऊपर सजे होते हैं तथा प्रत्येक को

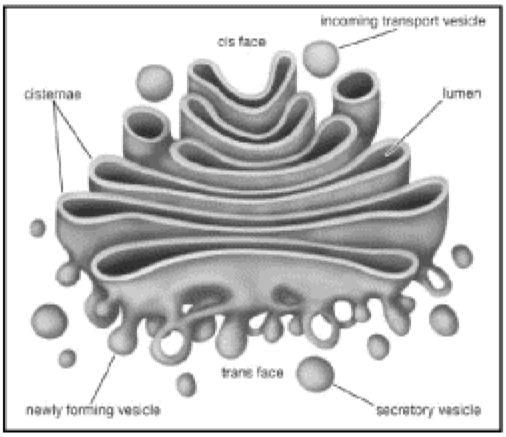

सिस्टर्नी (Cisternae) कहते हैं। सिस्टर्नी तीन प्रकार के होते हैं— सिस (Cis), मीडिएल (Medial) और ट्रांस (Trans)। मीडियल सिस्टर्नी मध्य में होते हैं तथा इसके ऊपर-नीचे क्रमश: सिस एवं ट्रांस सिस्टर्नी होते हैं। गाल्जी काम्पलेक्स का प्रमुख कार्य प्रोटीन का परिषोधन, छंटाई, पैकिंग तथा उन्हें कोशिका के उन विभिन्न हिस्सों तक पहुंचाना जहाँ उनकी जरूरत होती है। अन्तर्द्रव जालिका में निर्मित प्रोटीन युक्त छोटी-छोटी थैलियों को सिस सिस्टर्नी अपने साथ मिलाकर प्रोटीन को मिडियल सिस्टर्नी में पहुंचाती है और उसके बाद ट्रांस सिस्टर्नी के द्वारा वह दूसरे हिस्से तक भेज दी जाती है। कुछ विशेष प्रकार के वसा के उत्पादन में भी गाल्जी काम्पलेक्स का विशेष योगदान होता है। मूलरूप से अन्तर्द्रव जालिका में संश्लेषित वसा अणु भी प्रोटीन की तरह गाल्जी काम्पलेक्स में पहुंचते हैं और वहाँ उनकी अच्छी तरह पैकिंग करके कोशिका भित्ति तक पहुंचा दिया जाता है जहाँ से वे यथोचित समय पर कोशिका से बाहर भेज दिये जाते हैं।

1.6.4.5 लाइसोसोम (Lysosome)

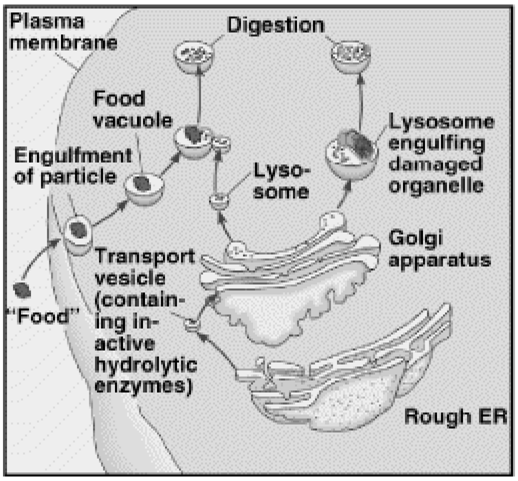

ये गाल्जी काम्पलेक्स द्वारा उत्पन्न एकहरी झिल्ली युक्त छोटी-छोटी गोलिकाएँ होती हैं। इनके अन्दर विशेष तरह के रसायन भरे होते हैं जिन्हें एन्जाइम (Enzyme) कहा जाता है। एन्जाइम ऐसे शक्तिशाली रसायन होते हैं जो अत्यन्त जटिल अणुओं को तोड़ने की क्षमता रखते हैं। यही नहीं लाइसोसोम में पाये जाने वाले एन्जाइम कई प्रकार के रोगाणुओं, जीवाणुओं तथा बैक्टीरिया आदि को निकालकर उन्हें पचाकर नष्ट कर देते हैं। अन्त:कोशिकीय पाचन (कोशिका के अन्दर होने वाली पाचन क्रिया) एवं बहिर्कोशिकीय पाचन क्रियाओं में लाइसोसोम का विशेष योगदान होता है।

1.6.4.6 माइटोकान्ड्रिया (Mitochondria)

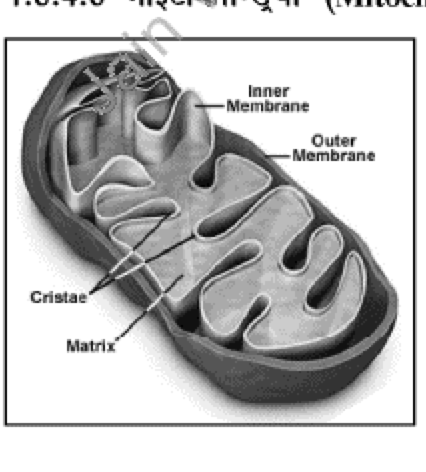

माइटोकान्ड्रिया को कोशिका का पावर हाऊस कहा जाता है। ये कोशिका के अन्दर ऊर्जा उत्पादन तथा उसके संरक्षण की द्योतक हैं। कोशिका में आये हुए कार्बन योगिकों (जैसे-गलूकोज) के ऑक्सीजन की उपस्थिति में प्रज्ज्वलन से ऊर्जा उत्पन्न होती है और वह ए.टी.पी. (Adenosine Triphosphate) के रूप में माइटोकान्ड्रिया में संरक्षित रहती है। देखने में यह छोटी, वृत्ताकार रॉड की तरह होती है तथा कोशिका में ये यत्र तत्र बिखरे रहते हैं। यह दोहरी झिल्लियों की बनी होती है जिसकी रसायनिक रचना कोशिका भित्ति से मिलती जुलती है। बाहरी झिल्ली तो चिकनी एवं सपाट होती है जबकि अन्दर वाली झिल्ली में अनेक मोड़ (Folds) होते हैं जिन्हें क्रिस्टी (Cristae) कहते हैं।

अन्दर की झिल्ली से घिरी जो गुहा (Cavity) होती है, उसे मैट्रिक्स (Matrix) कहते हैं। आन्तरिक झिल्ली के मुड़े होने के कारण मैट्रिक्स में रासायनिक क्रियाओं के लिए प्लेटफार्म के रूप में अधिक स्थान उपलब्ध होता है। इन रासायनिक क्रियाओं को, जिनसे कोशिका के लिए ऊर्जा का उत्पादन होता है, सामूहिक रूप से कोशिकीय-श्वसन (Cellular Respiration) कहते हैं। माइटोकोन्ड्रिया की यह विशेषता होती है कि वे विभाजित होकर दो या दो से अधिक अपने सदृश्य माइटोकोन्ड्रिया बना सकती हैं। जब कोशिका को अधिक मात्रा में ऊर्जा की आवश्यकता होती है तब एक माइटोकोन्ड्रिया विभाजित होकर कई माइटोकोन्ड्रिया बना लेती है और फिर सब मिलकर ए.टी.पी के रूप में ऊर्जा का उत्पादन करती हैं जिसके परिणाम स्वरूप आवश्यक ऊर्जा की आपूर्ति हो पाती है। माइटोकोन्ड्रिया विभाजन का नियंत्रण डी.एन.ए. द्वारा होता है जो इसके अन्दर ही पाया जाता है।

1.6.4.7 पराक्सीसोम (Peroxisome)

यकृत आदि में पाई जाने वाली कुछ कोशिकाओं में लाइसोसोम के सदृश्य परन्तु आकार में उनसे छोटी रचनाऐं होती हैं जिन्हें पराक्सीसोम कहते हैं। इनमें विशेष प्रकार के ऐसे एन्जाइम भरे होते हैं जो शरीर की कोशिकाओं के लिए अनेक रसायनों का नियमन करते हैं। उन्हें तत्काल विघटित करके नष्ट कर देते हैं। जिसके परिणाम स्वरूप उन रसायनों के घातक प्रभाव से शरीर की रक्षा होती है।

1.6.4.8 साइटोस्केलेटन (Cytoskeleton)

कोशिका द्रव्य में स्थित अनेक सूक्ष्म तन्तुओं, सूक्ष्मकोशों एवं बनते-बिगड़ते माध्यमिक धागों जैसी रचनाओं को सामूहिक रूप से साइटोस्केलेटन कहते हैं। सूक्ष्मतन्तु लगभग 6 एन.एम. (नैनोमीटर) व्यास के तथा छोटे-बड़े होते हैं तथा एक्टिन (Actin) नामक प्रोटीन के बने होते हैं। ये कोशिका को मजबूती देने के साथ गति में सहायता करते हैं। सूक्ष्मकोश अपेक्षाकृत सीधे, पतले तथा लगभग 20-22 एन.एम. व्यास वाले होते हैं। ये टयूबुलिन (Tubulin) नामक प्रोटीन के बने होते हैं। ये कोशिका को न केवल आकृति एवं मजबूती प्रदान करते हैं बल्कि कोशिकाद्रव्य से होकर आने-जाने वाले रासायनिक पदार्थों के आवागमन में मदद करते हैं। माध्यमिक तन्तु या धागे लगभग 10 एन.एम. व्यास के होते हैं तथा ये कोशिकाओं के संकुचन एवं प्रसरण में मदद करते हैं।

1.6.4.9 सेन्ट्रोसोम (Centrosome)

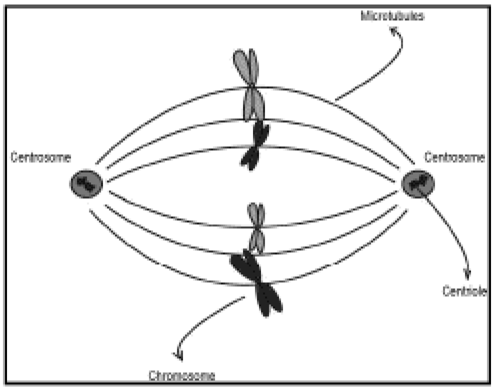

कोशिका द्रव्य में केन्द्रक के समीप अत्यन्त गाढ़े द्रव्य सदृश्य एक गोल रचना होती है जिसे सेन्ट्रोसोम कहते हैं। इसके मध्य में एक जोड़ी बेलनाकार रचनाऐं होती हैं जिन्हें सेन्ट्रिओल (Centriole) कहते हैं। इनमें से प्रत्येक सेन्ट्रिओल 9 सूक्ष्म नलिकाओं से मिलकर बना होता है जो छोटी-छोटी लकड़ियों के एक बंधे हुए गट्ठर की तरह एक दूसरे से जुड़े रहते हैं। सेन्ट्रिओल का सम्बंध कोशिका विभाजन से होता है तथा ये माइटोकान्ड्रिया की तरह स्वयं से ही विभाजित होने की क्षमता रखते हैं।

1.6.4.10 कोशिकीय अन्तस्थ (Cellular Inclusions)

कोशिका द्रव्य में पाये जाने वाले भिन्न प्रकार की रासायनिक प्रकृति वाले पदार्थों के समूह को कोशिकीय अन्तस्थ कहते हैं। इनमें से कुछ रसायनिक पदार्थ तो अपनी विशेष आकृति रखते हैं। इनमें ऐसे शारीरिक द्रव भी शामिल हैं जो अनेक रसायनों को घोलने, मिलाने तथा उन्हें एक-स्थान से दूसरे-स्थान तक पहुंचाने की क्षमता रखते हैं तथा कई रासायनिक क्रियाऐं भी सम्पादित करते हैं। एमारफस (Amorphous), हाइलुरानिक एसिड (Hyaluronic Acid), कान्ड्रायटिन सल्फेट (Chondroitin Sulfate), कोलेजिनस (Collagenous), रेटिकुलर (Reticular) एवं इलास्टिक (Elastic) फाइबर्स आदि प्रमुख कोशिकीय अन्तस्थ हैं। इनके अतिरिक्त अनेक रिक्तिकाएँ (Vacuoles) तथा निसिल पिंड (Nissl Bodies) जैसी रचनाऐं भी कोशिकीय द्रव्य में पाई जाती हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

निबंधात्मक प्रश्न

1. प्राणि कोशिका की संरचना एवं प्रमुख कार्यों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
2. मानव शरीर के सामान्य संगठन का विवरण दीजिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. मानव शरीर में पाये जाने वाले संरचनात्मक स्तरों का वर्णन कीजिए।
2. कोशिका द्वारा की जाने वाली निष्क्रिय एवं सक्रिय प्रक्रियाएं क्या होती हैं?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. अन्त:स्रावी ग्रंथियों से स्रावित होता है—
   (क) पसीना, (ख) पाचक रस (ग) एन्जाइम (घ) हॉर्मोन
2. माइटोकॉन्ड्रिया को कोशिका का .... कहते हैं—
   (क) पाचन केन्द्र (ख) श्वसन केन्द्र (ग) शक्ति गृह (घ) भण्डार गृह
3. केन्द्रक के अन्दर पाये जाते हैं—
   (क) माइटोकॉन्ड्रिया (ख) जीवद्रव्य (ग) गुणसूत्र (घ) पानी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–2 : उत्तक— संरचना, प्रकार एवं कार्य
मांसपेशियाँ— प्रकार, क्रियाविधि एवं कार्य का अन्तःस्रावी तंत्रिकीय नियंत्रण

संरचना

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 उत्तकों के प्रकार

2.2.1 उपकला उत्तक

2.2.1.1 सामान्य उपकला उत्तक

2.2.1.2 संयुक्त उपकला उत्तक

2.2.2 संयोजी उत्तक

2.2.2.1 अवकाशी उत्तक

2.2.2.2 वसीय उत्तक

2.2.2.3 तन्तुमय उत्तक

2.2.2.4 प्रत्यास्थ उत्तक

2.2.2.5 उपास्थि उत्तक

2.2.2.6 लसिका उत्तक

2.2.2.7 अस्थि उत्तक

2.2.2.8 रक्त

2.2.3 पेशीय उत्तक

2.2.4 तंत्रिका उत्तक

2.3 अभ्यास प्रश्नावली

2.0 उद्देश्य

पाठ एक में हमने शरीर के संगठन व कोशिका के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त की। अब प्रस्तुत पाठ में हम उत्तक और मांस पेशी तन्त्र के बारे में चर्चा करेंगे।

1. उत्तक कितने प्रकार के होते हैं?
2. शरीर में ऊतकों के क्या कार्य हैं?
3. क्या रक्त भी एक उत्तक है?
4. पेशियाँ कितने प्रकार की होती हैं?
5. पेशियों के तंत्रिका अन्तःस्रावी नियन्त्रण को जान सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

मानव शरीर की सूक्ष्मतम इकाई कोशिका (Cell) है। मानव शरीर मूलतः लगभग 600 खरब कोशिकाओं की सुव्यवस्थित संगठनात्मक संरचना है। एक समान संरचना एवं एक समान कार्य वाली कोशिकाओं का व्यवस्थित संगठन उत्तक कहलाता है। ये कोशिकाएँ परस्पर अन्तर्कोशिकीय पदार्थ (Intercellular Substance) से ज़ुड़ी हुई रहती हैं, जो कोलेजन प्रोटीन के नाम से जाना जाता है। यह कोलेजन प्रोटीन अति सूक्ष्म तन्तुओं (Fibres) के रूप में रहता है। ऊतकों की कोशिकाओं के मध्य एक तरल पदार्थ रहता है, जो उत्तक द्रव (Tissue Fluid) के नाम से जाना जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2.2 ऊतकों के प्रकार

मनुष्य के शरीर में प्रमुखत: चार प्रकार के उत्तक होते हैं—

(1) उपकला उत्तक,

(2) संयोजी उत्तक,

(3) मांसपेशीय उत्तक,

(4) तंत्रिका ऊतक।

2.2.1 उपकला उत्तक (Epithelial Tissues)

उपकला उत्तक मानव शरीर व उनके बाहरी तथा भीतरी अंगों की बाह्य परत (Layer) का निर्माण करता है। यह परत शरीर तथा शरीर के सभी अंगों को आच्छादित कर एक सुरक्षात्मक आवरण का रूप लिए होती है, जिसे त्वचा के रूप में जाना जाता है। शरीर की अनेक ग्रंथियाँ, पाचन अंग (Digestive Organs) श्वसन अंग, जननांग, रक्त वाहिनियाँ आदि सभी की नलियाँ (Pipes) इन्हीं उपकला उत्तक से निर्मित होती हैं, क्योंकि इस उत्तक की कोशिकाओं के आस-पास रक्तनलियाँ नहीं होती हैं अत: इनका पोषण रक्त से छने हुए पदार्थ से होता है।

उपकला उत्तक को निम्न दो भागों में विभाजित किया गया है—

(क) सामान्य उपकला उत्तक,

(ख) संयुक्त उपकला ऊतक।

2.2.1.1 सामान्य उपकला उत्तक (Simple Epithelial Tissue)

ऐसी कोशिकाएँ जो एक ही परत पर समान रूप से व्यवस्थित होकर परस्पर सटी हुई रहती हैं। ये कोशिकाएँ केवल उन्हीं परतों पर होती हैं, जहाँ स्राव की क्रिया या अवशोषण की क्रिया सम्पादित होती है। सामान्य उपकला उत्तक पाँच प्रकार के होते हैं—

(i) शल्काभ उपकला उत्तक,

(ii) स्तम्भाकार उपकला उत्तक,

(iii) ग्रंथिल उपकला उत्तक,

(iv) रोमक उपकला उत्तक,

(v) सांवेदनिक उपकला ऊतक।

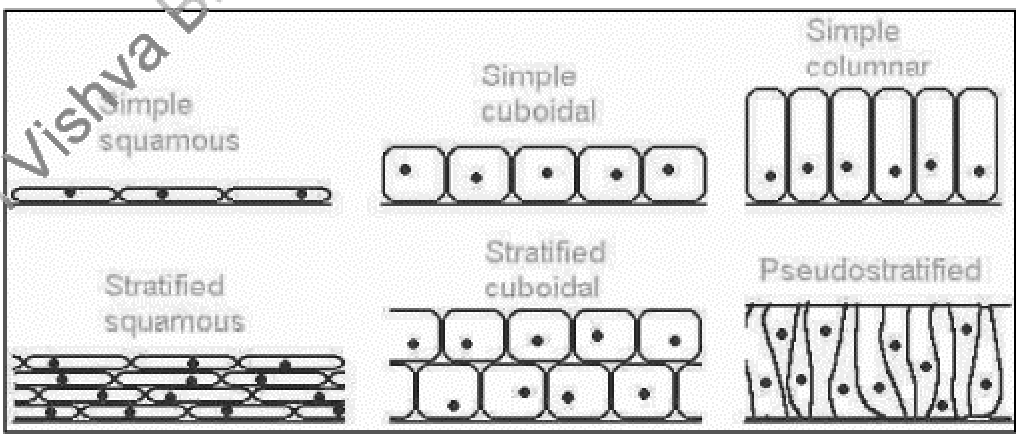

(i) शल्काभ उपकला उत्तक (Squamous Epithelial Tissue) : इस उत्तक की कोशिकाएँ फर्श के टाइल्स जैसी चौड़ी, चपटी एवं आठ कोणों वाली होती हैं, जिसके कारण ही यह पेवमेंट उपकला उत्तक (Pavement Epithelial Tissue) के नाम से जाना जाता है। इस उत्तक की कोशिकाएँ आपस में अच्छी तरह चिपकी रहती हैं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

क्योंकि इनके बीच अन्तर्कोशिकीय स्थान नहीं रहता है। फुफ्फुसों के वायुकोष, रक्त और लसीका वाहिनियों की भित्ति, त्वचा व गाल के भीतर की झिल्ली आदि इसी उत्तक से निर्मित होते हैं। यह उत्तक अंगों की बाहरी ताप, ठण्ड, आघात, घर्षण, रूखापन, संक्रमण आदि से सुरक्षा करता है।

(ii) स्तम्भाकार उपकला उत्तक (Columnar Epithelial Tissues) : इस उत्तक की कोशिकाओं का आकार बरामदे में लगे हुए स्तम्भ (Pilar) के जैसा होता है। इनकी लम्बाई अधिक और चौड़ाई व मोटाई कम होती है तथा ये परस्पर सटी रहती हैं। ये उत्तक आमाशय (Stomuch), पित्ताशय (Gall Bladder) व आन्तों की बाह्य सतहों का निर्माण करते हैं। यह उत्तक स्रवण (Secration) तथा अवशोषण (absorption) का कार्य सम्पादित करता है।

(iii) ग्रंथिल उपकला उत्तक (Glandular Epithelial Tissue) : इस उत्तक की कोशिकाएँ घनाकार या स्तम्भाकार में से किसी एक आकार की हो सकती हैं। ये कोशिकाएँ परस्पर मिलकर एक सुराही को सा आकार ले लेती हैं और इनके अन्दर से श्लेष्मा निकलती रहती है, जो शरीर के अंग विशेष में पहुंचती है। मानव-मुख की जिह्वा में लार ग्रंथियाँ (®livary Glands) तथा कुछ पाचन प्रणाली की ग्रंथियाँ भी इन्हीं कोशिकाओं से बनी होती हैं। इस उत्तक का मुख्य कार्य मुख में श्लेष्मा तथा आमाशय में पाचक रस का निर्माण करना है।

(iv) रोमक उपकला उत्तक (Ciliated Epithelial Tissue) : यह उत्तक स्तम्भाकार या घनाकार कोशिकाओं में से किसी एक प्रकार की कोशिकाओं से बना हो सकता है। इन कोशिकाओं के दूसरे छोर पर अति सूक्ष्म रोम लगे होते हैं, जो रोमिका (Cilia) के नाम से जाने जाते हैं। ये रोमक उपकला उत्तक श्वासनली (Trachea), मूत्रवाहिनी (Ureter), मुखगुहिका (Buccal Cavity), अण्डवाहिनी (Oviduct) आदि के भीतरी भागों का निर्माण करता है। इस उत्तक का मुख्य कार्य है— अनावश्यक पदार्थों, धूलकणों, कीटाणुओं, जीवाणुओं आदि को शरीर के भीतर जाने से रोकना।

(v) सांवेदनिक उपकला उत्तक (Sensory Epithelial Tissue) : इस उत्तक की कोशिकाओं के एक छोर पर धागेनुमा सूक्ष्म रचनाएँ सांवेदिक रोम होती हैं, जो संवेदनाओं को प्राप्त करती रहती हैं। इन कोशिकाओं का दूसरा छोर तंत्रिका तन्तुओं (Nerve Fibres) से संबंध रहता है। नाक की श्लेष्मिक कला (Mucous Membrane), जीभ की स्वाद कलिकाएँ (Taste buds), आँख का रेटीना आदि सांवेदनिक उपकला उत्तक से बने होते हैं।

2.2.1.2 संयुक्त उपकला उत्तक (Compound Epithelial Tissue)

वे उपकला उत्तक जिनमें सामान्यतया एक से अधिक स्तर (layers) होते हैं अर्थात् ये उत्तक अनेक परतों से मिलकर बने होते हैं इसीलिए इन्हें संयुक्त उपकला उत्तक के नाम से जाना जाता है। मुख्यत: ये दो तरह के होते हैं—

(i) स्तरीत (परतदार) उपकला उत्तक,

(ii) अन्तर्बर्ती उपकला ऊतक।

(i) स्तरीत (परतदार) उपकला उत्तक (Stratified Epithelial Tissue) : इसमें अनेक स्तर पाये जाते हैं, जिनमें से सबसे ऊपरी स्तर विभाजित रहता है, जिससे नीचे स्थित कोशिकाएँ निरन्तर ऊपर की ओर खिसककर धीरे-धीरे अपना कार्य बन्द कर देती हैं, परिणामस्वरूप वे चपटी व पतली होती जाती हैं तथा कालान्तर में मृत हो जाती हैं। उनके जीवद्रव्य में रासायनिक परिवर्तन आ जाता है तथा वह मृत पदार्थ केरोटीन का रूप ले लेता है। मनुष्य की त्वचा में ये मृत कोशिकाएँ शल्क (परत) के रूप में अलग होने लगती हैं, जिसे अक्सर पुरानी त्वचा का उतरना कहा जाता है। यह परतदार ऊपकला त्वचा के बाहरी आवरण, गुहा तथा जिह्वा पर होती हैं।

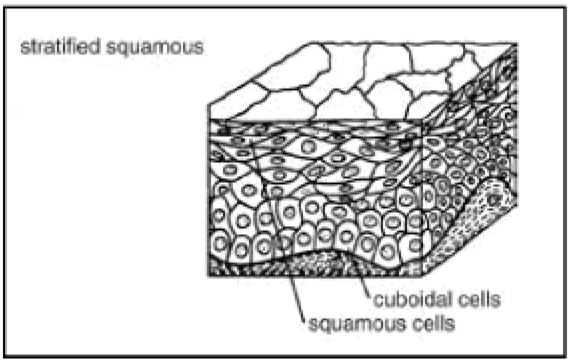

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(ii) अन्तर्वर्ती उपकला उत्तक (Transitional Epithelial Tissue) : ये उपकलाएँ पतली व लचीली होती हैं तथा तीन या चार परतों में पायी जाती हैं। इनकी ऊपरी सतह बड़ी व चपटी होती है। अन्तर्वर्ती उपकला उत्तक भी स्तरीत उपकला उत्तक की भांति बढ़ने वाले होते हैं, परन्तु इसमें स्तरीत उपकला उत्तक की तरह जीव द्रव्य की रासायनिक संरचना में कोई बदलाव नहीं आता। ये उत्तक मूत्रमार्ग (Urethra), मूत्राशय (Urinary Bladder) तथा मल-विसर्जन अंगों के भीतरी तरफ रहते हैं।

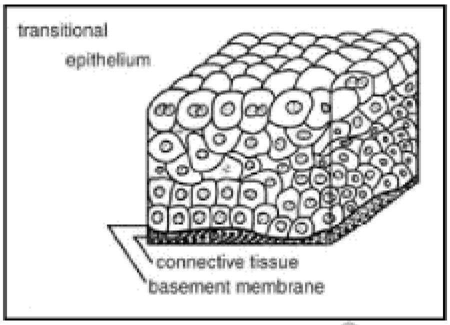

2.2.2 संयोजी उत्तक (Connective Tissues)

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है शरीर के भीतरी अंगों या रचना विशेष को आपस में संयोजन अर्थात् जोड़ने वाले ऊतकों को संयोजी उत्तक (connective tissues) के नाम से जाना जाता है। ये उत्तक शरीर को आधार (base) तो देते ही हैं, साथ ही पोषण एवं संरक्षण भी प्रदान करते हैं। शरीर में इन ऊतकों की सर्वाधिक मात्रा पायी जाती है तथा ये शरीर के लगभग सभी अंगों के मध्य पाये जाते हैं। आधारभूत पदार्थ (ground substance) या मैट्रिक्स के नाम से जाने जाने वाले अन्तर्कोशिकीय पदार्थ (Interacellular substance) की मात्रा इस उत्तक में बहुत अधिक होती है। इसी पदार्थ की अधिकता के आधार पर संयोजी उत्तक निम्नलिखित आठ प्रकार का होता है—

1. अवकाशी उत्तक (Areolar Tissues),
2. वसीय उत्तक (Adipose Tissues)
3. तन्तुमय उत्तक (Fibrous Tissues),
4. प्रत्यास्थ उत्तक (Elastic Tissues)
5. उपास्थि उत्तक (Cartilage Tissues),
6. लसिका उत्तक (Lymphoid Tissues)
7. अस्थि उत्तक (Bone Tissues),
8. रक्त (Blood)।

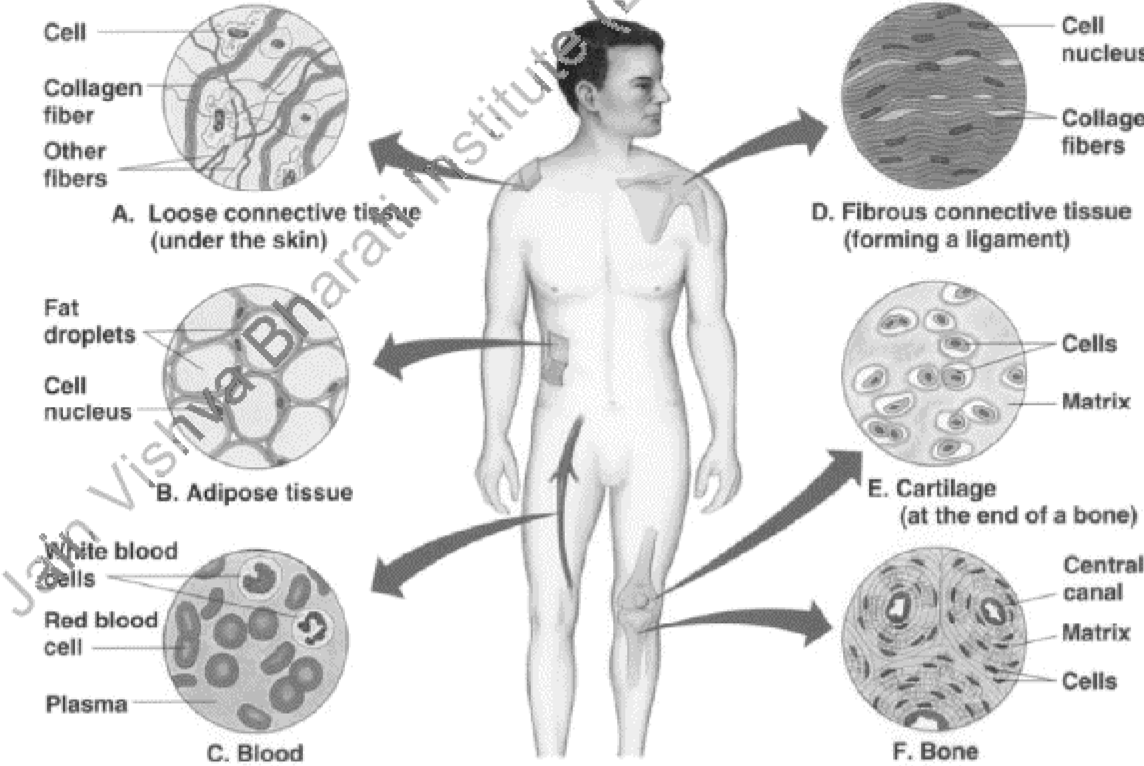

2.2.2.1 अवकाशी उत्तक (Areolar Tissues)

ये उत्तक शरीर के एक बड़े भाग का निर्माण करते हैं अर्थात् संयोजी ऊतकों में से इस उत्तक की मात्रा शरीर में सबसे अधिक पायी जाती है। इनकी कोशिकाओं के बीच जगह ज्यादा होने के कारण यह उत्तक ढीला ढाला होता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

है। शरीर में ऐसे स्थान जहाँ सहारा देने या जोड़ने की जरूरत अधिक होती है, उन जगहों पर ये उत्तक अधिक पाए जाते हैं, जैसे— आन्तों में, पेशियों के बीच में, त्वचा के नीचे। तंत्रिकाएँ, पेशियाँ, रक्त-वाहिनियाँ, अंगों को परस्पर बांधने व स्थिरता देने वाली प्रावरणी (Fascia) आदि इसी उत्तक से निर्मित होते हैं।

कोलेजन तथा प्रत्यास्थ तन्तु अवकाशी उत्तक के मैट्रिक्स भाग में पाए जाते हैं, जिनसे मैट्रिक्स में एक जालीदार संरचना बनती है। मैट्रिक्स में ही लसीका अवकाश होता है। ये लसीका अवकाश लिम्फ से भरा रहता है, जिनसे अवकाशीय उत्तक पोषण ग्रहण करते हैं।

2.2.2.2 वसीय उत्तक (Adipose Tissues)

वसीय उत्तक को शरीर का 'भोजन गृह' कहा जाता है। अन्य ऊतकों की बजाय ये उत्तक आकार में बड़े होते हैं। त्वचा के नीचे, तंत्रिकाओं व धमनियों के बीच में व आन्तों के चारों ओर ये उत्तक वसा पिण्डों के रूप में पाए जाते हैं। अवकाशी ऊतकों के मैट्रिक्स में वसा कोशिकाओं के एकत्र होने से वसा की गोलिकाएँ निर्मित हो जाती हैं और इन्हीं गोलिकाओं से वसीय उत्तक का निर्माण होता है। आवश्यकता होने पर ये उत्तक शरीर में ऊर्जा उत्पन्न करते हैं। बाह्य आघात से शरीर के अनेक अंगों की रक्षा करते हैं तथा शरीर के ताप को बाहर जाने से रोकने अर्थात् ताप नियंत्रण का कार्य भी वसीय उत्तक करते हैं।

2.2.2.3 तन्तुमय उत्तक (Fibrous Tissues)

श्वेत कोलेजन के तन्तुओं से बनने के कारण इस उत्तक को 'श्वेत उत्तक' के नाम से भी जाना जाता है। इस उत्तक की कोशिकाएँ परस्पर चिपकी रहने की वजह से इसमें मैट्रिक्स की मात्रा कम पायी जाती है। तन्तुमय उत्तक अत्यधिक मजबूत होता है। शरीर की हड्डियों का बाह्य आवरण (पैरिऑस्टियन) तथा हड्डियों को जोड़ने व बांधने का कार्य करने वाले टेण्डन इसी तन्तुमय उत्तक से बने होते हैं। मस्तिष्क एवं वृक्क (Kidney) के बाह्य आवरण भी इसी उत्तक से बने होते हैं।

2.2.2.4 प्रत्यास्थ उत्तक (Elastic Tissues)

नाम से ही प्रतीत होता है कि इस प्रकार के संयोजी उत्तक के तन्तु अत्यन्त लचीले होते हैं अर्थात् फैलने व सिकुड़ने के लिए स्वतन्त्र होते हैं। आवश्यकता पड़ने पर ये तन्तु अपने आकार को फैला सकते हैं एवं संकुचन की आवश्यकता होने पर अपने आपको संकुचित कर सकते हैं। ये उत्तक ऐसे अंगों में होते हैं, जिनको अपना आकार बदलने की जरूरत पड़ती रहती है, जैसे रक्त वाहिनियां, श्वास नलिकाएँ आदि।

2.2.2.5 उपास्थि उत्तक (Cartilage Tissues) :

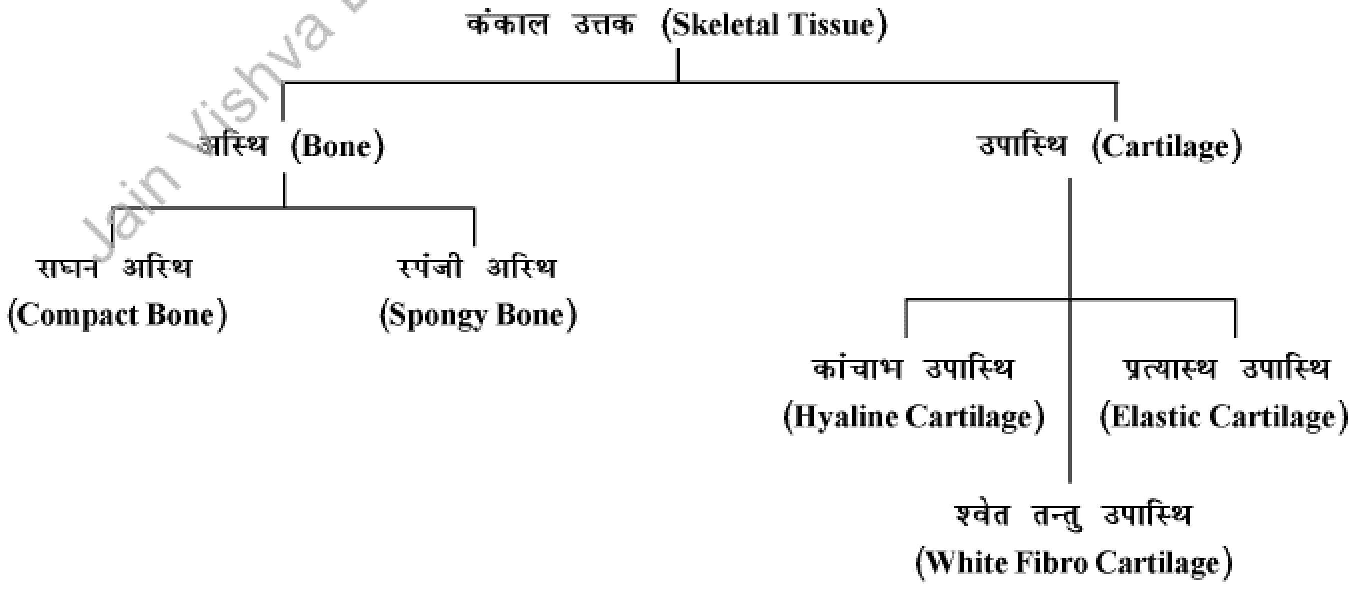

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

ये उत्तक सबसे मजबूत ऊतकों की श्रेणी में आते हैं। शरीर में अस्थियों के अलावा अन्य कोई भी उत्तक इतने मजबूत नहीं होते हैं। यह नीले वर्ण का एक पदार्थ होता है, जो प्राय: शरीर की अस्थियों व संधियों (joints) के मध्य पाया जाता है। उपास्थि उत्तक एक आवरण या झिल्ली से आवृत्त रहता है, जिसके कारण सीधे इस उत्तक को रक्त-आपूर्ति नहीं हो पाती बल्कि उक्त झिल्ली के द्वारा रक्तापूर्ति होती रहती है। मानव शरीर का नाक व कान उपास्थि उत्तक से ही बना होता है। रचना के अनुसार उपास्थि उत्तक निम्न प्रकार के होते हैं–

(क) कांचाभ उपास्थि,

(ख) श्वेत तन्तु उपास्थि,

(ग) प्रत्यास्थ उपास्थि।

(क) कांचाभ उपास्थि (Hyaline Cartilage) : यह कांच के सदृश्य प्रतीत होने वाला नीले वर्ण का श्वेत उत्तक है, जो हड्डियों के छोर को आवृत्त किये रहता है। यह अपने नजदीक की हड्डी के एक छोर को जोड़कर संधि (joint) बनाती है। पर्शुका उपास्थियों (Ribs) का निर्माण यही उपास्थि उत्तक करता है, जो पसलियों को स्टर्नम से मिलाता है। श्वासनलियों, स्वर-यंत्र (Larynx), नासिका आदि का कुछ भाग इनसे ही बनता है।

(ख) श्वेत तन्तु उपास्थि (White Fibro Cartilage) : यह उपास्थि उत्तक मजबूत और हल्का लचकदार होता है, जो हड्डियों को परस्पर जोड़ने का काम करता है। कशेरुकाओं (Vertibrae) के बीच यह उत्तक पाया जाता है। इसके अतिरिक्त जानुसंधि (Patella) की अस्थियों के छोर पर पाया जाता है। वे अस्थियाँ जिनमें गुहा (cavity) होती है, उनमें यह उपास्थि उत्तक अधिक पाया जाता है।

(ग) प्रत्यास्थ उपास्थि (Elastic Cartilage) : तन्तुमय उपास्थि (Fibrous Cartilage) के समान रचना वाले इस उपास्थि उत्तक में पीले रंग के इलास्टीन तन्तु भी पाए जाते हैं। ये तन्तु कई शाखाओं वाले होते हैं तथा मैट्रिक्स में जालीदार संरचना बनाये हुए होते हैं। ये उत्तक अत्यन्त लचीले होते हैं अर्थात् खींचने या दबाने के बाद ये पुन: अपनी मूल अवस्था में आ जाते हैं। इनसे बाह्य कर्ण तथा मध्य कर्ण से ग्रसनी तक जाने वाली नलिका का निर्माण होता है, जो 'यूस्टेशियन ट्यूब' कहलाती है।

2.2.2.6 लसिका उत्तक (Lymphoid Tissues)

इस संयोजी उत्तक में एक विशेष प्रकार की कोशिकाएँ होती हैं, जिन्हें लिम्फोसाइड कहते हैं। इनके मैट्रिक्स में रेटीकुलर कोशिकाएँ पायी जाती हैं। ऐसी अनेक कोशिकाएँ मिलकर मैट्रिक्स में जाल बना लेती हैं। इन जालीय रचनाओं को 'जालीय उत्तक' कहते हैं। मानव शरीर में रोग-प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने वाले पदार्थों का निर्माण लसिका उत्तक द्वारा ही होता है। लसिका उत्तक बड़ी आन्त की दीवारों, अपेंडिक्स, लिम्फनोड्स, प्लीहा आदि में पाये जाते हैं।

2.2.2.7 अस्थि उत्तक (Bone Tissues)

शरीर के सभी ऊतको में यह सबसे अधिक दृढ़ एवं मजबूत उत्तक है। यह उत्तक अस्थि कोशिका एवं कैल्शियम युक्त अन्तर्कोशिकीय आधार पदार्थ (Inter Cellular Ground Substance) से मिलकर बनता है। ये सब एकसूत्रीय कोशिका कला, अस्थिच्छद (Periosteum) में बंद रहते हैं। अस्थि कोशिकाएँ दो तरह की होती हैं– 1. अस्थि-प्रसू (Osteoblasts), 2. अस्थि-भंजक (Osteoclasts)। अस्थियाँ अपने भीतर से खोखली होती हैं और खोखले भाग में अस्थिमज्जा (Bone marrow) भरा होता है। रक्त वाहिनियों की अधिकता के कारण अस्थिमज्जा लाल रंग की होती है। अस्थिमज्जा में इरिथ्ररोब्लास्ट नामक कोशिकाएँ होती हैं, जो लाल रक्तकणों को बनाती हैं। संरचना के आधार पर अस्थियाँ दो प्रकार की होती हैं–

(i) सघन अस्थि,

(ii) सुषिर अस्थि।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(i) सघन अस्थि (Compact Bone) : सघन अस्थि सभी अस्थियों के बाहरी भाग का निर्माण करती है। लम्बी अस्थि का दण्ड अस्थि उत्तक का उदाहरण है। सघन अस्थि की रचना में तीन भाग रहते हैं–

1. सबसे बाहर का सघन भाग,
2. उसके भीतर का सुषिर भाग,
3. उसके भीतर का खोखला भाग।

(ii) सुषिर अस्थि (Spongy Bone) : यह अस्थि-भाग अस्थि ऊतकों से बनी पतली छड़ों से निर्मित होता है। ये छड़ें परस्पर बंधी रहती हैं, जिसके कारण इसका आकार स्पंज सदृश्य हो जाता है। इनके बीच का खाली स्थान कोमल तथा गहरे लाल रंग के ऊतकों से भरा होता है तथा 'लाल मज्जा' (Red Marrow) कहलाता है। लाल मज्जा में ही लाल रक्त कण, श्वेत रक्त कण तथा बिम्बाणु बनते हैं। कशेरुकाएँ (Ribs) तथा लम्बी अस्थियों के छोर आदि सुषिर अस्थियों से ही बने होते हैं। सघन अस्थि की पतली परत से ढकी रहने वाली अस्थियाँ भी अन्दर से सुषिर ही होती हैं।

अस्थियाँ प्राणी शरीर को ढांचा प्रदान करती हैं। शरीर के भीतरी महत्त्वपूर्ण अंगों को सुरक्षा देती हैं। ये अस्थि-मज्जा को जगह देती हैं।

2.2.2.8 रक्त (Blood) :

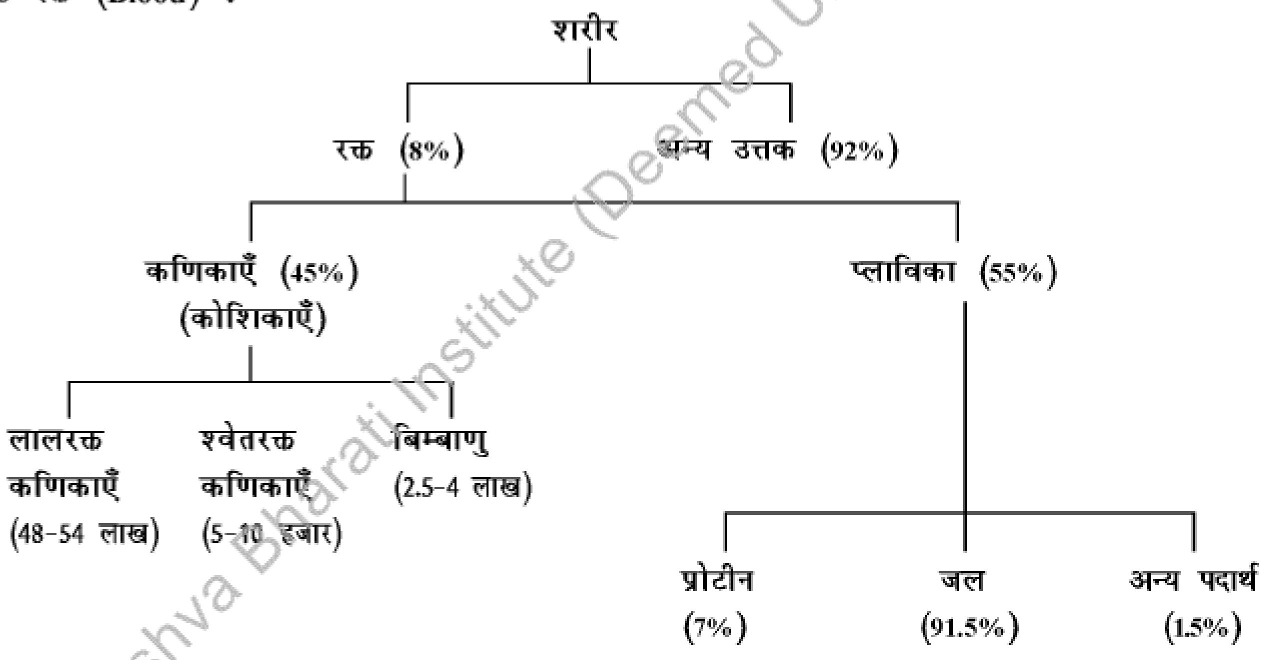

2.2.3 पेशीय उत्तक (Muscular Tissues)

पेशियाँ (Mucles) : हमारे शरीर की गति, हलन-चलन पेशियों के सहयोग से ही होती है अर्थात् हमारा चलना-फिरना, उठना-बैठना, भागना-दौड़ना या किसी भी दैनिक क्रियाकलाप के लिए हिलना-डूलना पेशियों के बिना तनिक भी संभव नहीं होता है। बिना पेशियों की गति के व्यक्ति मात्र एक मूर्ति बनकर रह जाता है, निश्चल, निश्चेष्ट और निष्क्रिय।

पेशियों में फैलने व सिकुड़ने की अद्‌भुत प्राकृतिक क्षमता होती है, क्योंकि ये संकुचनशील उत्तक की बनी होती हैं। पेशियाँ अस्थियों तथा त्वचा के बीच सुरक्षित रहती हैं। ये अस्थि-संधियों पर उपस्थित एवं स्थित होकर अस्थियों को परस्पर जोड़ने का कार्य करती हैं। अस्थियों को मोड़ने के लिए ये सिकुड़ती हैं तथा फैलाने के लिए ये सीधी होती हैं। अस्थियाँ शरीर को एक आकार देती हैं लेकिन उनकी गति/हलन-चलन पेशियों की सहायता से ही होती हैं। मनुष्य के शरीर में छोटी-बड़ी 600 पेशियाँ होती हैं, जिनके कारण शरीर हलन-चलन में समर्थ होता है,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

रक्त पेशियों को पोषण देता है। रक्त की अधिकता के कारण ही पेशियाँ लाल रंग की दिखाई देती हैं। पेशियाँ एक विशिष्ट प्रकार का उत्तक है जो ऊर्जा उत्पादन करने की विलक्षण सामर्थ्य रखती हैं। पेशियाँ शरीर के कुल भार की 40 से 50 प्रतिशत भाग होती है। इन पेशियों में साम्यावस्था बनाए रखने वाले पांच विशेष गुण पाए जाते हैं–

1. संकुचनशीलता (Contractibility),
2. प्रसार (Extension),
3. उत्तेजनशीलता (Excitability),
4. प्रत्यास्थता (Elasticity),
5. लयात्मकता (Tonicity)।

पेशियों के प्रकार (Types of Muscles)

पेशियों से हमारा शरीर सुडौल एवं सुगठित बनता है। आकर्षक एवं सुन्दर दिखाई देता है। भिन्न-भिन्न आकार की इन पेशियों की संरचना भी एक समान नहीं होती। स्थिति एवं संरचना में भिन्नता के आधार पर पेशियों के निम्न तीन प्रकार होते हैं–

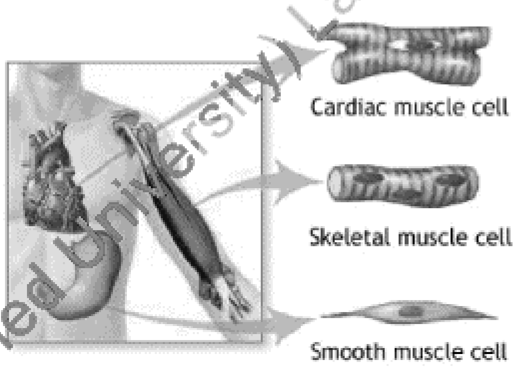

1. कंकाल पेशियाँ (Skeletal Muscle),
2. चिकनी पेशियाँ (Smooth Muscles),
3. हृद् पेशियाँ (Cardiac Muscles)।

1. कंकाल पेशियाँ (Skeletal Muscle) : ये वे पेशियाँ हैं जो शरीर की अस्थियों से जुड़ी हुई रहती हैं और ये अस्थियों की गति में मदद करती हैं। इनको 'रेखित पेशी' के नाम से भी जाना जाता है, क्योंकि इनके भीतर काली और सफेद रेखाओं के जैसी धारियाँ सी दिखाई देती हैं। ये पेशियाँ सीधे मानव मस्तिष्क के नियंत्रण में कार्य करती है अर्थात् ये हमारी इच्छा के अनुसार कार्य करती है, इसलिए इन्हें ऐच्छिक पेशियों की श्रेणी में रखा गया है।

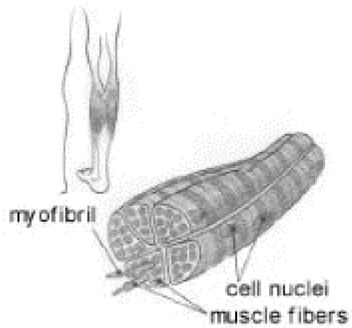

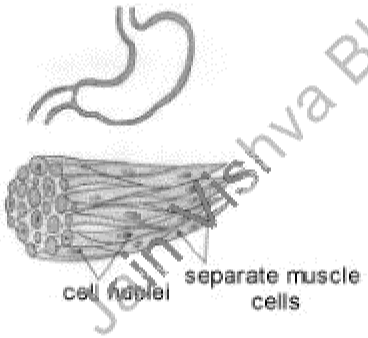

2. चिकनी पेशियाँ (Smooth Muscles) : ये पेशियाँ मानव शरीर के आन्तरिक अंगों से संबंधित हैं। यह पेशी समूह भीतरी अंगों की झिल्लियों पर दीवार के रूप में काम करता है। इनकी आन्तरिक संरचना में काली-सफेद रेखाएँ दिखाई नहीं देती हैं, अत: इन्हें 'अरेखित पेशियाँ' भी कहते हैं। हमारे मस्तिष्क का इनकी क्रिया-विधि पर कोई नियंत्रण नहीं रहता अर्थात् ये पेशियाँ मस्तिष्क नियंत्रण के बाहर स्वतंत्र रूप से कार्य करती हैं इसलिए इन्हें अनैच्छिक पेशियों की श्रेणी में रखा गया है।

3. हृद् पेशियाँ (Cardiac Muscles) : ये विशिष्ट प्रकार की पेशियाँ हैं, जो हृदय की भित्ति का निर्माण करती हैं। सूक्ष्मदर्शी यंत्र से इनकी आन्तरिक संरचना को देखने पर इनके भीतर काली-सफेद्द रेखाएँ दिखाई देती हैं अत: इन्हें 'रेखित पेशियाँ' भी कहते हैं। हृद्पेशियों की क्रिया-विधि भी मस्तिष्क के नियंत्रण से बाहर होती हैं। ये अपने स्तर पर स्वतंत्र रूप से कार्य करती हैं अर्थात् हम चाहकर हृदय की धड़कन को न तो बढ़ा सकते हैं और न ही रोक सकते हैं। इसलिए ये पेशियाँ अनैच्छिक पेशियों की श्रेणी में आती हैं।

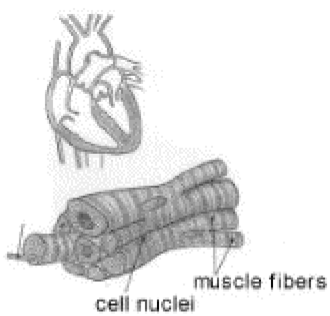

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इस प्रकार शरीर में पाई जाने वाली पेशियों को निम्न प्रकार वर्गीकृत कर समझा जा सकता है—

1. कंकाल पेशियाँ—रेखित पेशियाँ—ऐच्छिक पेशियाँ।
2. चिकनी पेशियाँ—अरेखित पेशियाँ—अनैच्छिक पेशियाँ।
3. हृद्पेशियाँ—रेखित पेशियाँ—अनैच्छिक पेशियाँ।

पेशियों की आंतरिक संरचना (Internal Structure of Muscles)

1. कंकाल पेशी की रचना : कंकाल पेशी पेशीतन्तु (Myofibers) नामक कोशिकाओं के संगठन से बनती है। एक कंकाल पेशी में हजारों की संख्या में पेशी तन्तु उपस्थित होते हैं, जो लम्बी व बेलनाकार कोशिकाओं के रूप में रहते हैं। परस्पर समान्तर स्थित रहने वाले इन पेशी तन्तुओं का व्यास प्राय: 10 से 100 माइक्रोमीटर तक होता है लेकिन कुछ पेशी तन्तुओं की लम्बाई तो 30 से.मी. से भी अधिक होती है। पेशी तन्तु (Myofiber) एक पेशी की हजारों कोशिकाओं में से एक कोशिका है, जिसके बाहरी आवरण को सारकोलेमा (®rcolemma) और इसके भीतर पाये जाने वाले जीवद्रव्य को सारकोप्लाज्मा (®rcoplasmma) कहा जाता है। पेशी तन्तु के इस सारकोप्लाज्मा में एक से अधिक मात्रा में केन्द्रक पाये जाते हैं। इन सबके अलावा इनमें मानव की एक सामान्य कोशिका की भांति सभी रचनाएँ पाई जाती हैं एवं उन रचनाओं से सामान्य कोशिका की भांति समस्त जैव रासायनिक क्रियाओं का सम्पादन होता रहता है लेकिन इन कोशिकाओं के स्वरूप में थोड़ा-बहुत अन्तर पाया जाता है।

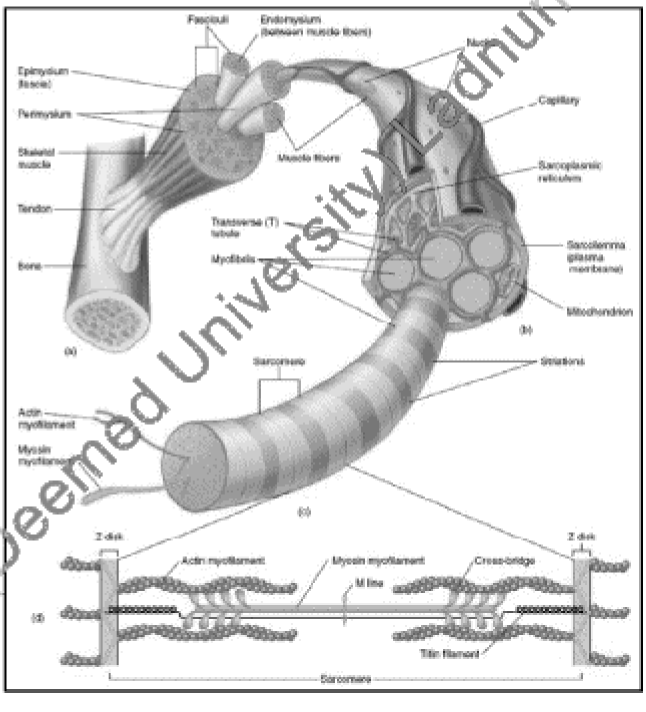

उच्च क्षमता वाले इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप से देखने पर एक पेशी तन्तु में 1-2 माइक्रोमीटर व्यास वाले हजारों तन्तु दिखाई पड़ते हैं, जिन्हें पेशी-तन्तुक (Myofibrils) के नाम से जाना जाता है। इनमें से कई पेशी तन्तुक पतले होते हैं जो पतले पेशी तन्तुक (Thin Myofibrils) कहे जाते हैं और कुछ तन्तुक मोटे होते हैं, जिन्हें मोटे पेशी तन्तुक (Thick Myofibrils) कहा जाता है। ये तन्तुक छोटे-छोटे प्रकोष्ठ बनाते हैं, जो सारकोमीयर (®rcomere) कहे जाते हैं। हर सारकोमीयर एक घने पदार्थ रूप जेडलाइन से अलग होते हैं। मोटे तन्तुकों के घने भाग को 'ए बैण्ड' (A Band) तथा दोनों तरफ के पतले तन्तुओं के भाग को 'आई बैण्ड' (I Band) कहा जाता है। मोटे-पतले सभी तन्तुक परस्पर जुड़े रहते हैं। 'ए बैण्ड' में दोनों ओर की जगह जहाँ मोटे व पतले तन्तुक घनिष्ठता से एक-दूसरे पर सजे होते हैं, काली धारी के समान दिखाई देते हैं और 'आई बैण्ड' सफेद धारी के समान दिखाई देती है, कारण कि इसमें मोटे तन्तुक नहीं रहते हैं। प्रत्येक सारकोमीयर इसी तरह व्यवस्थित रहता है एवं प्रत्येक पेशी तन्तु में बहुत से सारकोमीयर होते हैं। अत: पेशी पर काली सफेद रेखाएं सी दिखाई देती हैं।

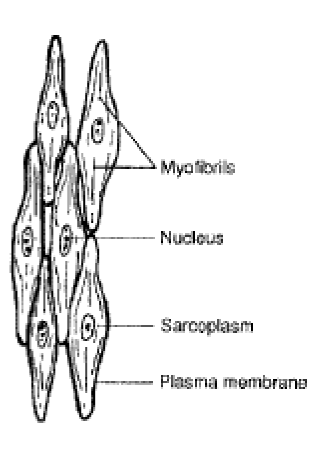

2. चिकनी पेशी की रचना : चिकनी पेशी के पेशी तन्तु और कंकाल पेशी के पेशी तन्तुओं में थोड़ा अन्तर देखा जाता है। इस पेशी के पेशी-तन्तु का व्यास सामान्यत: 5 से 10 माइक्रोमीटर तक होता है और इनकी लम्बाई सामान्यत: 30-200 माइक्रोमीटर तक होती है। चिकनी पेशी के पेशी तन्तु के जीवद्रव्य (®rcoplasma) में एक केन्द्रक ही पाया जाता है और पेशी तन्तु अपेक्षाकृत आकार में छोटे होते हैं जो बेलनाकार नहीं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

होते बल्कि दोनों छोरों पर नुकीले होते हैं। इसके भीतर उपस्थित पेशी तन्तुक (Myofibrils) व्यवस्थित नहीं होते बल्कि बिखरे रहते हैं अत: इस पेशी में काली सफेद रेखाएँ नहीं दिखती।

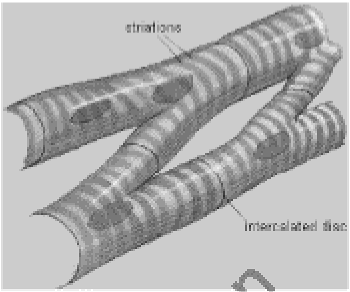

3. हृद्पेशी की रचना : हृद्पेशी की रचना कुछ बातों में इन दोनों पेशियों से भिन्न होती है। इसके तन्तु चतुष्कोणीय होते हैं तथा शाखाओं में विभक्त होकर परस्पर जुड़े हुए रहते हैं। इनके सारकोप्लाज्मा में भी एक केन्द्रक ही पाया जाता है। इनमें उपस्थित पतले और मोटे तन्तुक कंकाल पेशी के तन्तुकों की तरह व्यवस्थित रहते हैं अत: इन पेशियों में भी काली-सफेद रेखाएँ दिखती हैं।

पेशियों की क्रिया (Action fo Muscles)

पेशियों में होने वाली क्रियाओं में दो क्रियाएँ मुख्य हैं—

1. भौतिक क्रिया,

2. रासायनिक क्रिया।

1. भौतिक क्रिया (Physical Action) : पेशी उत्तक में फैलने तथा सिकुड़ने का नैसर्गिक गुण होता है। अत: पेशियों में स्वत: फैलने-सिकुड़ने की भौतिक क्रिया होती है। सुषुम्ना में स्थित प्रेरक तंत्रिकाओं के द्वारा पेशियों में उत्तेजना उत्पन्न होती है।

प्रेरक तंत्रिकाओं से होकर जब संवेग पेशियों में आता है तो ये संकुचित होने लगती हैं। यह संकुचन ऐच्छिक पेशियों में 1/10वें सैकण्ड में होता है। इस तरह एक पेशी एक सैकण्ड में 10 बार सिकुड़ती है। सबसे पहले पेशियां सिकुड़ने के लिए तैयार होती है, जो अव्यक्त काल (Latest Period) कहलाता है। इसके पश्चात ये सिकुड़ने का कार्य करती हैं। इस अवधि को संकुचन काल (Period of Contraction) कहा जाता है। सिकुड़ने के बाद पेशियाँ शिथिल हो जाती हैं। इस अवधि को शिथिलन काल (Relaxation Period) कहा जाता है। इस प्रकार एक पेशी का अव्यक्त काल, संकुचन काल तथा प्रसारण काल इन तीनों क्रियाओं को क्रियान्वित करने के लिए 1/10 सैकण्ड का समय लगता है। इस प्रकार पेशियों की भौतिक क्रिया सम्पादित होती है।

2. रासायनिक क्रिया (Chemical Action) : पेशियों के फैलने व सिकुड़ने की क्रिया दैनिक कार्यों के दौरान होती रहती हैं। इनके फैलने व सिकुड़ने से उनमें उष्मा (Heat) उत्पन्न होती है, जो ऊर्जा के रूप में परिवर्तित हो जाती है और यह ऊर्जा पेशियाँ ग्रहण करती हैं।

हमारा शरीर भोजन से ऊर्जा प्राप्त करता है। भोजन करने के बाद उसका पाचन (Digestion) होता है। पाचन के बाद भोजन ग्लूकोज का रूप ले लेता है। ग्लूकोज रक्त में मिलकर रक्त परिसंचरण के द्वारा पेशियों में पहुंचता है और वहाँ ग्लूकोज का भण्डारण (store) होता है। रक्त की लाल रक्त कणिकाओं में उपस्थित हिलोग्लोबीन ऑक्सीजन का संवहन कर उसे पेशियों में पहुंचाता है, जहाँ ऑक्सीजन पेशियों में उपस्थित ग्लूकोज से क्रिया करके पाइरुविक अम्ल तथा दुग्धाम्ल (Lactic Acid) बनाता है। यही दुग्धाम्ल फिर से ऑक्सीजन के साथ क्रिया करता है और कार्बन-डाई-ऑक्साइड, पानी व उष्मा उत्पन्न करता है। कार्बन-डाई-ऑक्साइड तथा पानी रक्त वाहिकाओं के द्वारा शोषित कर फेफड़ों व अन्य उत्सर्जक अंगों से होकर शरीर से बाहर निकाल दिये जाते हैं। इस प्रकार पेशियों के द्वारा ग्लूकोज का ऑक्सीकरण कर ऊर्जा का निरन्तर उत्पादन होता रहता है। व्यक्ति उपवास के दौरान जब भोजन नहीं लेता है तो पेशियाँ यकृत (Liver) में संग्रहित ग्लाइकोजन को लेकर उसे ग्लूकोज में बदलने की क्रिया करती है और ग्लूकोज का ऑक्सीकरण कर ऊर्जा प्राप्त करती है। इस प्रकार रासायनिक क्रिया के लिए पेशियों को ग्लूकोज या ग्लाइकोजन तथा ऑक्सीजन की जरूरत होती है।

जब पेशियाँ लगातार कार्य करती हैं तो वे थक जाती हैं। इन पेशियों के थकने का कारण है इनमें ग्लूकोज के ऑक्सीकरण से उत्पन्न होने वाला दुग्धाम्ल (Lactic Acid), जो पेशियों में थकावट उत्पन्न करता है। अत: थकावट

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

दूर करने के लिए पेशियों को इस दुग्धाम्ल का ऑक्सीकरण करना जरूरी हो जाता है। अत: पेशियाँ इस दुग्धाम्ल का पूरी तरह से ऑक्सीकरण करती हैं और इनके ऑक्सीकरण करने से कार्बन-डाई-ऑक्साइड (CO_2) तथा जल उत्पन्न होता है। जब तक इस दुग्धाम्ल का पूरी तरह ऑक्सीकरण नहीं हो जाता तब तक पेशियों में थकान बनी रहती है। व्यक्ति दिन भर कार्य करता रहता है, जिससे पेशियों में दुग्धाम्ल बनता रहता है, जिससे वे पूरी तरह थक जाती हैं लेकिन जब वह विश्राम करता है तो इससे पेशियों में दुग्धाम्ल का अच्छी तरह ऑक्सीकरण हो जाता है और हमारे शरीर की पेशियाँ थकान मुक्त होकर पुन: तरोताजा हो जाती हैं तथा फिर से उसी ताजगी व स्फूर्ति के साथ कार्य करने में समर्थ हो जाती हैं।

पेशियों का तंत्रिका अन्त:स्रावी नियंत्रण : शरीर की सम्पूर्ण पेशियों में तंत्रिकाओं का जाल फैला रहता है। ये तंत्रिकाएँ मुख्यत: दो प्रकार की होती हैं—प्रेरक तंत्रिकाएँ तथा संवेदी तंत्रिकाएँ। सभी पेशियों का एक-एक पेशी-तन्तु किसी एक प्रेरक तंत्रिका की शाखा (Motor Nerve) से सम्बद्ध रहता है और ये प्रेरक तंत्रिकाएँ उसे कार्य करने के लिए उद्दीपन देती हैं। तंत्रिकाओं के अक्षतन्तु (Axon) के अन्तिम छोर पेशी-तन्तु में धंसे हुए रहते हैं न कि उन्हें स्पर्श किए हुए। इस प्रकार प्रेरक तंत्रिकाओं और पेशी तंतुओं के बीच संधियाँ बनती हैं। ये संधि-स्थल तंत्रिका पेशी जंक्सन (Neuromuscular Junctions) कहे जाते हैं और प्रेरक तंत्रिकाओं से निकलने वाले स्राव ''न्यूरोट्रान्समीटर'' कहे जाते हैं। ये न्यूरोट्रांसमीटर्स प्रेरक तंत्रिकाओं से उछलकर ''तंत्रिका पेशी जंक्सन'' से होते हुए पेशी तन्तु के जीव द्रव (®rcoplasma) में आते हैं और पेशी तन्तु को उद्दीपन देते हैं, जिससे वे फैलने व सिकुड़ने लगती हैं।

जिस प्रकार प्रेरक तंत्रिकाएँ पेशियों को उद्दीपन देकर उन्हें फैलने व सिकुड़ने के लिए उद्दीप्त करती हैं, उसी प्रकार पेशियों को उद्दीप्त करने का कार्य अन्त:स्रावी ग्रंथियाँ भी करती हैं। अन्त:स्रावी ग्रंथियाँ ''हार्मोन्स'' का स्राव करती हैं और ये हार्मोन पेशी-तन्तु के जीवद्रव्य में प्रवेश करते हैं तथा उन्हें फैलने व सिकुड़ने का उद्दीपन देते हैं, जिससे पेशियाँ फैलने व सिकुड़ने की क्रिया करती हैं। इस क्रिया के लिए पेशियों को उद्दीपन प्रेरक तंत्रिकाओं के द्वारा पहुंचे या अन्त:स्रावी ग्रंथियों के द्वारा दोनों प्रकार के उद्दीपन ही पेशियों को गतिशील करते हैं, जिससे कार्य की परिणति होती है। पेशियों को उद्दीप्त करने वाले ये स्राव चाहे न्यूरोट्रान्समीटर्स हों, चाहे हार्मोन्स, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्ति के मस्तिष्क व सुषुम्ना से ही प्रेरित होते हैं। अत: यह जाहिर है कि मानव शरीर की सभी पेशियों, क्रिया-कलाप या उनकी गतिशीलता अन्तत: हमारी चेतना एवं सजगता से जुड़ी है। हालांकि अनैच्छिक पेशियों की प्रकृति स्वायत्तता की है। वे हमारी इच्छाओं के अधीन कार्य नहीं करती हैं तथापि परोक्षत: वे भी मन व मस्तिष्क से संचालित होती हैं।

2.2.4 तंत्रिका उत्तक (Nervous Tissues)

इनका जाल पूरे शरीर में फैला रहता है। ये उत्तक एक विशेष प्रकार की कोशिकाओं से बने होते हैं, जो तंत्रिका कोशिका (Neuron) के नाम से जाने जाते हैं। तंत्रिका कोशिकाएँ मुख्यत: मस्तिष्क और मेरुरज्जु (Spinal cord) में होती हैं। इनसे सूत्र सदृश्य एक या एक से अधिक शाखाएं निकलती हैं। इन कोशिकाओं की एक सूत्राकार रचना सन्देश ग्रहण करती है तो दूसरी उसी सन्देश को आगे प्रेषित करती है।

तंत्रिका कोशिकाओं में उत्तेजनशीलता (stimulant) एवं संवाहकता (conductivity) का गुण जितना अधिक होता है, अन्य कोशिकाओं में उतना अधिक नहीं होता। एक तंत्रिका उत्तक में निम्नलिखित संरचनाएँ होती हैं—

1. तंत्रिका कोशिकाएँ (Neurons),
2. तंत्रिका तन्तु (Nerve Fibres),
3. न्यूरॉग्लिया (Neuroglia)।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

तंत्रिका उत्तक
(Nervous Tissues)

- **तंत्रिका कोशिकाएँ (Neurons)**
  - **अध्रुवीय (Apolar)**
  - **एक ध्रुवीय (Unipolar)**
  - **द्विध्रुवीय (Bipolar)**
  - **बहुध्रुवीय (Multipolar)**
- **तंत्रिका तन्तु (Nerve Fibres)**
- **न्यूरॉग्लिया (Neuroglia)**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

तंत्रिका कोशिका की संरचना (Structure of Neuron)

तंत्रिका कोशिका (Neuron) तंत्रिका तंत्र की सबसे छोटी संरचनात्मक व कार्यात्मक इकाई है। प्रत्येक न्यूरॉन में तीन मुख्य अंग होते हैं–

1. कोशिकाकाय (Cell Body)
2. पार्श्व तन्तु (Dendrites)
3. अक्ष तन्तु (Axons)।

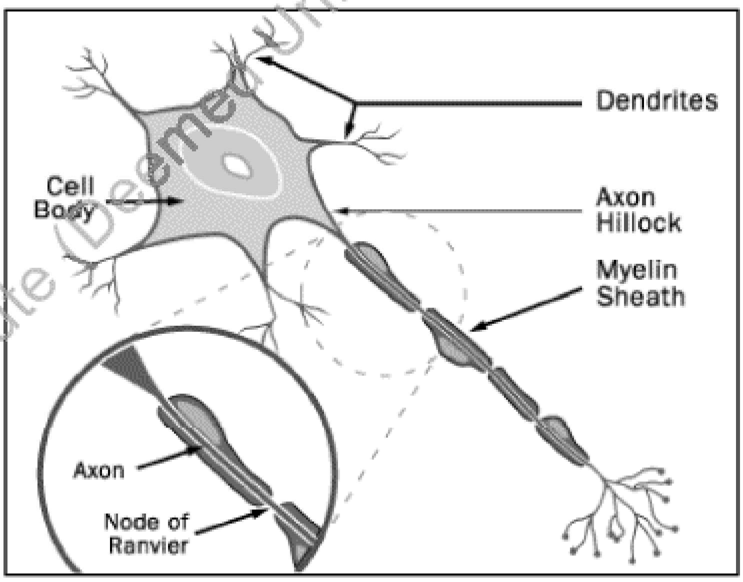

(1) कोशिकाकाय (Cell Body) : यह तंत्रिका कोशिका का मुख्य केन्द्रीय भाग है। इसी भाग में एक बड़ा केन्द्रक होता है। तंत्रिका कोशिका के जीव द्रव्य को न्यूरॉप्लाज्मा कहा जाता है, जिसमें निसल कण (Nissels Granules) व तंत्रिका तन्तुक (Neuro fibrils) होते हैं। तंत्रिका तन्तुक संवेगों के प्रेषण का काम करते हैं। कोशिकाकाय में वे सभी विशेषताएँ पाई जाती हैं, जो प्राय: एक सामान्य जन्तु कोशिका में होती हैं।

(2) पार्श्व तन्तु (Dendrites) : कोशिकाकाय (Cell body) से धागे के समान अनेक सूत्र निकलकर चारों ओर फैले रहते हैं तथा ये सूत्र अनेक शाखाओं एवं प्रशाखाओं में बंटे रहते हैं, जो पार्श्वतन्तु (Dendrites) के नाम से जाने जाते हैं। ये अक्ष तन्तु (Axon) से छोटे होते हैं। पार्श्व तन्तुओं में तंत्रिका तन्तुक (Neurofibrils) होते हैं, जिनका मुख्य कार्य संदेशों को ग्रहण करना है।

(3) अक्ष तन्तु (Axon) : कोशिकाकाय (Cell body) से निकलने वाली अनेक शाखाओं में से एक शाखा अपेक्षाकृत मोटी, बेलनाकार व लम्बी होती है, जिसे अक्ष तन्तु (Axon) कहा जाता है। प्राय: अक्ष तन्तु एक शाखीय ही होते हैं परन्तु कुछ स्थितियों में इनसे शाखाएँ भी निकलती हैं, जो कॉलेटरल फाइबर्स कहे जाते हैं। कॉलेटरल फाइबर्स व अक्षतन्तु के आखिरी छोर भी शाखाओं में बंटे रहते हैं, जो एक्जॉन एण्डिग्स कहे जाते हैं। ये सिरे घुण्डीदार होते हैं, जिन्हें सिनैप्टिक एण्ड बल्ब कहते हैं। अक्ष तन्तु का मुख्य कार्य संवेदनाओं/सन्देशों को अगले न्यूरॉन्स के लिए आगे प्रेषित करना है।

2.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

निबंधात्मक प्रश्न

1. उत्तक से आप क्या समझते हैं? विभिन्न प्रकार के ऊतकों का वर्णन कीजिए।
2. रक्त उत्तक की संरचना बताइये।

लघूत्तरीय प्रश्न

1. सामान्य उपकला उत्तक कितने प्रकार का होता है।
2. चार प्रकार के संयोजी ऊतकों का नाम लिखिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. रक्त में कितने प्रकार की रक्त कणिकाएं पाई जाती हैं?
   (क) दो, (ख) तीन, (ग) एक (घ) पांच
2. ऐच्छिक पेशियाँ होती हैं—
   (क) रेखित (ख) अरेखित (ग) दोनों (घ) दोनों में से कोई नहीं
3. तंत्रिका कोशिकाओं को कहते हैं—
   (क) न्यूरोग्लिआ (ख) एक्सॉन (ग) न्यूरॉन (घ) डेन्ड्राइट

सन्दर्भ ग्रंथ

(i) शरीर क्रिया विज्ञान—कान्ति पान्डेय एवं प्रमिला वर्मा

(ii) मानव शरीर एवं क्रिया विज्ञान—डॉ. बृन्दा सिंह

(iii) Principles of Anatomy and Physiology—G.J. Tortora and N.P. Anagnostakos

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–3 : अस्थि तंत्र– कंकाल, मेरुदण्ड एवं जोड़ या संधियाँ

संरचना

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 कंकाल : संरचना और कार्य

3.3 अस्थियों के प्रकार

3.3.1 अस्थियों की परस्पर सम्बद्धता

3.4 कंकाल के मुख्य विभाग

3.5 कंकाल में हड्डियों की संख्या

3.6 अक्षीय कंकाल

3.6.1 कपाल की हड्डियाँ

3.6.2 चेहरे की हड्डियाँ

3.6.3 मेरूदण्ड की हड्डियाँ

3.7 अनुबंधीय कंकाल

3.7.1 अंसमेखला व हाथों की हड्डियाँ

3.7.2 श्रोणिमेखला व पैरों की हड्डियाँ

3.8 सन्धियाँ

3.8.1 गति के आधार पर संधियों का वर्गीकरण

3.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.0 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ में आप अस्थि तन्त्र व सन्धियों के बारे में निम्न तथ्यों को जान सकेंगे।

1. अस्थि पंजर की संरचना के बारे में जान सकेंगे।
2. शरीर में कुल अस्थियों की संख्या तथा उनके कार्यों को जान सकेंगे।
3. शरीर में सन्धियों के महत्त्व को समझ सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

कंकाल तंत्र मनुष्य शरीर का वह ढांचा है, जिसके बिना मनुष्य शरीर स्वयं खड़ा नहीं हो सकता। इस ढांचे में शरीर की सभी अस्थियाँ व हड्डियाँ सम्मिलित रहती हैं। हड्डियों के इस ढांचे को अस्थिपंजर अथवा कंकाल (Skeleton) कहा जाता है। यह कंकाल-तंत्र ही मांस, चर्म, शिराएँ, धमनियाँ, स्नायु आदि कोमल अंगों को शरीर के भीतरी गह्वरों (Cavities) में सुरक्षित रखने का आधार है। मांसपेशी, पेशीबंधन, बन्धनी, सौत्रिक तन्तु आदि इसी से लिपटे रहते हैं। मानव-शरीर का बाहरी स्वरूप इसी ढ़ांचे के अनुरूप होता है। मनुष्य का कंकाल अनेक प्रकार के महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। कंकाल मनुष्य शरीर को एक निश्चित आकार देता है तथा इसे मजबूती तथा आधार देता है। यह कंकाल पेशियों व संधियों का उचित संयोजन कर शरीर की गति में सहायक बनता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3.2 कंकाल तंत्र : संरचना और कार्य (Skeletal System : Structure and Functions)

कंकाल तंत्र के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं–

1. शरीर को आकार देना।
2. शरीर में दृढ़ता लाना।
3. भीतरी कोमल अंगों की रक्षा करना।
4. पेशियों को मुड़ने का स्थान देना।
5. शरीर की सन्धियों को व्यवस्थित करना और शरीर को कार्य करने तथा चलने-फिरने आदि के योग्य बनाना।

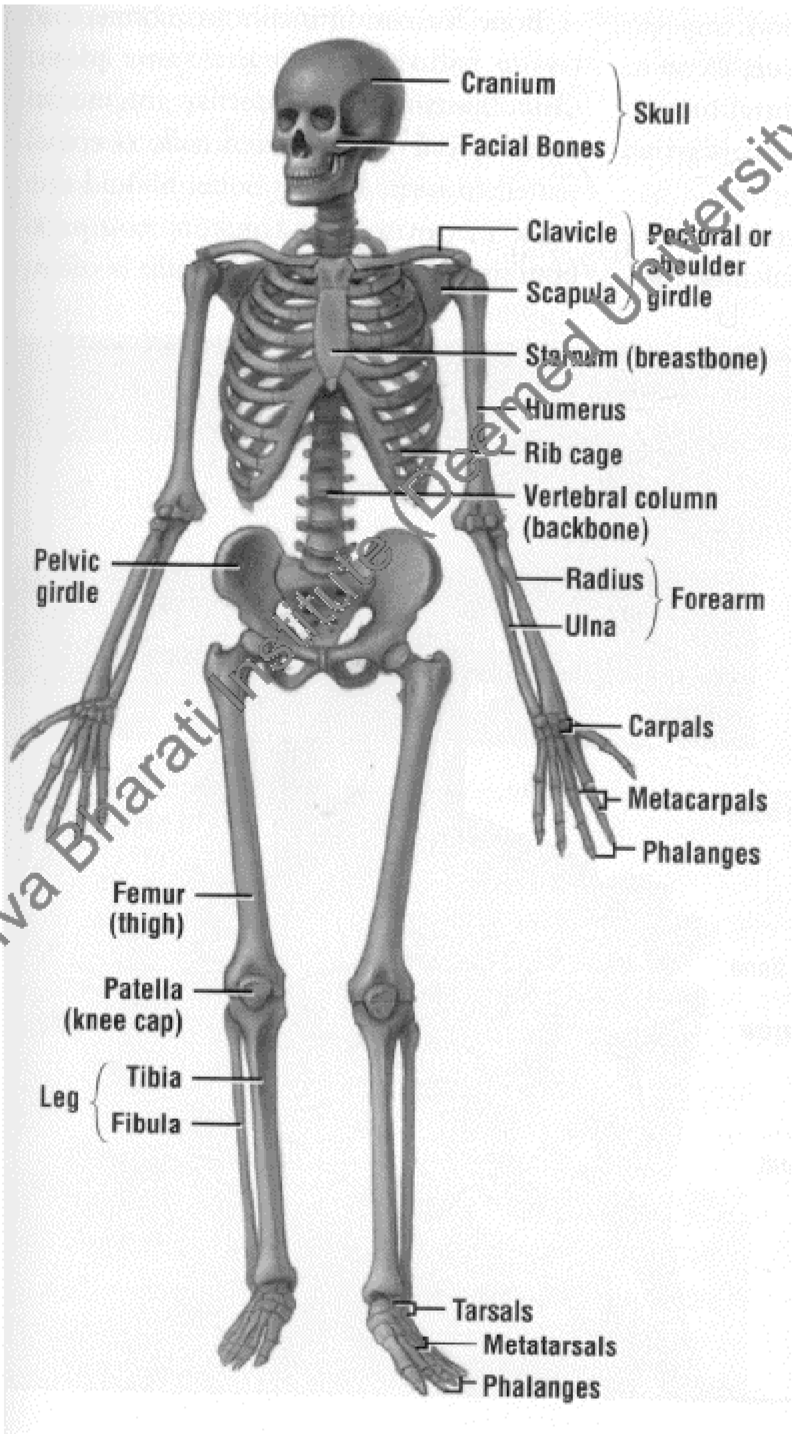

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3.3 अस्थियों के प्रकार (Types of Bones)

अस्थियाँ अनेक आकार-प्रकार की होती हैं। इस दृष्टि से इन्हें निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(1) लम्बी अस्थियाँ (Long Bones) : इन अस्थियों में एक शेफ्ट (shaft) एवं दो शाखाएँ (extremities) रहती हैं। शेफ्ट का निर्माण ठोस अस्थि से होता है और इसके बीच मेड्यूलरी कैनाल (Medullary canal) होती है, जिसमें पीत अस्थि मज्जा (Yellow Bone Marrow) भरी रहती है।

(2) छोटी अस्थियाँ (Short Bones) : इनका बाह्य स्तर लम्बी अस्थियों की तुलना में कम ठोस होता है एवं भीतरी ओर से ये अस्थियाँ अधिक स्पंजी होती हैं। इन अस्थियों में लाल अस्थि मज्जा (Red bone marrow) अत्यधिक पाई जाती है। जुल्फिकास्थियाँ (Tarsals) तथा मणिबंध (carpals) इसी श्रेणी की अस्थियाँ हैं।

(3) टेढ़ी-मेढ़ी अस्थियाँ (Irregular Bones) : इन अस्थियों के ऊपर एक ठोस परत रहती है और ये अपने भीतर से स्पंजाकार छोटे-छोटे सुराखों से भरी रहती हैं। कुल्हे की अस्थियाँ (Hip Bones) तथा रीढ़ की हड्डियाँ (Vertebraes) इसी श्रेणी की अस्थियाँ हैं।

(4) चपटी अस्थियाँ (Flat Bones) : अधिक चौड़ाई में होने के कारण ये अपने से नीचे के अंगों को सुरक्षा देती हैं। विशेषत: ये शरीर के भीतरी नाजुक अंगों को ढके रखती हैं, जैसे— खोपड़ी (skull) मस्तिष्क को ढके रहती है व पसलियाँ (ribs) फेफड़ों, लीवर, हृदय आदि को ढके हुए रखती हैं।

(5) सेस्मॉइड अस्थियाँ (Sesmoid Bones) : ये अस्थियाँ भी भीतर से स्पंजी होती हैं और इनकी बाहरी परत ठोस अस्थि से निर्मित होती है तथा परत बिल्कुल पतली होती है। इन अस्थियों में भी लाल अस्थि मज्जा (Red Bone Marrow) अधिक रहती है। कशेरुक दण्ड की अस्थियाँ (Bones of Vertebral Column) इसी श्रेणी की अस्थियाँ हैं।

3.3.1 अस्थियों की परस्पर सम्बद्धता

हड्डियों के उन स्थानों पर जहाँ वे एक-दूसरों से मिलती हैं, कोमल-अस्थि जैसे पदार्थ का आवरण चढ़ा रहता है, जिसे 'सन्धि-समूहों की उपास्थि' (Articular Cartilage) कहा जाता है।

सभी हड्डियाँ तन्तुमय शिरा समन्वित झिल्लियों से ढकी रहती हैं, जिसे अस्थिच्छद (Periosteum) कहते हैं। इन्हीं जगहों से शरीर का पोषण करने वाली धमनियाँ जिन्हें रक्त-वाहिनियाँ कहा जाता है, उन छोटे-छोटे 'अस्थि-छिद्रों' (Foramina) में प्रवेश करती हैं, जो उनके पटल पर बने होते हैं। यह अस्थि आवरण जब तक स्वस्थ एवं क्रियाशील बना रहता है, तब तक हड्डियों के दोषों— टूटना, खिसकना आदि को सुधारा जा सकता है, अन्यथा नहीं।

यदि किसी हड्डी को काट कर देखा जाए तो यह ज्ञात होगा कि उसकी सतह ठोस तथा कड़ी अर्थात् कठिन तन्तुओं से निर्मित है और उसके भीतरी भाग में स्पंज की भांति अनेकों छिद्र हैं। इन छिद्रमय तन्तुओं में, जिन्हें जालमय तन्तु भी कहा जाता है, 'लाल मज्जा' (Red Marrow) भरी रहती है, जिसे 'अस्थि-मज्जा' कहते हैं। परन्तु यह मज्जा छोटी तथा कन्दी हड्डियों के छिद्रमय खाली अंशों में ही पाई जाती है, लम्बी हड्डियों का मध्य भाग इस प्रकार की मज्जा से एकदम भरा हुआ नहीं रहता। ऐसे खोखले स्थानों को 'हड्डियों के बीच की मज्जा-नली' (Medullary cavity) कहा जाता है।

हड्डियों के भीतर पाई जाने वाली मज्जा (Marrow) दो प्रकार की होती है— (1) लाल (Red) और (2) पीली (Yellow)। लाल रंग की मज्जा हड्डी के जालमय भाग में तथा पीले रंग की मज्जा हड्डी के सिरों में दिखाई देती है।

कंकाल की सभी हड्डियाँ आपस में निम्नलिखित तीन आधारों से सम्बद्ध रहती हैं—

1. सेवनी सन्धि (Sutures)— इसमें एक हड्डी का दूसरी हड्डी के नुकीले किनारों से मिलना होता है।
2. उपास्थि (Cartilage) अथवा कोमलास्थि द्वारा सन्धि-स्थान का गठन।
3. बन्धन (Ligaments) द्वारा संधि-स्थान का गठन।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

समस्त सन्धियाँ एक प्रकार के बहुत कड़े तथा चमकीले पदार्थ से घिरी रहती हैं, जिन्हें 'सूत्रहीन उपास्थियाँ' (Articular Cartilage) कहा जाता है। इनके द्वारा हड्डियाँ अपने स्थान पर ठीक-ठीक बनी रहती हैं तथा खिसकने नहीं पातीं।

अस्थि जल, कार्बनिक पदार्थ तथा अकार्बनिक पदार्थ से बनी होती है, जिनका प्रतिशत इस प्रकार है—

जल— 25 प्रतिशत

कार्बनिक पदार्थ— 35 प्रतिशत

अकार्बनिक पदार्थ— 45 प्रतिशत।

इस प्रकार अस्थि का 1/3 भाग कार्बनिक पदार्थ एवं 2/3 भाग अकार्बनिक पदार्थ से बनता है।

छोटे बालकों की हड्डियों में सजीव पदार्थ (Organic Matter) का प्रतिशत अधिक रहता है, इसी कारण उनकी हड्डियाँ नागनशील होती हैं तथा चोट आदि लगने पर टूटने की बजाए गुड़ सी जाती हैं। परन्तु वृद्ध लोगों की हड्डियों में खनिज पदार्थ (Mineral Matter) की मात्रा बढ़ जाती है, जिसके कारण आघात आदि लगने पर वे टूट जाती हैं।

3.4 कंकाल के मुख्य विभाग

कंकाल को मुख्यत: दो भागों में बांटा जाता है—

1. अक्षीय कंकाल (Axial Skeleton) : यह मनुष्य शरीर के अनुलम्ब अक्ष (Longitudinal Axis) पर होता है। इसके अन्तर्गत रीढ़ की हड्डी (Vertebral column), खोपड़ी (Skull) एवं पसलियाँ (Ribs) तथा उरोस्थि (Sternum) की हड्डियाँ आती हैं।

2. अनुबंधीय कंकाल (Appendicular Skeleton) : यह हाथ व पैर की अस्थियों व मेखलाओं (girdles) से बनता है। पैरों की अस्थियाँ श्रोणि मेखला से जुड़ी रहती हैं व हाथों की अस्थियाँ कंधास्थियों से जुड़ी रहती हैं। इसके अन्तर्गत शाखाओं (Limbs) तथा मेखलाओं (Girdles) की अस्थियाँ आती हैं।

अधिक सुविधा के लिए हम कंकाल को निम्नलिखित 3 भागों में विभाजित कर सकते हैं—

(1) खोपड़ी अथवा कपाल (Skull),

(2) धड़ (Trunk),

(3) भुजाऐं और टांगे (Upper and Lower Limbs)।

3.5 मानव कंकाल में हड्डियों की संख्या

मनुष्य-शरीर में पाई जाने वाली कुल 206 हड्डियों में से विभिन्न अंगों में निम्नलिखित संख्या में हड्डियाँ पाई जाती हैं—

(1) कपाल (Cranium) में	8
(2) चेहरे (Face) में	14
(3) रीढ़ (Spinal Column) में	33
(4) पसलियों (Ribs) में दोनों ओर (12+12)	24
(5) छाती (Sternum) में	1
(6) मेखलाएँ (Girdles)	2
(7) उर्ध्व शाखाओं अर्थात् दोनों हाथों में (32+32)	64
(8) अधो शाखाओं अर्थात् दोनों पांवों में (30+30)	60
	कुल योग 206

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उक्त हड्डियों की संख्या के संबंध में विशेष विवरण निम्नानुसार है—

खोपड़ी की अस्थियाँ

(अ)	(1) कपाल (Cranium) भाग में	8
	(2) चेहरे (Face) में	14

धड़ की हड्डियाँ

	(3) दोनों ओर की पसलियों में 12+12	24
	(4) छाती (Sternum) में	1
	(5) अक्षकास्थियाँ अथवा हंसली की हड्डियाँ (Collar Bone or Clavicle)	2
(ब)	(6) स्कन्धास्थि अथवा कंधे की हड्डी (Shoulder Blade or Scapula)	2
	(7) मेखलाएँ (Girdles)	2
	(8) कशेरुकाएँ (Vertebrae)	33

भुजाओं की हड्डियाँ

(स)	(9) प्रगण्डास्थियाँ (Humerus)	2
	(10) अन्तः प्रकोष्ठास्थियाँ (Ulna)	2
	(11) बहिः प्रकोष्ठास्थियाँ (Radius)	2
	(12) मणिबन्ध की अस्थियाँ (Corpal Bones)	16
	(13) शलाकास्थियाँ (Metacarpals)	10
	(14) अंगुलास्थियाँ (Phalanges)	28

टांगों की हड्डियाँ

(द)	(15) उर्ध्वविकास्थियाँ (Femur)	2
	(16) जानुवस्थियाँ (Knee Cap, Patella)	2
	(17) अन्तर्जङ्घि (Tibia)	2
	(18) बहिर्जङ्घि (Fibula)	2
	(19) गुल्फास्थियाँ (Tarsals)	14
	(20) अनुगुल्फास्थियाँ (Metatarsals)	10
	(21) अंगुलास्थियाँ (Phalanges)	28
	कुल योग	**206**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अस्थि-संस्थान की उक्त हड्डियों के विषय में अलग-अलग आवश्यक एवं संक्षिप्त जानकारी इस प्रकार है—

3.6 अक्षीय कंकाल (Axial Skeleton)

अक्षीय कंकाल में निम्न भागों की अस्थियाँ आती हैं—

खोपड़ी (Skull)

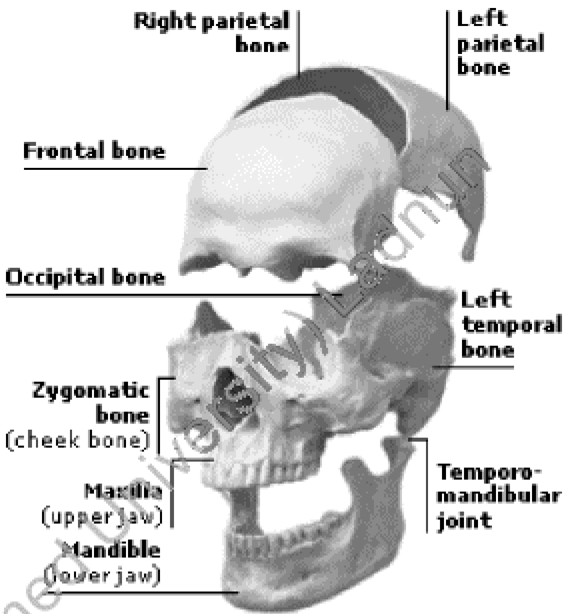

खोपड़ी मेरुदण्ड (Vertebral Column) की शीर्षधर (Atlas) होती है। गौर से देखने पर यह अण्डाकार (Oval Shapped) दिखाई देती है। यह आगे से नुकीली तथा पीछे से चौड़ी होती है। खोपड़ी टेढ़ी-मेढ़ी अस्थियों (Irregular Bones) से मिलकर बनी होती है। ये अस्थियाँ भी अपने जैसी टेढ़ी-मेढ़ी अस्थियों से जुड़ी रहती हैं, जिससे ये सामान्य चोट या आघात से अलग नहीं होती हैं। कपालास्थियां अत्यन्त दृढ़ता व मजबूती से परस्पर इस प्रकार जकड़ी रहती हैं कि वे अपने स्थान पर हिल-डुल नहीं सकती हैं। खोपड़ी मानव मस्तिष्क के लिए सुरक्षा कवच या हैलमेट की भांति काम आती है, जिसमें शरीर का यह अति महत्त्वपूर्ण एवं अति कोमल अंग सुरक्षित रहता है। खोपड़ी की अस्थियों को मुख्यत: दो भागों में विभाजित किया जाता है—

1. कपालास्थियाँ (Cranium),
2. चेहरे की अस्थियाँ (Facial Bones)।

3.6.1 कपाल की अस्थियाँ (Cranium)

कपाल की हड्डियों से हमारा तात्पर्य उन हड्डियों से है, जो कि सिर के केवल ऊपरी भाग को बनाती है। सिर अर्थात् कपाल की विभिन्न हड्डियाँ परस्पर ऐसी दृढ़ता से जकड़ी हुई हैं कि वे सब मिलकर एक सम्पूर्ण हड्डी का रूप ले बैठी हैं और इस कारण वे तनिक भी हिल-डुल नहीं सकतीं। सिर की हड्डियों की कुल संख्या 8 है।

सिर में निम्नलिखित हड्डियाँ पाई जाती हैं—

1. पूर्व कपालास्थि (Frontal Bone)
2. पश्च कपालास्थि (Occipital Bone)
3. पार्श्व कपालास्थि (Parietal Bone)
4. शंखास्थि (Temporal Bones)
5. झर्झरास्थि (Ethmiod Bone)।

सिर की उक्त 8 हड्डियों के विषय में विस्तृत विवरण निम्नानुसार है—

पूर्व कपालास्थि (Frontal Bone)

इसे 'सम्मुख कपालास्थि' अथवा 'ललाटास्थि' भी कहते हैं। यह सिर की सम्पूर्ण हड्डियों के सामने अग्रभाग में स्थित है। इसकी लम्बाई अधिक होती है और यह खोपड़ी के सामने की छत का निर्माण करती है। इसके दो भाग होते हैं। ऊपरी गोल भाग को 'पट्टक' (Squama) तथा निम्न भाग को 'पिण्ड' कहा जाता है। यह हड्डी मस्तिष्क को ऊपर से ढके रखती है तथा ललाट का निर्माण करती है। संख्या में यह एक अस्थि है।

इस हड्डी में 'पट्टक' (Squama) के दो दल होते हैं— (1) अग्र, (2) पश्च। अग्रतल उन्नतोदर एवं चिकना होता है और उसके ऊपर दोनों ओर हड्डियाँ कुछ उभरी रहती हैं। इसके ऊपर एक चपटी मांसपेशी होती है, जिसे 'ललाटिका' (Frontalis) कहा जाता है। यह मांसपेशी क्रोध अथवा त्यौरी बदलने के समय सिकुड़ जाती है तथा शान्त

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अवस्था में फैली रहती है। इसका पिछला भाग दांतेदार (Serratid) होता है, जो पार्श्व कपालास्थि के अग्रतल से जुड़ा रहता है। इस ललाटास्थि के निम्न भाग में दो चाप होते हैं, जिन्हें 'अधि नेत्रगुहा चाप' (Supra Orbital Arches) कहा जाता है। इन दोनों चापों के मध्य भाग में नाक की हड्डी (Nosal Bone) लगी रहती है। नासास्थि के ठीक पीछे एक चलनी जैसी जालीदार हड्डी होती है, जिसे 'झर्झरास्थि प्रवर्ध' (Ethmiod Process) कहा जाता है। 'पट्टक' का पश्च तल नतोदर होता है जिसके भीतर धमनियों के चिह्न बनते हैं। प्रमस्तिष्क का अग्रखण्ड इसके ठीक नीचे रहता है। पट्टक का पिण्ड नेत्रगुहा की छत का निर्माण करता है।

पश्च कपालास्थि (Occipital Bone)

यह एक हड्डी है, जो सिर के सबसे पिछले भाग में स्थित है। यह पश्च कपाल तथा मस्तिष्क के खोल की दीवार का निर्माण करती है। इसके भी (1) पट्टक तथा (2) पिण्ड– ये दो भाग होते हैं। इन दोनों के मध्य में एक बहुत बड़ा गोल छिद्र होता है, जिसे 'महाछिद्र' अथवा 'महाविवर' (Foramen Magnum) कहा जाता है।

इस हड्डी का 'पट्टक' (Squama) सबसे पीछे की ओर स्थित रहता है। इसके 2 तल तथा 3 धारा होती हैं। इसका पश्चतल उभरा रहता है। इसके मध्य में एक छोटी गोल हड्डी का उभार होता है, जिसे 'कपाल गुलिका' (Occipital Tubercle) कहा जाता है। इस गुलिका से एक बहुत मोटा तथा दृढ़ तन्तु प्रारम्भ होता है, जो रीढ़ की हड्डियों (कशेरुकाओं) के ऊपर की श्रेणियों में संलग्न रहता है। इसके दोनों ओर तीन उभरी हुई लकीरें बनी होती हैं, जिन्हें क्रमशः (1) अधिरेखा कहा जाता है। इन लकीरदार उभारों से अनेक मांसपेशियाँ आरंभ होती हैं, जो गर्दन, रीढ़ की हड्डी तथा पीठ से लगी रहती हैं।

इस हड्डी का 'पट्टक' पूर्वोक्त 'महाछिद्र' के अग्रभाग में स्थित तथा चौकोर होता है। इसे 'पश्च कपालास्थि का आधारी भाग' (Basilar Portion of the Occipital Bone) कहते हैं। इसके सामने का भाग जतूकास्थि (Spheniod Bone) के पिट्रस भाग के दोनों ओर मिलता है। महाछिद्र, जिसमें से 'सुषुम्ना शीर्ष' (Medulla Oblongata) निकलता है, के दोनों ओर हड्डियों के दो लम्बे उभार पाये जाते हैं।

पार्श्व कपालास्थि (Parietal Bones)

ये हड्डियाँ संख्या में दो होती हैं तथा पूर्व कपालास्थि एवं पश्च कपालास्थि के बीच में रहती हैं। ये आकार में गोल हैं। इनके दो धरातल तथा चार किनारे होते हैं। इनका ऊपरी धरातल (Superior Surface) चिकना (Smooth) तथा उभरा हुआ होता है। ये दोनों हड्डियाँ एक दूसरे से मिलकर एक गुम्बद जैसा बनाती हैं, जो 'प्रमस्तिष्क' के पार्श्वखण्ड को भली भांति आच्छादित किए रहता है।

पार्श्वखण्ड का निम्न धरातल नतोदर एवं खुरदुरा होता है। यह मस्तिष्क के सम्पर्क में रहता है तथा इसके भीतर छोटी धमनियों के चिह्न बने रहते हैं। पार्श्व कपालास्थि का अगला किनारा सीधा एवं दांतेदार होता है तथा ललाटास्थि के पट्टक के पश्चभाग से जुड़ा रहता है। इसका पिछला किनारा कुछ घुमाव लिए दांतेदार होता है, जो पश्च कपालास्थि के पट्टक अग्रधारा से जुड़ता है। इसका पार्श्वभाग भीतर भाग में पतला होता है, जो शंखास्थि (Temporal Bone) के पट्टक पर जा लगता है। दोनों पार्श्व कपालास्थियों के अधिमध्य भाग परस्पर एक दूसरे से मिले रहते हैं।

ये दोनों हड्डियाँ शैशवावस्था में प्रायः मुलायम रहती हैं तथा 5-6 महीने तक आपस में नही जुड़ पातीं, तदुपरान्त जुड़कर कठोर हो जाती हैं।

शंखास्थि (Temporal Bone)

ये हड्डियाँ सिर के दोनों ओर पार्श्व में स्थित होती हैं। इसके ऊपर पार्श्व कपालास्थि, सामने ललाटास्थि, पीछे पश्च कपालास्थि तथा नीचे जबड़े के ऊपरी भाग की स्थिति रहती है। इसमें दो छिद्र होते हैं– (1) कान का छिद्र तथा (2) नीचे की ओर का छिद्र, जिसे Carotid Canal कहा जाता है, जिसके द्वारा Internal Carotid Artery मस्तिष्क के भीतर प्रविष्ट होती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इस हड्डी के 5 भाग होते हैं—

(1) पट्टक (Squama)— यह चौड़ा भाग खोपड़ी के पार्श्व भाग में स्थित रहता है। इसका ऊपरी भाग पतला तथा गोल एवं पार्श्वभाग; कपालास्थि की पार्श्वधारा से संयुक्त रहता है। इसका अग्रभाग ललाटास्थि से जुड़ता है। इसके अधिमध्य तथा पार्श्व ये दो तल होते हैं।

(2) कर्णमूल प्रवर्ध (Mastoid Process)— यह कनपटी का पिछला भाग है जो पश्च कपालास्थि के पट्टक के अग्रभाग से जुड़ा रहता है। यह कान के छिद्र के पीछे होता है।

(3) पिट्रस भाग (Petrous Portion)— यह सिर के भीतर रहने वाला कनपटी का भाग है, जिसके पश्च भाग में कपालास्थि एवं अग्रभाग में जतूकास्थि (Spheniod Bone) स्थित रहती है। इसके कारण श्रवण-अंग स्थिर बने रहते हैं।

(4) शर प्रवर्ध (Styloi Process)— सलाई के आकार का यह अत्यन्त पतला भाग नीचे की ओर स्थित रहता है, इससे हड्डी के दो स्नायु— 'कण्ठिका शर स्नायु' तथा 'अधो हनु स्नायु' (Stylomendibulum Ligament) आरंभ होते हैं। पहला स्नायु शर प्रवर्ध से आरंभ होकर कण्ठिकास्थि से जा मिलता है तथा दूसरा जबड़े से मिल जाता है।

(5) गण्ड प्रवर्ध (Zygomatic Process)— यह एक पतली लम्बी हड्डी होती है जो कान के छिद्र के समीप से आरंभ होकर सामने गण्डास्थि (Zygomatic Bone) से जाकर मिल जाती है।

कीलकास्थि अथवा जतूकास्थि (Sphenoid Bone)

यह चौड़ी हड्डी मस्तिष्क के आधार पर, दोनों शंखास्थियों के भीतर, डैने फैलाऐ हुऐ चमगादड़ की भांति रहती है। इसके (1) पिण्ड तथा (2) वक्षक नामक दो भाग होते हैं।

'पिण्ड' नामक भाग पतला, छोटा तथा चौकोर होता है। यह दोनों वक्षकों के मध्य में रहता है तथा पिछला भाग पश्चकपालास्थि के आधारी भाग से जुड़ा रहता है। इसके ऊपरी भाग में 'पियूष ग्रंथि' एवं 'पिनियल बॉडी' स्थिर रहती है।

'वक्षक' नामक फैले हुए भाग के ऊपर वृहद् मस्तिष्क का आधार रहता है। इसका अग्रभाग ललाटास्थि के पिण्ड के पृष्ठभाग से जुड़ा रहता है तथा पृष्ठभाग शंखास्थि के पिट्रस भाग के अग्रभाग से संयुक्त रहता है।

झर्झरास्थि (Ethmiod Bone)

यह हड्डी नाक के ऊपर तथा आँख के पीछे की ओर होती है।

3.6.2 चेहरे की हड्डियाँ (Bones of Face)

सम्पूर्ण मुखमण्डल अर्थात्, चेहरा 14 हड्डियों से बना है। इनके नाम निम्नानुसार हैं—

2 ऊर्ध्वहनु अस्थि (Superior Maxillary)

1 अधोहनु अस्थि (Inferior Maxillary)

2 कपोलास्थि (Malar or Cheek Bones)

2 तालु अस्थि (Palatine Bones)

2 नासास्थि (Nasal Bones)

2 अध: शुक्तिका अस्थि (Inferior Nasal Conchae)

1 नासाफलकास्थि (Vomer Bone)

2 अश्रु अस्थि (Lacrimal Bones)

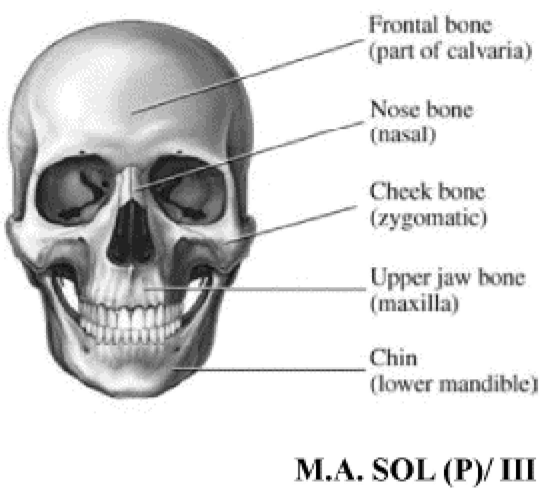

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इनमे से केवल अधोहनु अस्थि (Lower Jaw-Inferior Maxillary) के अतिरिक्त शेष 12 हड्डियाँ अचल (Non-Movable) हैं और वे कपाल के साथ मिली रहती हैं।

इन हड्डियों के विषय में विशेष जानकारी निम्नानुसार समझनी चाहिए-

ऊर्ध्वहनु अस्थि (Superior Maxillary Bone)

ये हड्डियाँ संख्या में दो होती हैं तथा परस्पर जुड़ी रहती हैं। इनसे गाल (कपोल) बनने में सहायता मिलती है। इनके तीन मुख्य भाग होते हैं—

(1) पेलेटाइन भाग— इसमें परस्पर बीच में जुड़ी हुई दो पतली हड्डियाँ होती हैं, जिनके द्वारा मुख का ऊपरी भाग तथा ऊपरी नाक का आधार तैयार होता है। तालवास्थि के पिछले भाग पर एक 'मृदुतालु' नामक पतली झिल्ली होती है।

(2) एल्विओलर भाग— यह गोलाकार भाग मुंह के ऊपरी जबड़े को बनाता है। इसके एक घेरे में 16 छिद्र होते हैं, जिनमें ऊपरी दांत रहते हैं।

(3) आरबाइटल— यह दोनों नेत्र गोलकों का धरातल भाग होता है।

अधो हनु अस्थि (Inferior Maxillary Bone)

यह संख्या में एक होती है। इसे 'निचले जबड़े की हड्डी' भी कहा जाता है। यह जूते के नाल के आकार की होती है। इसके महराब से 'हनु' बनता है। इसके चौड़े उभार को 'हनुकूट' (Ramus of Mandible) कहते हैं। इसके दो धरातल होते हैं। बाहरी उत्तल धरातल में होठ को गति प्रदान करने वाली पेशियाँ तथा भीतरी अवतल भाग में जीभ को गतिशील रखने वाली पेशियाँ होती हैं।

इसका निचला भाग बहुत पतला होता है और उसमें से एक बहुत पतली मांसपेशी गले की ओर नीचे जाती है जिसे प्लेटिसमा (Platysma) कहा जाता है।

कपोलास्थि अथवा गण्डास्थि (Malar or Cheek Bone)

ये हड्डियाँ संख्या में दो होती हैं। ये चेहरे के बाहरी तथा ऊपरी भाग में रहती हैं। इनके द्वारा गालों का ऊपरी उभार बनता है। ये हड्डियाँ आयताकार होती हैं तथा गाल के दोनों ओर स्थित रहती हैं। इनके चार भाग होते हैं। इसका एक ऊपरी भाग नेत्रों का आधार (Eye Orbit) बनाता है तथा नासास्थि से मिल जाता है। पार्श्वभाग शंखास्थि के गण्ड प्रवर्ध से मिला रहता है। निम्नभाग ऊर्ध्व हनु अस्थि से मेल करता है तथा बाहरी धरातल चर्म से ढंका रहता है।

तालु अस्थि (Palatine Bones)

ये हड्डियाँ भी संख्या में दो होती हैं। ये एक-एक की संख्या में नाक के पीछे दोनों ओर रहती हैं। इनके द्वारा तालु का निर्माण होता है। तालु के दो अंश होते हैं— (1) कठिन तथा (2) कोमल। कठिन अंश तो दांत का पृष्ठ भाग होता है तथा उसके पिछले किनारे से कोमल अंश मिला रहता है।

नासास्थि (Nasal Bones)

ये हड्डियाँ भी संख्या में दो होती हैं तथा नाक के बीच की दीवार के पिछले भाग का निर्माण करती हैं। ये दोनों एक दूसरे के सम्मुख जुड़ी रहती हैं। इनके बीच से एक हड्डी निकलती है, जो नाक को दांये-बांये दो भागों में बांटती हैं।

नासास्थि का ऊपरी भाग ललाटास्थि के निम्न तथा मध्य भाग से जुड़ा रहता है। इसके अभिमध्य तल के ऊपर बहुत पतली झिल्ली होती है, जो भीतर की ओर रहती है। यहीं से घ्राण-तंत्रिकाएँ ललाटास्थि के निचले छिद्र को पार करती हुई ऊपर मस्तिष्क में जाती हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इस हड्डी का पार्श्वतल नेत्रगुहा की अभिमध्य सीमा बनाता हुआ उर्ध्व हनु अस्थि से जुड़ा रहता है। इसका निम्न भाग 'नासा उपास्थि' नामक नरम हड्डी से संयुक्त रहता है।

अध: शुक्तिका अस्थि (Inferior Nasal Conchae)

ये हड्डियाँ भी संख्या में दो होती हैं तथा एक-एक करके दोनों नासा-गह्वरों में रहती हैं।

नासा फलकास्थि (Vomer Bone)

यह हड्डी केवल एक होती है तथा नाक के बीच की दीवार का पिछला भाग बनाती है।

अश्रु अस्थि (Lacrimal Bones)

ये हड्डियाँ संख्या में दो होती हैं तथा चक्षु-गह्वर के सामने वाले भाग में स्थित रहती हैं। इनके मार्ग से आंसू निकलकर नाक में आ जाते हैं।

चक्षु-गह्वर

सिर के दोनों ओर जो एक-एक गड्ढे होते हैं, उन्हें 'चक्षु-गह्वर' कहा जाता है। इसी में चक्षु-गोलक रखा रहता है। यह निम्नलिखित 7 हड्डियों से बनता है–

(1) ललाटास्थि (Frontal Bone)

(2) झर्झरास्थि (Ethmoid Bone)

(3) जतूकास्थि (Spheniod Bone)

(4) अश्रु अस्थि (Lacrimal Bone)

(5) उर्ध्वहनु अस्थि (Superior Maxillary Bone)

(6) तालु अस्थि (Palatine Bone)

(7) गण्डास्थि (Malar Bone)।

3.6.3 कशेरुक दण्ड या मेरुदण्ड की हड्डियाँ (Vertebral Column)

मेरुदण्ड में कुल 33 हड्डियाँ होती हैं, जिनमें से 24 अस्थियाँ गतिशील रहती हैं। ये हड्डियाँ आपस में एक माला की मनिकाओं की भांति जुड़ी रहती हैं और इन्हें 'कशेरुका' (Vertebra) कहा जाता है। यह पीठ के ठीक बीचों-बीच स्थित होती है। यह शरीर को मजबूत आधार देती है। इसकी बनावट बिल्कुल सीधी न होकर तीन स्थानों से टेढ़ी है। मेरुदण्ड पश्च कपालास्थि (Occipital Bone) के निम्न भाग से आरम्भ होकर नीचे गुदा के समीप समाप्त होता है।

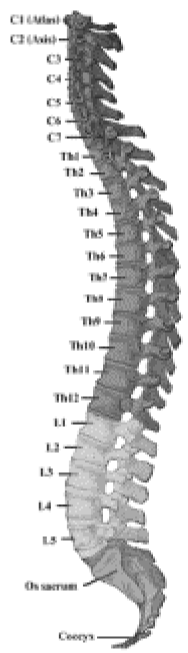

गर्दन, पीठ तथा कमर से नीचे तक हुण्डे की भांति निर्मित इस कड़ी वस्तु को मेरुदण्ड, रीढ़ अथवा कशेरुक दण्ड नामों से पुकारा जाता है।

मेरुदण्ड की कुल 33 कशेरुकाएँ 5 भागों में विभाजित हैं–

1. ग्रीवा कशेरुका (Cervical Vertebrae)– इसमें कुल 7 कशेरुकाएँ होती हैं। ये गर्दन में रहती हैं।

2. वक्षीय अथवा पृष्ठ कशेरुका (Thoracic or Dorsal Vertebrae)– इसमें कुल 12 कशेरुकाऐं होती हैं। ये वक्ष तथा पीठ के मध्य भाग में रहती हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3. कटि कशेरुका (Lumber Vertebrae)— इसमें कुल 5 कशेरुकाऐं होती हैं। ये कटि-प्रदेश में स्थित रहती हैं।

4. त्रिक कशेरुका (®cral Vertebrae)— ये 'त्रिक' स्थान में रहती हैं तथा संख्या में 5 होती हैं, परंतु ये एक दूसरे से इस प्रकार मिली होती हैं कि एक ही हड्डी जैसी प्रतीत होती है। इसी कारण इन्हें 'त्रिकास्थि' भी कहा जाता है।

5. अनुत्रिक कशेरुका (Coccygeal Vertebrae)— ये संख्या में 4 होती हैं, परंतु ये भी एक दूसरे के साथ मिलकर एकाकार हो गई हैं, इसी कारण इन्हें 'गुदास्थि' भी कहा जाता है।

उक्त प्रकार से गर्दन में 7, वक्ष में 12, कटि में 5, त्रिक में 5 तथा अनुत्रिक में 4, कुल 33 कशेरुकाऐं हैं। मनुष्य शरीर के त्रिक प्रदेश (®cral Region) तथा अनुत्रिक प्रदेश (Coccygeal Region) की अस्थियाँ बचपन में जुड़ी हुई नहीं होती हैं लेकिन उम्र बढ़ने के साथ-साथ ये परस्पर जुड़कर दो स्वतंत्र अस्थियों का आकार ले लेती हैं। अत: इन हड्डियों अथवा कशेरुकाओं की कुल संख्या 26 ही रह जाती है।

मनुष्य कशेरुक-सूत्र निम्न प्रकार है—

C	=	7
T	=	12
L	=	5
S	=	5
C	=	4
कुल अस्थियाँ (Total Vertebrae)	=	**33**

कशेरुकाओं की रचना

मेरुदण्ड की प्रत्येक हड्डी कशेरुका (Vertebrae) के नाम से जानी जाती है। सभी कशेरुकाओं की कशेरुककाय (The body) सामने की ओर स्थित होती है। कशेरुका का आकार कशेरुका की स्थिति पर निर्भर करता है। आकार की दृष्टि से गर्दन की कशेरुकाएँ छोटी होती हैं तथा कमर की कशेरुकाएँ बड़ी होती हैं। कशेरुकाओं का अग्रभाग चौड़ा तथा गोल होता है, जिसे पिण्ड (Body) कहते हैं। इस पिण्ड के पिछले तथा बाहरी भाग से दोनों ओर को दो लम्बी हड्डियाँ निकलती हैं, जो पीछे की ओर आपस में मिलकर एक बड़े छिद्र का निर्माण करती हैं। इन दोनों हड्डियों को 'चाप' (Arch) कहा जाता है। इनके द्वारा निर्मित छिद्र को 'कशेरुका छिद्र' (Vertebral Foramen) कहते हैं। 'सुषुम्ना' इसी छिद्र में होती हुई नीचे की ओर जाती है।

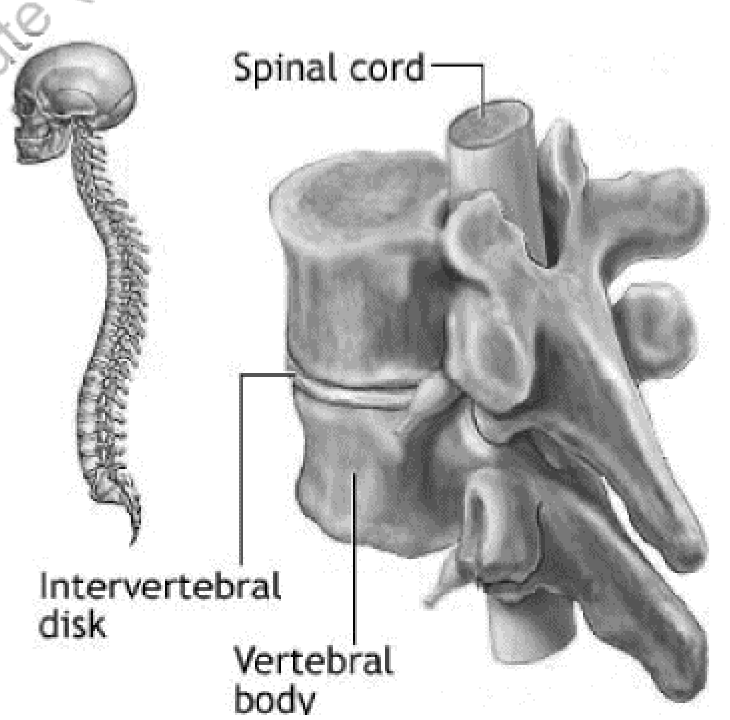

दोनों चापों (Arch) के मिलन-स्थल पर एक लम्बी तथा नुकीली हड्डी पीछे तथा नीचे की ओर झुकी रहती है, जिसे 'कण्टक' (Spine) कहा जाता है। 'चाप' तथा 'पिण्ड' के सन्धि-स्थल से एक-एक लम्बी-हड्डी दायीं तथा बांई ओर को जाती है, इन्हें 'अनुप्रस्थ प्रवर्ध' (Transverse Process) कहा जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

'चाप' तथा 'पिण्ड' के मिलन-स्थल पर दोनों ओर ऊपर तथा नीचे दो गड्ढे होते हैं, जिन्हें 'कशेरुक खात' (Vertebral Notch) की संज्ञा दी गई है।

जब एक कशेरुक दूसरे कशेरुक के ऊपर बैठता है, उस समय कशेरुका के नीचे वाला खात (गड्ढा) तथा ऊपर वाला खात आपस में मिलकर एक-एक छिद्र बनाते हैं, जिनके द्वारा 'सुषुम्ना तंत्रिकाओं' (Spinal Nerves) का प्रादुर्भाव होता है। खात के समीपस्थ पिण्ड से संयुक्त हड्डियों के दो पतले और गोल गोल भाग ऊपर की ओर उठे रहते हैं। इन्हें 'फलक' (Facets) कहा जाता है। ये 'पिण्ड' के दोनों ओर रहते हैं। जब एक 'कशेरुक' दूसरे कशेरुक के ऊपर बैठता है, तब ये फलक एक दूसरे से संयुक्त हो जाते हैं।

प्रत्येक ऊपर तथा नीचे वाले दो कशेरुकों के मध्य एक प्रकार की उपास्थि की गद्दी रहती है, जिसे 'अन्तर कशेरुका तन्तु उपास्थि' (Inter Vertebral Fibro Cartilage) कहा जाता है। यह गद्दी कशेरुकों को परस्पर आघात लगने से बचाने का कार्य करती है।

3.7 अनुबंधीय कंकाल (Appendicular Skeleton)

अंस मेखला (Pactoral girdle), हाथ की हड्डियाँ, श्रोणिमेखला (Pelvic girdle) तथा पैर की हड्डियाँ अनुबधीय कंकाल में आते हैं। अनुबंधीय कंकाल की अस्थियों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है—

3.7.1 अंसमेखला व हाथों की हड्डियाँ

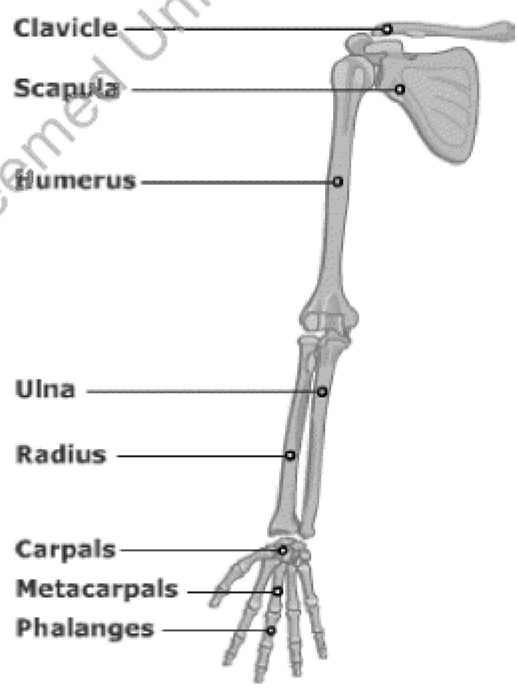

स्कन्धास्थियाँ (Scapula) : ये छाती के पीछे की ओर होती हैं। आकार में ये तिकोनी व चपटी होती हैं। ये अस्थियाँ संख्या में दो होती हैं तथा ये पसलियों के दोनों ओर स्थित रहती हैं। स्कन्धास्थियों के ऊपरी ओर सोकेट जैसी संरचना बनी होती हैं, जिसमें प्रगण्डास्थियों (Humerus) के शीर्ष (Head) जुड़े रहते हैं और इस जोड़ पर कंदूक उल्लूखल संधि (Ball and Socket Joint) बनती है।

हंसली की अस्थियाँ (Collarbenes or Clavicle) : यह अंग्रेजी के "J" अक्षर के आकार की लम्बी अस्थि है, जो संख्या में दो होती हैं तथा दोनों अस्थियाँ उरोस्थि (Sternum) से जुड़कर स्कन्धास्थियों से जुड़ती हैं। इसमें दोहरा टेढ़ापन होता है, जिससे ये उरोस्थि व स्कन्धास्थियों से सरलता से जुड़ पाती हैं।

प्रगण्डास्थियाँ (Humerus) : ये दो अस्थियाँ होती हैं, जिनमें से एक बायीं ओर की स्कन्धास्थि से संधि करती है तो दूसरी दायीं ओर से। इनका ऊपरी शीर्ष (Head), बॉल (Ball) की तरह गोल होता है जो स्कन्धास्थि के सोकेट से जुड़ा रहता है। इसका दूसरा सिरा नीचे की अन्तःप्रकोष्ठास्थि (Alna) तथा बहिर्प्रकोष्ठास्थि से जुड़कर कुहनी का जोड़ बनाती है।

अन्तःप्रकोष्ठास्थि व बहिर्प्रकोष्ठास्थि (Alna and Radius) : अन्तःप्रकोष्ठास्थि (Alna) बाहु के नीचे भीतरी ओर की अस्थि है तथा बहिर्प्रकोष्ठिका (Radius) बाहु के नीचे बाहरी ओर की अस्थि है। इन दोनों अस्थियों के मिलने से बाहु का नीचे का भाग बनता है। कलाई के नजदीक बहिर्प्रकोष्ठास्थि अधिक चौड़ी होती है जबकि कुहनी के नजदीक अन्तःप्रकोष्ठास्थि अधिक चौड़ी होती है। ये अस्थियाँ दोनों भुजाओं में दो-दो होती हैं तथा कुल चार होती हैं।

कलाई की अस्थियाँ (Carpal) : इनकी कुल संख्या 16 होती है। प्रत्येक हाथ में इनकी संख्या 8 होती है। ये आठों अस्थियाँ परस्पर मिलकर कलाई का निर्माण करती हैं। ये अस्थियाँ परस्पर इस प्रकार व्यवस्थित होती हैं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कि कलाई अपने स्थान पर स्वतंत्रापूर्वक घूम सकती है। कलाई का इस प्रकार सरलता से हिलना-डुलना इसलिए संभव हो पाता है, क्योंकि ये अस्थियाँ लिगामेंट्स से बन्धी होती हैं।

हथेली की अस्थियाँ (Meta Carpals)

हथेली की अस्थियों की कुल संख्या 10 होती है और प्रत्येक हथेली में 5 अस्थियाँ होती हैं। अच्छी प्रकार व्यवस्थित होकर ये अस्थियाँ हथेली को आकार देती हैं। कलाई से जुड़कर ये अस्थियाँ अंगुल्यास्थियों को आधार देती हैं।

अंगुल्यास्थियाँ (Phalanges)

अंगूठों (Thumbs) में दो-दो तथा शेष आठ अंगुलियों में 3-3 अस्थियाँ होती हैं। इस प्रकार इनकी कुल संख्या 28 होती है। एक हाथ की अंगुलियों में कुल 14 अंगुल्यास्थियाँ होती हैं। ये अंगुल्यास्थियाँ परस्पर क्रमशः व्यवस्थित रहती हैं ताकि अंगुलियाँ आसानी से जुड़ सकें।

3.7.2 श्रोणिमेखला व पैरों की हड्डियाँ

कूल्हे की अस्थियाँ (Hip bones) : दो कूल्हे की अस्थियाँ श्रोणि मेखला में ही होती हैं। ये इलियम, इश्चियम तथा प्यूबिस इन तीन अस्थियों के मिलने से बनती है, जो सैक्रम से जुड़ी होती हैं। इलियम श्रोणि मेखला का ऊपरी भाग, प्यूबिस कूल्हे की अस्थि का आगे का भाग तथा इश्चियम पीछे का भाग बनाती है। मलाशय, मूत्राशय तथा गर्भाशय इसमें ही स्थित होते हैं। इस प्रकार यह गुदा क्षेत्र की सबसे चौड़ी अस्थि है।

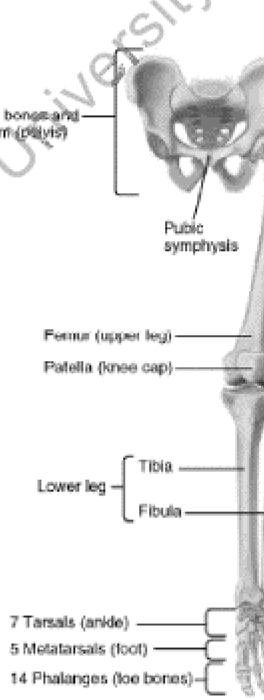

श्रोणि (Pelvic) : कूल्हे की अस्थियों के दो एक जैसे अर्द्धांशों से बनी श्रोणिमेखला (Pelvic girdle) एक विशालकाय अस्थि है। इसके दोनों अर्द्धांश आगे से परस्पर प्यूबिक सिम्फाइसिस से सम्बद्ध रहते हैं तथा पीछे से सैक्रोइलिएक से।

जंघास्थियाँ (Femur) : ये दो अस्थियाँ होती हैं- एक बाएँ पैर की जंघा में तथा दूसरी दाएं पैर की जंघा में। जंघास्थि मानव शरीर की सबसे बड़ी व मजबूत अस्थि है। इसका शीर्ष (Head) श्रोणि मेखला से संधि करता है तथा दूसरा सिरा अन्तर्जंघास्थि एवं बहिर्जंघास्थि से मिलकर घुटने की संधि (Knee Joint) बनाता है।

जानुकास्थियाँ (Patella) : ये हमारे पैरों के घुटनों में स्थित होती हैं। संख्या में ये दो होती हैं। आकार में पतली, चपटी एवं तिकोनी होती हैं। जंघास्थि (Femur) और अन्तर्जंघास्थि व बहिर्जंघास्थि के बीच सामने की ओर अवस्थित ये अस्थियाँ हमारे घुटनों के लिए ढ़ाल का काम करती है अर्थात् ये हमारे घुटनों को आघात आदि से बचाए रखती हैं।

अन्तर्जंघास्थियां एवं बहिर्जंघास्थियां (Tibia and Fibula) : दो दायें पैर तथा दो बायें पैर में स्थित ये कुल चार लम्बी अस्थियाँ होती हैं। अन्तर्जंघास्थि व बहिर्जंघास्थि का शीर्ष जंघास्थि (Femur) से घुटने के भाग में संधि करता है तथा नीचे का सिरा गुलफास्थियों (Tarsals) से संधि करता है। अन्तर्जंघास्थियाँ बहिर्जंघास्थियों से थोड़ी मोटी व मजबूत होती हैं।

गुल्फिकास्थियाँ (Tarsals) : ये दोनों पैरों में सात-सात अस्थियाँ होती हैं। सातों अस्थियाँ परस्पर व्यवस्थित होकर तलवे की अस्थि "गुल्फ" बनाती है। गुल्फ अस्थि को बनाने वाली ये सात अस्थियाँ निम्न नामों से जानी जाती हैं-

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

घुटिकास्थि (Talsus)	1
नौकाभास्थि (Scaphoid)	1
कीलकास्थियाँ (Cuneiform)	3
पार्ष्णिकास्थि (Calcaneous)	1
घनास्थि (Cuboid)	1
कुल अस्थियाँ	**7**

अनुगुल्फिकास्थियाँ (Meta Tarsals) : ये कुल 10 होती हैं और एक-एक पैर में 5-5 अस्थियाँ होती हैं। ये पैर के तलवे को बनाती हैं। ये अनुगुल्फिकास्थियों से संधि करती हैं तथा पैरों की अंगुल्यास्थियों को आधार देती है।

अंगुल्यास्थियाँ (Phalanges) : इनकी कुल संख्या 28 होती है। ये एक-एक पैर में 14-14 अस्थियाँ होती हैं। अंगूठों में 2-2 तथा शेष आठ अंगुलियों में 3-3 अस्थियाँ होती हैं, जो क्रमशः इस प्रकार व्यवस्थित होती है कि अंगुलियाँ आसानी से अपने स्थान पर हिल-डुल सकती हैं।

3.8 संधियाँ (Articulations)

शरीर के कंकाल की रचना अनेक अस्थियों से मिलकर होती है। इसमें छोटी-बड़ी, लंबी-पतली, चपटी-गोल सभी आकारों की अस्थियाँ रहती हैं। ये आपस में स्थान-स्थान पर जुड़ती हैं, जिससे शरीर का स्वरूप तैयार होता है। शरीर में जहाँ-कहीं दो या दो से अधिक अस्थियाँ आपस में जुड़ती हैं वहाँ जोड़ या संधि बनती है। छोटी-बड़ी अस्थियों के इस प्रकार आपस में जुड़ने से शरीर को गति करने की क्षमता प्राप्त होती है।

रचना के आधार पर, संधियों को तीन वर्गों में रखा गया है। यथा-

1. सूत्रक संधि (Fibrous Joints),
2. उपास्थि संधि (Cartilaginous Joints) तथा
3. स्नेहक संधि (Synovial Joints)।

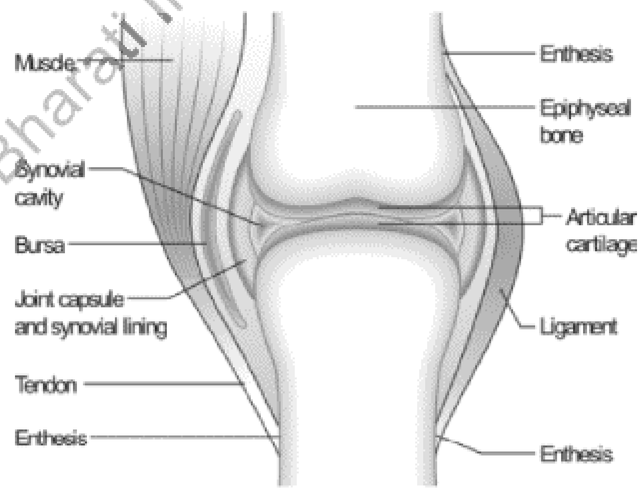

जैसा कि इनके नाम से ही स्पष्ट है सूत्रक संधि में दो अस्थियाँ सूत्रों से निर्मित एक शीट या चादर से आपस में संबंधित रहती हैं और इसी के सहारे गति भी करती हैं।

उपास्थि संधि में संधि-स्थल पर उपास्थि की शीट अथवा डिस्क लगी रहती है।

स्नेहक संधि में दोनों जुड़ने वाली अस्थियों के मध्य स्नेहक-तरल द्रव भरा रहता है। स्नेहक द्रव के कारण अस्थियाँ एक-दूसरे पर स्वतंत्र गति कर सकती हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

संधियों का यह विभाजन केवल रचना के आधार पर है। वास्तविक स्थिति यह है कि प्राय: सभी संधियों में इन तीनों प्रकार की रचनाओं का सम्मिलित स्वरूप देखने को मिल जाता है।

3.8.1 गति के आधार पर संधियों का वर्गीकरण

संधियों का निम्नांकित वर्गीकरण गति के आधार पर है। जिस स्थान पर अस्थियाँ आपस में संधि बनाती हैं वहाँ पर वे थोड़ी-बहुत गति कर सकती हैं, परन्तु कुछ संधियाँ ऐसी भी हैं जिनमें गति की क्षमता तनिक भी नहीं रहती है। शरीर की कुछ संधियों में स्वच्छंद गति की क्षमता रहती है। कुछ संधियों पर केवल हल्की गति हो सकती है। इस प्रकार गति के आधार पर संधियाँ तीन वर्ग की होती हैं–

1. अचल संधियाँ (Synarthroses),
2. अल्पचल संधियाँ (Amphiapthroses),
3. अबाधचल संधियाँ (Diapthroses)।

अचल संधियां (Immovable Joints)

मानव शरीर में जब दो या दो से अधिक अस्थियाँ इस प्रकार मिलती हैं कि उनमें कोई गति संभव नहीं हो पाती है तो उस स्थान की संधि को 'अचल संधि' कहते हैं। प्राय: अचल संधि वाले स्थान पर मिलने वाली अस्थियाँ आपस में पूरी तरह मिली रहती हैं, क्योंकि अचल संधियों में मिलने वाली अस्थियों के संधितल पर कोई उपास्थि नहीं पाई जाती।

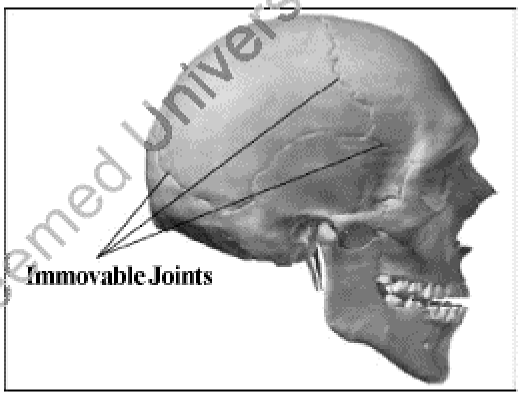

कपाल की अस्थियाँ अचल संधि का सही उदाहरण होती हैं।

ये अस्थियाँ मिलने के बाद गति नहीं करती और पूरी तरह से स्थिर रहती हैं। मिलने वाली अस्थियों के किनारे पर आरी के समान दांत (Serrations of ®w Tooth) रहते हैं। दोनों अस्थियों के दांत एक-दूसरे के अनुरूप होते हैं, अर्थात् एक अस्थि में जो दांत होते हैं, उनके बीच के खाली स्थानों में फिट बैठने योग्य दांत दूसरी अस्थि में रहते हैं। जुड़ने के समय एक के दांत दूसरे में फिट बैठकर सीवनी (Sutures) संधि बनाते हैं। यही कारण है कि इस संधि को सीवनी-संधि (Suture Joints) भी कहते हैं। कपाल में ऐसी कई गतिविहीन सीवनी संधियाँ हैं।

अल्प चल संधियां (Slightly Movable Joints)

कंकाल की अस्थियाँ शरीर में कई स्थानों पर एक-दूसरे से इस प्रकार जुटती हैं कि हल्की गति करने में समर्थ होती हैं। इस प्रकार की संधियों को अर्द्धचल संधि भी कहते हैं। इस प्रकार की संधि के स्थान पर जुटने वाली अस्थियों पर प्राय: थोड़ी उपास्थि रहती है तथा जब दबाव पड़ता है तो ये थोड़ी दब भी जाती हैं। गति करते समय एक अस्थि दूसरी पर थोड़ी-सी आवश्यकतानुसार, झुक भी जाती है। इस वर्ग में कहीं-कहीं संधि की रचना, 'सूत्रण-संधि' के समान भी है। जैसा कि अंतर्जंघिका तथा बहिर्जंघिका के बीच है। दोनों अस्थियों के बीच, सूत्रों की पतली शीट है, जिसके सहारे ये एक-दूसरे पर हल्की गति कर सकती हैं। इस प्रकार की संधि का उदाहरण कशेरुक तथा पर्शुकाओं के बीच संधि भी है।

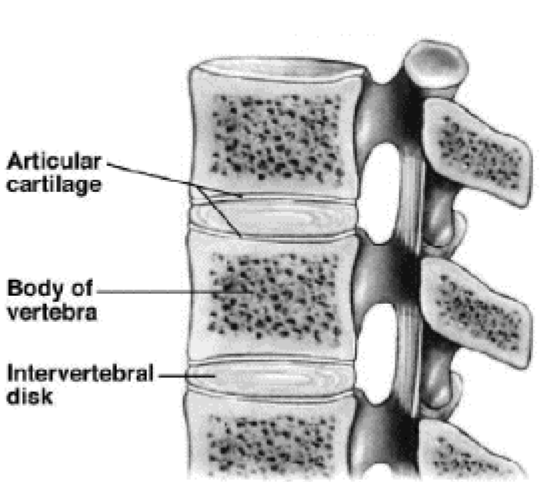

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अबाध चल संधियाँ (Movable Joints)

अबाध चल संधियाँ शरीर में कई स्थानों पर रहती हैं। ऐसी संधियाँ उन्हीं स्थानों पर होती हैं जहाँ जुड़ने वाली अस्थियाँ एक-दूसरी के साथ काफी अधिक गति करने की क्षमता रखती हैं। गतियाँ जो इस प्रकार की संधियों में लगी अस्थियों द्वारा संभव होती हैं कई प्रकार की होती हैं तथा कई दिशाओं में भी होती हैं। सभी जुड़ने वाली अस्थियों के बीच उपास्थि (Cartilage) रहती है। अस्थि के छोर पर शुभ्र उपास्थि (Hayline Cartilage) का आवरण रहता है तथा जुड़ने वाली अस्थियों के मध्य में तंतु-उपास्थि (Fibro Cartilage) की गद्दी रहती है। इन सभी के कारण अस्थियाँ एक-दूसरी से सटी तथा यथास्थान रहती हैं। उपास्थि की उपस्थिति के कारण ही अस्थियों की संधिस्थल पर स्वतंत्र गति करते समय रगड़ खाने की संभावना से भी रक्षा होती है।

इसके अतिरिक्त अबाध चल संधि में कुछ अन्य विशेषताएं भी होती हैं। अबाध चल संधि में जुड़ने वाली अस्थियों के छोरों पर एक विशेष प्रकार का संधि-पृष्ठक (Articulatory Facet) रहता है। संधि-सतह चिकनी रहती है तथा विपरीत दिशा से आकर जुड़ने वाली अस्थि की विशिष्ट रचना के अनुरूप ही, संधि-सतह (Articulating Surface) की रचना होती है। जैसे यदि एक अस्थि के छोर पर गोल मुण्डक रहता है, तो जुड़ने वाली दूसरी अस्थि में इसके अनुरूप गर्त रहता है। दोनों अस्थियों की रचना इस प्रकार की होती है कि वे एक विशेष प्रकार की गति करने में समर्थ होती हैं। अबाध चल संधि पर जुड़ने वाली अस्थियों के छोर पर कुछ रचना संबंधी विशेषताएं होती हैं।

1. अबाध चल संधियों की रचना

शरीर में अबाध चल संधि सबसे अधिक हैं। इनकी रचना भी गूढ़ और कौशल युक्त है। संधि के स्थान पर संपर्क स्थापित करने वाली अस्थियों के सिर पर संधि-उपास्थि (Articular Cartilage) की गद्दी अथवा परत रहती है। उपास्थि से जड़े हुए अस्थि के सिर पर झिल्ली का कोष, जो थैली के समान होता है चढ़ा रहता है। इसे संधि-संपुट (Joint Capsule) कहते हैं। संधि-संपुट दृढ़ तन्तु ऊतकों (Strong Fibrous Tissues) का बना होता है। कोष दृढ़ संपुटीय स्नायुकों (Capsular Ligaments) द्वारा बंधा रहता है तथा अस्थियों को स्थिर रखने का काम करता है। स्नायु सौत्रिक उत्तक के बने हुए चौड़े या गोल रज्जु होते हैं और अस्थियों के सिरे पर लगे रहते हैं। संधि में ऐसे ही स्नायु आगे पीछे तथा पार्श्व में स्थिर रहते हैं। स्नायु अस्थियों के भागों को अपने स्थान में स्थित रखते हैं। संधि-संपुट के भीतर एक कोमल स्नेहिक-कला (Delicate Synovial Membrane) का स्तर रहता है। संधि-संपुट में सदैव ही चिकना-स्निग्ध-द्रव्य (Synovial Fluid) बनता रहता है जिससे संधि कोषांतर्गत अस्थियों का भाग चिकना रहता है। स्नेहक द्रव्य निरन्तर संधि गुहा (Joint Cavity) में रिसता रहता है। इससे संधियों को गति करने में सहायता मिलती है। इस प्रकार की विशिष्ट रचना के कारण इस वर्ग की संधियों को सिनोवियल संधि (Synovial Joints) भी कहते हैं। इस प्रकार इन संधियों में रचना संबंधी चार विशेषताएं होती हैं—

1. संधि बनाने वाली प्रत्येक अस्थि का छोर, शुभ्र-उपास्थि से ढका रहता है।
2. संधिबद्ध होने वाली अस्थियों के छोर एक तंतु से निर्मित कोष में बंद रहते हैं और स्नायु इन्हें ऊपर से बांध कर सहारा देते हैं।
3. संधि-संपुट के भीतर स्नेहक कला का स्तर रहता है।
4. संधि-गुहा के भीतर स्नेहक-द्रव्य भरा रहता है।

2. अबाध चल संधियों के प्रकार

अबाध चल संधियों के उदाहरण शरीर में सबसे अधिक हैं। इनके कई प्रकार हैं तथा इनकी रचना में भी थोड़ा बहुत अंतर रहता है। इनकी गति-क्षमता में भी भिन्नता रहती है। ये संधियाँ निम्नांकित प्रकार की होती हैं—

(क) कंदुक उलूखल संधि (Ball and Socket Joint)

(ख) कोर संधि (Hinge Joint)

(ग) धुराग्र संधि (Pivot Joint) और

(घ) संसर्पी संधि (Gliding Joint)।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

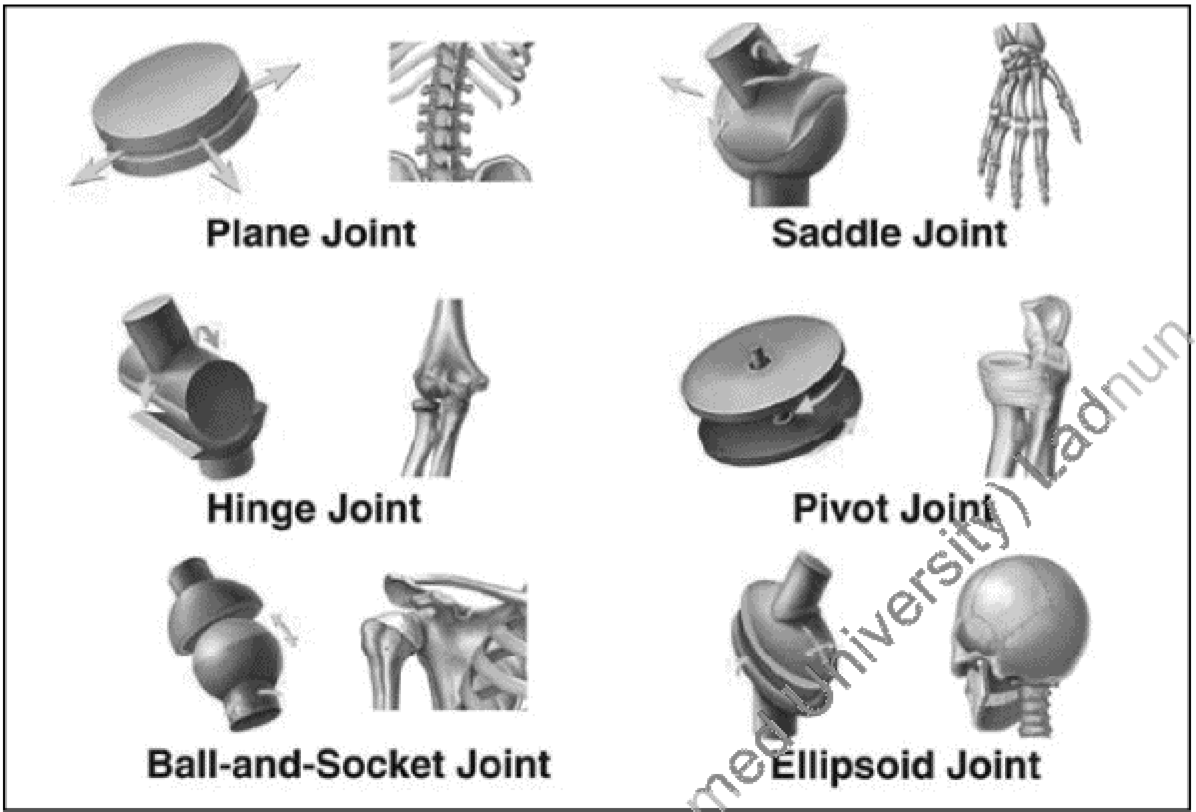

Types of Movable Joints

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(क) कंदुक उलूखल संधि (Ball and Socket Joint)

स्कंध तथा नितम्ब की संधियाँ इसी वर्ग की हैं। स्कंध की संधि बाहु तथा कंधे के मिलन-स्थल पर तथा नितंब की संधि पैरों और नितंब के मिलन-स्थल पर बनती है। इस प्रकार की संधियों में अत्यधिक गति-क्षमता होती है। इतना ही नहीं इनकी गति भी प्रत्येक दिशा में हो सकती है। बाहु तथा ऊरू को हम थोड़ा-बहुत सभी दिशाओं में घुमा सकते हैं।

कंदुक उलूखल संधि की विशेषता है कि संधिबद्ध होनेवाली एक अस्थि में एक गर्त होता है तथा दूसरी अस्थि का सिरा गोल रहता है। स्कंध-संधि तथा नितंब-संधि दोनों में एक अस्थि लंबी होती है और लंबी अस्थि का सिरा गोल रहता है। इसके विपरीत वाली अस्थि का आकार चपटा और फैला हुआ रहता है, जैसा कि अंसफलक (Scapula) तथा अंसमेखला (Pelvic Girdle) होती हैं। उन्हीं दोनों में एक प्याले जैसे गड्ढे में समा कर संधि बनाता है। दोनों लंबी अस्थि के छोर उपास्थि की पतली तह (Articular Cartilage) से ढंके रहते हैं। प्याले के आकार के गड्ढे के तल में एक छोटा स्नायु बंधा रहता है। स्नायु संधि-स्थल पर संधि-संपुट को चारों ओर से घेर कर भी बांधे रहते हैं। संधि-संपुट इसके भी ऊपर स्नायु-पेशियों से ढंका रहता है।

(ख) कोर संधि (Hinge-Jiont)

कोर संधि को 'चूलदार संधि' भी कहते हैं। कब्जे के सहारे किवाड़ एक ओर को तो पूरी तरह से खुल जाते हैं, परन्तु दूसरी ओर नहीं मुड़ पाते हैं, न ही किवाड़ ऊपर-नीचे की ओर किसी प्रकार की गति करते हैं। ऐसी ही रचना से मिलती-जुलती संधि शरीर में जहाँ भी रहती है वहाँ उसकी गति किवाड़ के समान ही एक दिशा में होती है। कुहनी, घुटने, जबड़े, टखने और अंगुलियों में इसी प्रकार की संधि रहती है। इस धारा की सन्धि से जुटने वाली अस्थियाँ प्राय: आमने-सामने ही मुड़ सकती हैं तथा किसी एक ही दिशा में एक-दूसरे के समीप आ सकती हैं या दूर जा सकती हैं। इनमें एक अक्ष या धुरी (Axis) पर, जो अस्थि की रेखा पर होती है, गति होती है।

(ग) धुराग्र संधि (Pivot and ®ddle Joints)

धुराग्र संधि कई प्रकार की होती है। इस संधि की रचना में एक अस्थि में कील या धुरी के समान ऊपर निकला हुआ भाग रहता है तथा उसमें संधि बनाने वाली दूसरी अस्थि में फंस कर समा जाने योग्य छिद्र रहता है। कील के ऊपर फंसी छिद्रयुक्त अस्थि, कील के ही सहारे कुछ-कुछ दाहिने-बांये गति कर सकती है। ऐसी संधि ग्रीवा के प्रथम एवं द्वितीय कशेरुक अर्थात् एटलस एवं एक्सिस में रहती है, इस संधि में एटलस अस्थि का रिंग के समान रिक्त स्थान एक्सिस अस्थि के दन्ताभ प्रवर्ध (Odontoid Process) में फंस जाता है। इसी संधि के सहारे सिर को घुमाया जा सकता है। इस प्रकार कील पर अर्थात् धुरी पर घुमाने की गति 'घूर्णन' कहलाती है। जिन संधियों में मुण्डकों की सहायता से संधि बनती है उनमें भी कोर संधि के समान गति होती है। इनमें केवल पार्श्विक गति (Lateral Movement) होती है जैसा कि करभास्थियों तथा अंगुल्यास्थियों के मध्य की संधि में गति होती है। एटलस एवं एक्सिस की धुराग्र संधि 'चक्रक संधि' के अंतर्गत आती हैं।

पल्याण संधि (®ddle Joints) भी धुराग्र संधि का ही एक रूप है, तथा इसमें एक अस्थि का उत्तल शीर्ष दूसरी अस्थि के अवतल रचना वाले शीर्ष में जुड़ता है और ऐसी संधि में स्वतंत्र कब्जे के समान गति होती है। ऐसी गति की क्षमता अंगूठे की अस्थि तथा करभास्थियों की दूरस्थ पंक्ति की चतुर्भुज (Trapezium) अस्थि के बीच की संधि में होती है। धुराग्र संधि में घूर्णन की गति अर्थात् परिभ्रमण (Rotation) की क्षमता रहती है। वैसे कुछ मात्रा में अन्य प्रकार की गतियां भी इसमें हो सकती हैं।

(घ) संसर्पी संधि (Gliding Joints)

इस प्रकार की संधि को फिसलने वाली संधि भी कहते हैं; क्योंकि इस संधि पर जुटने वाली अस्थियों में केवल इतनी ही गति क्षमता रहती है कि वे थोड़ा-बहुत एक-दूसरी पर फिसल सकती हैं। इस प्रकार से यह संधि केवल सीमित गति की क्षमता ही प्रदान करती है। ऐसी संधि पर संधि-बद्ध होनेवाली अस्थियाँ सपाट सतह पर मिलती हैं तथा उसी पर थोड़ा-बहुत फिसल कर हिल सकती हैं।

ऐसी संधियों की गतियाँ, स्नायुओं (Ligaments) के द्वारा सीमित रहती हैं। ऐसी संधियां शरीर में कई स्थानों पर हैं। कशेरुक दण्ड में, प्रत्येक कशेरुक के मध्य, इसी प्रकार की संधियाँ हैं। संधितल पर दोनों अस्थियों के मध्य में एक उपास्थि की डिस्क (Disc) रहती है।

मणिबन्ध अस्थियों की निकटस्थ पंक्ति में रेडियस का निम्न छोर सन्धिबद्ध होता है। इसके बीच-बीच में 'त्रिकोणाकार उपास्थि' (Triangular Disc of Cartilage) रहती है।

मणिबन्ध अस्थियों की दूरस्थ पंक्ति से करभास्थियों की संधि भी इसी प्रकार की संधि का ही उदाहरण है। गुल्फ-प्रदेश की अस्थियों में भी इसी प्रकार की संधियाँ हैं तथा सम्पुट में अभिमध्य और पार्श्विक स्नायुओं की सहायता से दृढ़ता एवं मजबूती आती है।

3.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न :

1. मानव कंकाल का सचित्र वर्णन करो।
2. मानव कंकाल में पाई जाने वाली प्रमुख अस्थियों के नाम लिखो।

लघूत्तरात्मक प्रश्न :

1. मानव कंकाल में हाथ-पैर में पाई जाने वाली प्रमुख अस्थियाँ कौन-सी हैं?
2. मेरुदण्ड की अस्थियों का विवरण दें।
3. संधि किसे कहते हैं?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

बहुवैकल्पिक प्रश्न :

1. मानव कंकाल में कुल अस्थियों की संख्या है:-
   (क) 204 (ख) 209 (ग) 211 (घ) 206
2. संधियाँ कितने प्रकार की होती हैं?
   (क) 6 (ख) 4 (ग) 3 (घ) 7

सन्दर्भ ग्रंथ :

1. शरीर क्रिया विज्ञान—कान्ति पाण्डेय, प्रमिला वर्मा
2. Principles of Anatomy and Physiology–G.J. Tortora and N.P. Anagnostakos

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

पाठ–4 : तंत्रिका तंत्र– संरचना, प्रकार एवं कार्यप्रणाली
तंत्रिका आवेग संप्रेषण, न्यूरोट्रांसमीटर, तनाव, भावावेश एवं प्रेक्षायान

संरचना

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 न्यूरॉन

4.3 न्यूरॉन की संरचना

4.3.1 अक्ष तंतु

4.3.2 पार्श्व तंतु

4.4 न्यूरॉन के प्रकार

4.4.1 संवेदी या अभिवाही तंत्रिका कोशिका

4.4.2 प्रेरक या अपवाही तंत्रिका कोशिका

4.4.3 मिश्रित तंत्रिका कोशिकाएँ

4.5 न्यूरॉन्स के कार्य

4.6 तंत्रिका तंत्र के विभाग

4.6.1 ऐच्छिक तंत्रिका तंत्र

4.6.2 अनैच्छिक तंत्रिका तंत्र

4.7 अभिवाही (ज्ञानवाही) तथा अपवाही (क्रियावाही) तंत्रिकाएँ

4.8 तंत्रिका आवेग सम्प्रेषण

4.9 भावावेश

4.10 भावावेश एवं प्रेक्षाध्यान

4.11 न्यूरोट्रांसमीटर

4.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.0 उद्देश्य

1. शरीर के संचालक तन्त्र को समझ सकेंगे।
2. तंत्रिका कोशिका क्या होती है?
3. ऐच्छिक तथा अनैच्छिक तंत्रिका तंत्र के क्या कार्य हैं?
4. ज्ञानवाही तथा क्रियावाही तंत्रिकाओं को समझ सकेंगे।
5. शरीर में आवेग संप्रेषण कैसे होता है?
6. भावावेश व न्यूरोट्रांसमीटर क्या हैं?
7. प्रेक्षाध्यान द्वारा भावावेश के नियोजन को समझ सकेंगे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4.1 प्रस्तावना

मनुष्य को प्रकृति के समस्त प्राणियों से विवेकशील प्राणी माना जाता है। इसका मुख्य कारण है मनुष्य के तंत्रिका तंत्र का अन्य प्राणियों की अपेक्षा अति विकसित होना। तंत्रिका तंत्र के माध्यम से ही शरीर के सभी अंगों की देखभाल, नियमन एवं नियंत्रण होता है। पूरे शरीर में धागेनुमा सूत्रों का जाल फैला हुआ है। इन्हीं सूत्रों को तंत्रिका (Nerves) तथा इनसे बने हुए जाल को तंत्रिका तंत्र (Nervous System) कहते हैं। तंत्रिका तंत्र की सबसे छोटी इकाई को ''तंत्रिका कोशिका'' (Neuron) के नाम से जाना जाता है।

4.2 न्यूरॉन (Neuron)

न्यूरॉन तंत्रिका तंत्र की सूक्ष्मतम ईकाई है। न्यूरॉन्स के द्वारा ही शरीर के सभी प्रकार के कार्यों का सम्पादन होता है। प्रत्येक न्यूरॉन तंत्रिका कोशिका (Nerve Cell), प्रवर्ध (Process), अक्ष तन्तु (Axon) तथा पार्श्वतन्तु (Dendrite) से मिलकर बनता है। यह विद्युत तार की भांति संवेदनाओं को शीघ्र ही मस्तिष्क तक पहुंचाने तथा मस्तिष्क से प्राप्त आदेशों को शरीर के अन्य अंगों तक पहुंचाने का कार्य करता है। कुछ न्यूरॉन्स संवेदनाओं को मस्तिष्क तक ले जाने का कार्य करते हैं तथा इसके ठीक विपरीत कुछ न्यूरॉन्स संवेदनाओं को मस्तिष्क से शरीर के विभिन्न अंगों में लाने का कार्य करते हैं। अत: न्यूरॉन्स रिले स्टेशन (Relay Station) के रूप में जाने जाते हैं।

4.3 न्यूरॉन की संरचना (Structure of Neuron)

सामान्यतया मानव शरीर की सभी कोशिकाओं की मौलिक संरचना समान होती है परन्तु तंत्रिका कोशिका अन्य कोशिकाओं से कुछ-कुछ भिन्न होती है। न्यूरॉन्स के आकार में भिन्नता होती है। कुछ न्यूरॉन्स बड़े होते है, जिन्हें बिना सूक्ष्मदर्शी यंत्र (Microscope) की सहायता से, नंगी आँखों से भी देखा जा सकता है तो कुछ का आकार इतना छोटा होता है कि इन्हें बिना सूक्ष्मदर्शी यंत्र (Microscope) के नंगी आँखों से नहीं देखा जा सकता। इनका निर्माण श्वेत पदार्थ (White Matter) व धूसर पदार्थ (Grey Matter) से होता है। ये मस्तिष्क व सुषुम्ना नाड़ी दोनों में ही पाए जाते हैं।

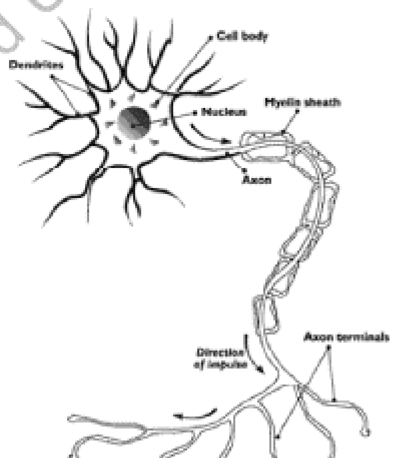

तन्तुओं (Fibres) की उपस्थिति एवं रचना के आधार पर न्यूरॉन्स को निम्न वर्गों में विभाजित किया गया है—

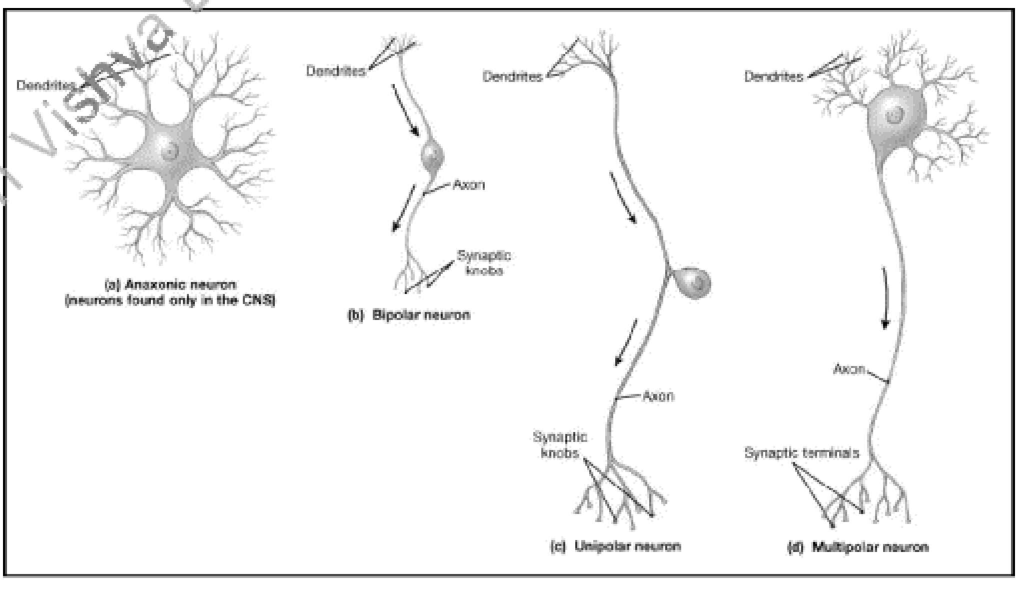

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(1) अध्रुवीय तंत्रिका (Apolar Neuron) : वे न्यूरॉन्स जिनमें सेल बॉडीज तो होती हैं, परन्तु उनसे तन्तु (Fibres) एक भी नहीं निकलते हैं। अध्रुवीय तंत्रिका कोशिका के नाम से जाने जाते हैं।

(2) एक ध्रुवीय तंत्रिका (Monopolar Neuron) : वे न्यूरॉन्स जिनकी सेल बॉडी से मात्र एक तन्तु (Fibre) ही निकलता है, एक ध्रुवीय तंत्रिका कोशिका के नाम से जाने जाते हैं।

(3) द्विध्रुवीय तंत्रिका (Bipolar Neuron) : वे न्यूरॉन्स जिनकी सेलबॉडी के दोनों ओर से एक-एक तन्तु (Fibres) निकलते हैं। द्विध्रुवीय तंत्रिका कोशिका के नाम से जाने जाते हैं।

(4) बहुध्रवीय तंत्रिका (Multipolar Neuron) : वे तंत्रिका कोशिकाएँ, जिनसे दो से अधिक तन्तु (Fibres) निकलते हैं, बहुध्रुवीय तंत्रिका कोशिकाओं के नाम से जानी जाती हैं।

अधिकांश न्यूरॉन्स त्रिकोणीय (Triangular) तथा शंकु (Pyramid) के आकार के होते हैं जिनके प्रत्येक कोण से तन्तु (Fibres) निकलते हैं। इन तन्तुओं से पुनः शाखाएँ निकलती हैं, फिर इन शाखाओं से और शाखाएँ निकलती हैं। इस प्रकार ये न्यूरॉन्स एक घने छायादार वृक्ष के समान दिखाई पड़ते हैं, जिनके धड़ से शाखाएँ और शाखाओं से पुनः शाखाएँ निकलती हैं। वास्तव में ये शाखाएँ जीवद्रव्य (Protoplasm) से निकले हुए भाग ही होते हैं। इन शाखाओं में से एक शाखा लम्बी होती है तथा अन्य शाखाएँ बहुत छोटी होती हैं। लम्बी शाखाएँ अक्ष तन्तु (Axon) तथा छोटी शाखाएं पार्श्व तन्तु (Dendrites) कहलाती हैं।

4.3.1 अक्ष तन्तु (Axon)

एक्जॉन तंत्रिका कोशिका (Neuron) से निकलने वाली एक सूत्राकार रचना होती है। ये तंत्रिका तंत्र के श्वेत पदार्थ (White Matter) का निर्माण करते हैं। यह तंत्रिका कोशिका के छोर से बहुत पतली दुम की तरह लम्बा निकला रहता है। इसके छोर पर पतले-पतले ब्रस की तरह के आधार को 'एण्ड ब्रस' (End Brush) कहते हैं। इस तरह अक्ष तन्तु का एण्ड ब्रस दूसरी तन्त्रिका कोशिका के पार्श्व तन्तु या मांसपेशी के समीप स्थित रहता है।

अक्षतन्तु (Axon) आगे बढ़कर तंत्रिका तन्तु (Fibres) का अक्ष तन्तु दण्ड (Nerve Trunk) बनाता है। ये अक्ष तन्तु दण्ड (Nerve Trunk) आगे चलकर पतले-पतले तंत्रिका तंतुओं (Fibres) में विभक्त हो जाते हैं। ये पतले-पतले तंत्रिका तन्तु (Fibres) पुनः विभक्त होकर पतले-पतले रेशे के समान हो जाते हैं और शरीर के विभिन्न उत्तकों में चले जाते हैं।

अक्ष तन्तु की संरचना (Structure of Axon)

यह(Axon) एक आवरण (Membrane) से आवृत रहता है, जिसे 'एक्जोलीमा' (Exolemma) कहते हैं। बड़े अक्ष तन्तु (Axons) और वे अक्ष तन्तु जो बाहर की ओर होते हैं मायलिन शीथ (Myelin Sheath) से ढके रहते हैं। तंत्रिका कोशिका भूरे रंग की होती है, जिसे ''धूसर पदार्थ'' (Grey Matter) तथा तंत्रिका तंतु सफेद रंग जिसे 'श्वेत पदार्थ' (White Matter) कहते हैं, की बनी होती हैं। तंत्रिका तन्तु द्वारा ही तंत्रिका कोशिकाओं (Neurons) से संवेग प्रवाह होता है।

4.3.2 पार्श्व तन्तु (Dendrite)

कोशिकाकाय से निकलने वाली छोटी शाखाएँ पार्श्व तन्तु (Dendrite) के नाम से जानी जाती हैं। ये शाखाएँ दूसरी तंत्रिका कोशिकाओं (Neurons) की छोटी शाखाओं के बहुत पास तक जाती हैं परन्तु इनसे मिलती नहीं हैं। ये सन्देशों को कोशिकाकाय तक लाते हैं।

4.4 न्यूरॉन के प्रकार (Types of Neuron)

कार्य के आधार पर न्यूरॉन्स को निम्नानुसार वर्गीकृत किया गया है—

4.4.1 संवेदी या अभिवाही तंत्रिका कोशिका (Sensory or Afferent Neurons)

इन तंत्रिका कोशिकाओं को अभिवाही या केन्द्रगामी तंत्रिका कोशिका भी कहा जाता है। ये तंत्रिका कोशिकाएँ शरीर के विभिन्न अंगों से प्राप्त उद्दीपनों को मस्तिष्क तथा केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र में ले जाने का कार्य करती हैं। इन्हीं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

तंत्रिका कोशिकाओं के माध्यम से हमें बाह्य जगत् की घटनाओं का बोध होता है। दृष्टि, स्पर्श, घ्राण, श्रवण, ताप इत्यादि संवेदनाएँ संवेदी तंत्रिका कोशिकाओं द्वारा ही मस्तिष्क को पहुंचती हैं। मनुष्य को होने वाले भय, पीड़ा, सुख-दु:ख, तथा आनन्द की अनुभूति इनके द्वारा ही होती है।

4.4.2 प्रेरक या अपवाही तंत्रिका कोशिका (Motor or Efferent Neurons)

इन तंत्रिका कोशिकाओं को संचालक या अपवाही तंत्रिका कोशिकाएँ भी कहते हैं। ये मस्तिष्क तथा सुषुम्ना से निकलती हैं तथा सन्देशों को मस्तिष्क से शरीर के अन्य अंगों को ले जाती हैं, जिससे सन्देश माँसपेशियों को प्राप्त होता है और उनमें सिकुड़न व प्रसारण प्रारम्भ होता है। इससे माँसपेशियों में गति उत्पन्न होती है। उदाहरणस्वरूप अगर हमारा हाथ किसी बर्फ के टुकड़े को छूता है तो संवेदी तंत्रिका कोशिकाएँ इस ठण्ड के उद्दीपन को मस्तिष्क तक पहुंचाती है। मस्तिष्क तुरन्त निर्णय कर प्रेरक तंत्रिका कोशिकाओं के द्वारा हाथ की माँसपेशियों को तत्संबंधी निर्णय देता है। मांसपेशियों में गति उत्पन्न होती है और वे उस बर्फ से छू रहे हाथ को वहाँ से हटा लेती हैं। यह क्रिया इतनी जल्दी होती है कि उसका हमें भान ही नहीं हो पाता। विद्युतवेग की भांति घटना घटित हो जाती है।

4.4.3 मिश्रित तंत्रिका कोशिकाएँ (Mixed Nervous)

सामान्यतया संवेदी तथा प्रेरक तंत्रिका कोशिकाओं की व्यवस्था अलग-अलग होती है। परन्तु जब ये दोनों तंत्रिका कोशिकाएँ एक ही स्थान में समान संयोजी उत्तक में बंधी होती हैं, तो मिश्रित तंत्रिकाओं के नाम से जानी जाती हैं।

4.5 न्यूरॉन्स के कार्य (Functions of Neurons)

4.5.1 अन्त:स्रावी ग्रंथियों को स्राव के लिए प्रेरित करना

कुछ न्यूरॉन्स शरीर की ग्रंथियों से संबंधित रहते हैं। इन न्यूरॉन्स से होकर प्राप्त होने वाले संदेशों के फलस्वरूप ग्रंथियाँ अपने स्राव छोड़ना शुरू करती हैं। ऐसे न्यूरॉन्स को स्रावक तंत्रिका कोशिकाएँ (Secretary Neurons) कहते हैं।

4.5.2 संवेग प्रेषित करना

अनेक तरह के संवेगों का संचालन कुछ विशेष प्रकार के न्यूरॉन्स के द्वारा होता है। जैसे संवेदी तंत्रिका कोशिकाएँ संवेग प्रवाह को मस्तिष्क की ओर ले जाती हैं लेकिन इसकी बजाय प्रेरक तंत्रिका कोशिकाएँ मस्तिष्क से प्राप्त संवेग शारीरिक अंगों को प्रेषित करती हैं।

4.5.3 रक्त वाहिनियों को फैलाना व सिकुड़ाना

ये तंत्रिका कोशिकाएँ रक्त वाहिनियों से संबंधित रहती हैं। ये तंत्रिका कोशिकाएँ रक्त वाहिनियों (Blood Vessels) को फैलने व सिकुड़ने में मदद करती हैं। इसलिए ये तंत्रिका कोशिकाएँ रक्त संचालक (Blood Conducting or Vasomotor) तंत्रिका कोशिकाएँ कही जाती हैं।

4.6 तंत्रिका तंत्र के विभाग

कार्य तथा गुणों के आधार पर तंत्रिका तंत्र के दो मुख्य भाग होते हैं—

1. ऐच्छिक तंत्रिका तंत्र या प्रमस्तिष्क-मेरु तंत्रिका तंत्र (Voluntary Nervous System or Cerebrospinal System) और
2. अनैच्छिक तंत्रिका तंत्र या स्वायत्त तंत्रिका तंत्र (Involuntary Nervous System or Autonomic Nervous System)।

4.6.1 ऐच्छिक तंत्रिका तंत्र

ऐच्छिक तंत्रिका तंत्र के सभी तंत्रिका तंतु ऐच्छिक पेशियों में जाते हैं। इन तंतुओं से कई प्रकार की संवेदनाएँ मस्तिष्क को पहुंचती हैं। यह भाग मस्तिष्क, सुषुम्ना और उनसे निकलने वाली अनेक तंत्रिकाओं द्वारा गठित है। यह

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

तंत्रिका तंत्र हमारी इच्छा के अधीन रहता है, इसलिए इसे 'ऐच्छिक तंत्रिका तंत्र' कहते हैं। इसी तंत्र की सहायता से हम विभिन्न प्रकार की संवेदनाएँ ग्रहण करते हैं, अपने आपको बाह्य जगत के वातावरण के अनुसार कार्य करने के लिए प्रेरित करते हैं तथा अपने इच्छानुसार हाथ-पैर चलाते हैं और सोच-समझ कर कार्य करते हैं।

4.6.2 अनैच्छिक तंत्रिका तंत्र

अनैच्छिक तंत्रिका तंत्र के तंत्रिका तंतु अनैच्छिक पेशियों जैसे फेफड़े, मूत्राशय, गर्भाशिय, आमाशय, आंतों की पेशियों में तथा शरीर की विभिन्न ग्रंथियों में जाते हैं, जिनकी गति पर हमारा सीधा नियंत्रण नहीं रहता। इनकी तंत्रिकाओं द्वारा विभिन्न आंतरिक अंगों से संवेदनाऐं मस्तिष्क में पहुंचती रहती हैं। इनकी क्रिया स्वत: हुआ करती है। वे हमारी इच्छा या अनिच्छा पर निर्भर नहीं रहतीं। इन तंत्रिकाओं का समूह इतना विस्तृत है कि इनको पृथक् तंत्र ही मान लिया गया है। स्वत: संचालन के कारण ही इसे अनैच्छिक या 'स्वचालित तंत्रिका तंत्र' (Autonomic Nervous System) कहा जाता है। इस तंत्र के तंत्रिका तंतु केंद्रीय तंत्रिका तंतु से ही निकलते हैं, फिर भी ये स्वाधीन हैं। गुणों के आधार पर इस तंत्र को पुन: दो विभागों में विभक्त किया गया है— (1) अनुकंपी तंत्रिका तंत्र (Sympathetic Nervous System) और (2) परानुकंपी तंत्रिका तंत्र (Parasympathetic Nervous System)। इन दोनों की क्रिया एक-दूसरे के विपरीत होती है। इन दोनों का केंद्र मस्तिष्क के अधश्चेतक (Hypothalamus) भाग में रहता है। यह भाग अनुकंपी तथा परानुकंपी दोनों की क्रियाओं को नियंत्रित एवं नियमित करता है।

4.7 अभिवाही (ज्ञानवाही) तथा अपवाही (क्रियावाही) तंत्रिकाएँ

तंत्रिका तंतुओं द्वारा उत्तेजनाएँ मस्तिष्क तथा सुषुम्ना को पहुंचती हैं और वहाँ से शरीर के अन्य भागों में जाती हैं। उत्तेजना ग्रहण करने तथा शरीर के अन्य भागों में उनको भेजने का कार्य भिन्न-भिन्न तंत्रिका तंतु करते हैं। उत्तेजनाओं से उत्पन्न संवेदनाओं को शरीर के भिन्न-भिन्न भागों से ग्रहण करने तथा केंद्रीय तंत्रिका तंत्र में ले जाने के कार्य जिन तंत्रिकाओं द्वारा होते हैं, उन्हें 'अभिवाही या संवेदी तंत्रिकाएँ' (Sensory Nerves) कहते हैं। दृष्टि, स्पर्श, घ्राण तथा श्रवण की संवेदनाऐं अभिवाही तंत्रिकाओं द्वारा तंत्रिका तंत्र को जाती हैं।

कुछ तंत्रिकाएँ ऐसी भी हैं, जो उत्तेजनाओं को केंद्रीय तंत्रिका तंत्र से पेशियों, ग्रंथियों आदि में वितरित करती हैं। ऐसी तंत्रिकाओं को 'अपवाही तंत्रिकाएँ' कहते हैं। कार्य के अनुसार कुछ अपवाही तंत्रिकाओं को भिन्न-भिन्न नामों से संबोधित किया जाता है। जो तंत्रिकाएँ पेशियों को उत्तेजित करती हैं और फलस्वरूप उनमें संकुचन होता है, उन्हें 'प्रेरक तंत्रिकाएँ' (Motor Nerves) कहते हैं। जिन तंत्रिकाओं से ग्रंथियों का स्राव बढ़ता है, उन्हें स्रावी तंत्रिकाएँ (Secretory Nerves) और जिनसे रक्त नलिकाओं के छिद्र बढ़ते तथा घटते हैं, उन्हें वाहिका-प्रेरक (Vasomotor) तंत्रिकाएँ कहते हैं। अभिवाही तथा अपवाही तंत्रिकाएं प्राय: एक ही तंत्रिका-प्रकाण्ड में रहती हैं। कहीं-कहीं ये शरीर में अलग-अलग भी रहती हैं।

4.8 तंत्रिका आवेग सम्प्रेषण (Nerve Impulse Conduction)

मौलिक रूप से देखा जाए तो तंत्रिका भी कोशिका ही होती है जो अपने कार्य के अनुसार एक नये स्वरूप में ढल जाती है और उसका विस्तार हो जाता है। सामान्य अवस्था (आराम की स्थिति) में तंत्रिका रूपी कोशिका अर्थात् न्यूरॉन की भित्ति के आर-पार (अन्दर और बाहर) आयन कणों (आवेशित कणों) की सांद्रता में बड़ा अन्तर होता है। यह अंतर सोडियम (Na^+) और पोटेशियम (K^+) आयनों के असमान वितरण के कारण होता है। आराम की अवस्था में न्यूरॉन की भित्ति के बाहरी ओर की अपेक्षा अन्दर की तरफ पोटेशियम आयनों की संख्या 28 से 30 गुना ज्यादा होती है जबकि इसके ठीक विपरीत सोडियम आयनों की संख्या बाहर की तरफ 14 गुना ज्यादा होती है। इसके अतिरिक्त न्यूरॉन कोशिका के अन्दर कुछ अन्य ऋणात्मक आयनों की उपस्थिति भी सर्वथा उल्लेखनीय होती है। ये

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

ऋणात्मक आयन मूल रूप से कार्बनिक फॉस्फेट तथा प्रोटीन के होते हैं। जब तंत्रिका कोशिका में कोई आवेग नहीं चल रहा होता है उस समय भी इसकी भित्ति के आर-पार इन धनात्मक और ऋणात्मक आयनों का सक्रिय आना-जाना लगा रहता है। कभी सोडियम आयन अन्दर से बाहर जाते हैं तो कभी पोटैशियम आयन बाहर से अन्दर आते हैं और फिर इसका ठीक उल्टा होने लगता है। इस आने-जाने के क्रम को सोडियम-पोटैशियम पम्प की संज्ञा दी जाती है। इस प्रक्रिया में जो ऊर्जा खपत होती है वह इसी कोशिका के ए.टी.पी. (ATP) से ली जाती है।

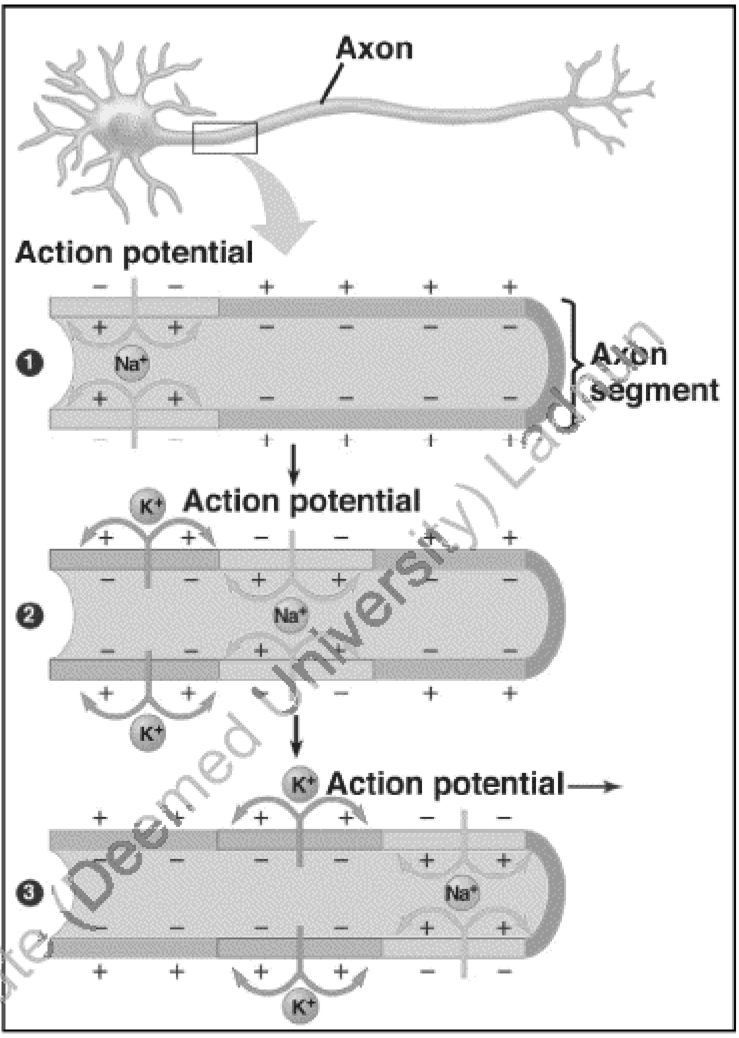

कोशिका में सोडियम-पोटैशियम पम्प की वजह से कोशिका झिल्ली के आर-पार सोडियम एवं पोटैशियम आयनों की सान्द्रता एवं विद्युतीय तीव्रता में उतार-चढ़ाव पैदा होने लगता है जिसके फलस्वरूप पोटैशियम आयन बाहर की तरफ लीक होकर निकल आता है और सोडियम आयन बाहर से अन्दर की ओर प्रवेश करने लगता है। कोशिका भित्ति की भेद्यता पोटेशियम आयनों के लिए सोडियम आयनों की तुलना में 100 गुना ज्यादा होती है इसीलिए पोटैशियम आयन तेजी से बाहर निकलते हैं। आयनों के इस आने-जाने की प्रक्रिया के परिणाम स्वरूप कोशिका भित्ति पर अन्दर और बाहर की ओर ऋणात्मक आवेशों का अन्तर स्थापित हो जाता है (बाहर की ओर धनात्मक आवेश अधिक तथा अन्दर की ओर ऋणात्मक आवेश अधिक होते हैं।) आवेश के इस अन्तर को रेस्टिंग मेम्ब्रेन पोटेन्सियल (Resting Membrane Potential) कहते हैं। ऐसी स्थिति में कोशिका झिल्ली को पोलराइज्ड अवस्था में माना जाता है। इस दशा में कोशिका किसी भी संकेत या उद्दीपन को ग्रहण करने के लिए पूरी तरह तैयार होती है। उद्दीपनों या संकेतों को ग्रहण करने और फिर तंत्रिका में एक आवेश तरंग के रूप में परिवर्तित करने की क्षमता को ही उत्तेजनात्मकता कहते हैं। कोशिका के बाहर कोई भी स्थिति जो इस प्रकार के कोशिकीय परिवर्तन का कारण बने उद्दीपन कहलाती है। वह वातावरण का परिवर्तन भी हो सकता है, स्पर्श भी या कोई चीज चुभाना भी। उचित शक्ति वाले उद्दीपन के परिणाम स्वरूप उस स्थान पर जहाँ उद्दीपन पहुंचता है पोलराइज्ड भित्ति में सोडियम धनात्मक आयनों की भेद्यता बढ़ जाती है और वे अन्दर प्रवेश करने लगते हैं उसके बदले ऋणात्मक आयन बाहर निकल आते हैं। जिस स्थान पर यह स्थिति उत्पन्न होती है उसे डीपोलराइज्ड अवस्था कहते हैं तथा इस क्रिया को डीपोलराइजेसन कहते हैं। धीरे-धीरे इस डीपोलराइजेसन का दायरा बढ़ता जाता है और यह एक प्रकार की विद्युतीय तरंग का रूप ले लेता है। इसे ही तंत्रिका आवेग सम्प्रेषण (Nerve Impulse Conduction) कहते हैं। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि जैसे-जैसे आवेग आगे से आगे चलता जाता है, पीछे की स्थिति सामान्य होती जाती है। धनात्मक आयन बाहर की ओर आ जाते हैं तथा ऋणात्मक आयन अन्दर की तरफ चले जाते हैं और कोशिका झिल्ली आराम की स्थिति में आ जाती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4.9 भावावेश

भावावेश एक तीव्र अभिप्रेरणा है जिसके कारण व्यक्ति क्षमता से अधिक कार्य करने को बाध्य होता है। इसके दो भाग होते हैं— **(1) आंतरिक भावावेश** जैसे— भय, प्रेम, क्रोध, खुशी, चिन्ता इत्यादि; एवं **(2) बाह्य भावावेश** जैसे— हंसी या अट्टाहास, पसीने-पसीने होना, चिल्लाना-चीखना इत्यादि। इस प्रकार के भावावेश वाले व्यवहार को कार्यरूप देने में शरीर के स्वायत्तशाषी तंत्रिका तंत्र और कायिक तंत्रिका तंत्र का संयुक्त योगदान होता है। इन दोनों भावावेशों में मस्तिष्क के अलग-अलग भाग काम करते हैं। आंतरिक भावावेश की स्थिति में सेरिब्रल कॉर्टेक्स तथा लिम्बिक सिस्टम सक्रिय होता है, जबकि बाह्य भावावेश की परिस्थितियों में मुख्य रूप से हाइपोथेलेमस (अधश्चेतक) एवं मस्तिष्क तना (Brain Stem) अत्यन्त सक्रिय होता है। लिम्बिक सिस्टम की अति सक्रियता के फलस्वरूप विविध प्रकार के जटिल व्यवहार प्रदर्शित होते हैं और जब उसमें हाइपोथेलेमस की सक्रियता का सहयोग मिल जाता है तब स्थिति और भी गम्भीर हो जाती है। इन सभी परिस्थितियों में हृदयगति, रक्तचाप और श्वास की दर का बढ़ जाना, पसीना आना, चेहरे का लाल हो जाना तथा चेहरा बुरी तरह खिंच जाना, रक्त में शर्करा एवं एपीनेफ्रीन रसायनों की मात्रा का बढ़ जाना सम्मिलित होता है। इन प्रत्यक्ष लक्षणों के अतिरिक्त जैव रासायनिक क्रियाओं की दर बढ़ जाना, चयापचय की दर में अत्यधिक परिवर्तन (कुछ का बढ़ना, कुछ का घटना) एवं आंतरिक रासायनिक स्रावों के असंतुलन के अप्रत्यक्ष लक्षण भी देखे जाते हैं। शरीर की ये जटिल यांत्रिक एवं जैव रासायनिक क्रियाएँ अगर कई दिनों या महिनों तक बनी रहे या ऐसी स्थिति बार बार बनती रहे तो कालांतर में यह स्थिति भावावेश का रूप ले लेती है।

4.10 प्रेक्षाध्यान और भावावेश

प्रेक्षाध्यान के नियमित और व्यवस्थित अभ्यास से तंत्रिका कोशिकाओं में उत्पन्न होने वाली विद्युतीय तरंगों (आवेशों) की गति एवं लय में परिवर्तन किया जा सकता है। साथ ही साथ अन्तःस्रावी ग्रंथियों के स्रावों की मात्रा में भी उल्लेखनीय परिवर्तन सम्भव है। बायोफीडबैक उपकरणों से इस प्रकार के परिवर्तनों की गुणात्मकता का आकलन किया जा सकता है। इस ध्यान की विद्या के अंतर्गत अनुप्रेक्षा के अभ्यास से हम सकारात्मक प्रतिक्रियाओं/निर्देशों का प्रतिपादन करते हैं जो लिम्बिक-हाइपोथैलमिक मार्ग से होते हुए स्वायत्तशाषी तंत्रिका तंत्र, अन्तःस्रावी ग्रंथि तंत्र और रोग-प्रतिरोधक तंत्र को प्रभावित करते हैं, जिसके परिणाम स्वरूप आंतरिक भावावेश एवं बाह्य भावावेश को नियोजित करने में सहायता मिलती है।

4.11 न्यूरोट्रांसमीटर

तंत्रिका कोशिकाएँ (न्यूरॉन्स) एक दूसरे से परस्पर जुड़ी नहीं होती बल्कि उनके बीच कुछ फासला रहता है और वे एक संधि बनाते हैं तथा इन संधि स्थल पर उन्हीं के द्वारा स्रावित रसायन उनके सम्पर्क माध्यम होते हैं। न्यूरॉन के इस स्राव को **'न्यूरोट्रांसमीटर'** कहा जाता है। ये रसायन जिस न्यूरॉन के एक्सॉन (अक्षतंतु) से निकालते हैं उसके आगे वाले न्यूरॉन के डेन्ड्राइड पर असर करते हैं। कई बार जब न्यूरॉन की संधि पेशी तंतु अथवा ग्रंथियों से होती है तब इन न्यूरोट्रांसमीटर का असर उन पर भी समान रूप से होता है। इनकी रासायनिक संरचना अमीनो अम्लों से मिलकर बनती है। न्यूरॉन की मूल कोशिका (Call Body) में इनका उत्पादन होने के बाद एक्सॉन के रास्ते ये सिनैप्टिक थैलियों (Synaptic Endbuls) में एकत्र रहते हैं। एक-एक थैली में हजारों की संख्या में न्यूरोट्रांसमीटर के अणु संचित रहते हैं। जब न्यूरॉन के अन्दर आवेग सम्प्रेषण आता है तब विद्युतीय तरंगों के उद्दीपन के कारण ये थैलियों से बाहर उड़ेल दिये जाते हैं। इनकी संरचना की भाषा ही आने वाले संदेश या आवेग की परिचायक होती है जिसे अगले न्यूरॉन के डेन्ड्राइड ग्रहण कर उस संदेश या आदेश को अपने से अगले न्यूरॉन को पहुंचा देते हैं। इस प्रकार किसी एक स्थान से या भाग से चला हुआ संदेश एक न्यूरॉन से दूसरे न्यूरॉन और फिर क्रमशः अगले न्यूरॉन द्वारा मस्तिष्क अथवा कार्यवाही अंगों तक पहुंचा दिया जाता है। इसके परिणाम स्वरूप अपेक्षित परिणाम की प्राप्ति होती है। सामान्यतया एक न्यूरॉन से

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

एक विशेष प्रकार का न्यूरोट्रांसमीटर ही निकाला जाता है। कार्य की दृष्टि से न्यूरोट्रांसमीटर दो प्रकार के होते हैं— एक वे न्यूरोट्रांसमीटर हैं जो विभिन्न ऊतकों और कोशिकाओं में उत्तेजना बढ़ाते हैं, दूसरे वे हैं जो उत्तेजित कोशिकाओं/ऊतकों/अंगों की सक्रियता को कम करते हैं। शरीर में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानेवाले मुख्य न्यूरोट्रांसमीटर्स निम्नांकित हैं—

एसिटिलकोलीन (Acetylcholine)— उत्तेजना बढ़ाने वाला

नारएपिनेफ्रीन (Norepinephrine)— उत्तेजना बढ़ाने वाला

सिरोटोनिन (Serotonin)— उत्तेजना बढ़ाने वाला

ग्लूटोमिक अम्ल (Glutomic Acid)— उत्तेजना बढ़ाने वाला

एसपार्टिक अम्ल (Aspartic Acid)— उत्तेजना बढ़ाने वाला

डोपामीन (Dopamine)— उत्तेजना घटाने वाला

ग्लाइसीन (Glycine)— उत्तेजना घटाने वाला

गाबा (GABA - Gamma Amino Butyric Acid)—उत्तेजना घटाने वाला

4.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. तंत्रिका कोशिका (न्यूरॉन) की रचना एवं संरचनात्मक भेद बताइये।
2. अभिवाही और अपवाही तंत्रिका से आप क्या समझते हैं?
3. ऐच्छिक और अनैच्छिक तंत्रिका तंत्र का अर्थ क्या है?
4. न्यूरॉन में सूचना एकत्र करने वाले भाग को कहते हैं—

   (क) पार्श्व तंतु (ख) अक्ष तंतु (ग) अक्ष थैली (घ) डेन्ड्राइट
5. रचना के आधार पर न्यूरॉन कितने प्रकार के होते हैं—

   (क) तीन (ख) चार (ग) दो (घ) पांच

4.13 संदर्भ ग्रंथ

1. मानव शरीर एवं क्रियाविज्ञान— डॉ. बृन्दासिंह
2. शरीर क्रिया विज्ञान—कान्ति पाण्डेय, प्रमिला वर्मा
3. Principles of Anatomy and Physiology- G.J. Tortora and N.P. Anagnostakos

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–5 : मस्तिष्क– प्रमुख भागों की संरचना एवं कार्य

संरचना

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 मस्तिष्क
5.3 मस्तिष्क आवरण
5.4 मस्तिष्क निलय
5.5 प्रमस्तिष्क मेरुतरल
5.6 मस्तिष्क के भाग
5.6.1 अग्रमस्तिष्क : संरचना एवं कार्य
5.6.2 मध्यमस्तिष्क : संरचना एवं कार्य
5.6.3 पश्चमस्तिष्क : संरचना एवं कार्य
5.7 अभ्यास प्रश्नावली

5.0 उद्देश्य

1. आप जान सकेंगे मस्तिष्क केन्द्रीय तंन्त्रिका तंत्र का प्रमुख भाग क्यों है?
2. मस्तिष्क के प्रमुख भाग कौन-कौन से हैं?
3. प्रमस्तिष्क के महत्त्व को समझ सकेंगे।
4. मस्तिष्क के शरीर पर नियन्त्रण को जान सकेंगे।
5. अनुमस्तिष्क का शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है?
6. कपाल तन्त्रिकाओं के कार्यों को जान सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

विभिन्न प्रकार की शारीरिक, जैव-रासायनिक एवं यांत्रिक क्रियाओं के निष्पादन के लिए मानव शरीर में भिन्न-भिन्न तंत्रों की व्यवस्था की हुई है, जैसे– पाचन तंत्र, श्वसन तंत्र, अस्थि तंत्र आदि। सम्प्रेषण एवं संज्ञानात्मक क्रियाओं के सम्पादन के लिए हमारे शरीर में तंत्रिका तंत्र या स्नायु तंत्र (Nervous System) का जाल फैला हुआ है। आन्तरिक रचना के आधार पर तंत्रिका तंत्र को मुख्यत: दो भागों में विभक्त किया गया है–

1. केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र (CNS : Central Nervous System),
2. परिधीय तंत्रिका तंत्र (PNS : Peripheral Nervous System).

मस्तिष्क तथा सुषुम्ना केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र के मुख्य दो भाग हैं।

5.2 मस्तिष्क (Brain)

यह केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र का एक अति महत्त्वपूर्ण भाग है। इसका भार शरीर भार का लगभग 1/50वां भाग होता है। यह कपाल गुहा (Cranial Cavity) में सुरक्षित रहता है। सीखने, सोचने, समझने, वाक्पटुता, तर्कशक्ति, स्मृति आदि कार्य मस्तिष्क का ही है। मस्तिष्क में शरीर के विभिन्न भागों से सूचनाएँ पहुंचती रहती हैं और मस्तिष्क उन सूचनाओं का विश्लेषण कर तत्संबंधी निर्णय लेता है एवं निर्णय को आदेश के रूप में शरीर के विभिन्न अंगों को भेजता रहता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5.3 मस्तिष्क आवरण

शरीर का अति महत्त्वपूर्ण अंग होने के कारण एक तो यह कपाल-अस्थियों के कवच से ढ़का रहता है, साथ ही इस कवच के भीतर यह एक खोल या आवरण से भी भलीभांति ढका रहता है, जिसे तानिका या मस्तिष्क-आवरण (Meninges) कहा जाता है। यही आवरण मस्तिष्क को विभिन्न प्रकार की चोटों, आघात, दुर्घटना आदि से बचाकर सुरक्षित रखता है। मस्तिष्क आवरण तीन प्रकार की झिल्लियों (Membranes) से निर्मित होता है, जो बाहर से भीतर की ओर निम्न क्रम में व्यवस्थित रहती हैं–

1. दृढ़ तानिका (Duramater)
2. जाल तानिका (Arachnoid)
3. मृदु तानिका (Piamater).

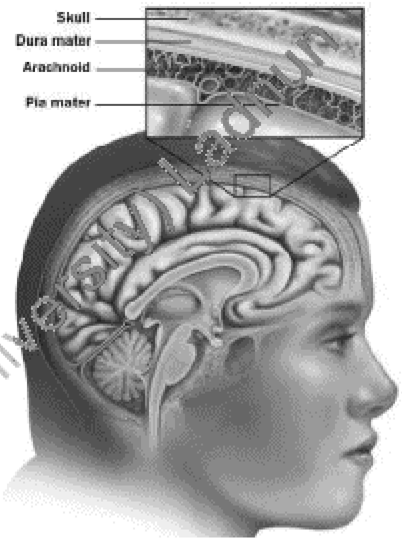

1. दृढ़ तानिका (Duramater) : दृढ तानिका मस्तिष्क का ऊपरी आवरण है, जो कपाल अस्थियों के ठीक नीचे रहता है। यह आवरण भी दो स्तरों का बना होता है। इसका ऊपरी स्तर पेरीओस्टीयम कपालास्थियों (Cranial bones) की आन्तरिक सतह से सटा रहता है जबकि निचला स्तर कोमल मस्तिष्क को सुरक्षा प्रदान करता है। यह दृढ़ तन्तुमय संयोजी उत्तक का बना होता है। दृढ़तानिका नीचे वाली जाल तानिका से पूरी तरह सटी नहीं होती, बल्कि इन दोनों स्तरों के बीच खाली जगह (Space) रहती है, जिसे सबड्यूरल स्पेस (Subdural Space) कहते हैं। इसी रिक्त स्थान में सीरमी तरल (Serous Fluid) भरा रहता है। सीरमी तरल जालतानिका व दृढ़तानिका को चिकनाहट देता है।

2. जाल तानिका (Arachniod) : जाल तानिका का यह स्तर दृढ़तानिका व मृदुतानिका के मध्य उपस्थित रहता है। यह दृढ़-तानिका की बजाय कम कठोर एवं कोमल होता है। यह स्तर पतले आवरण एवं लचीले संयोजी ऊत्तक का बना होता है। जाल तानिका एवं मृदु तानिका के बीच भी कुछ रिक्त स्थान होता है, जिसे अधोजाल तानिका स्थान (Sub Arachnoid Space) कहते हैं जिसमें एक तरल भरा रहता है, जो प्रमस्तिष्क मेरुतरल (Cerebrospinal Fluid) के नाम से जाना जाता है।

3. मृदु तानिका (Piamater) : मृदुतानिका मस्तिष्कावरण का सबसे भीतरी स्तर है, जो जाल तानिका के ठीक नीचे स्थित रहती है। यह मस्तिष्क तथा सुषुम्ना से बिल्कुल सटी होती है तथा कहीं-कहीं मस्तिष्क तन्तु के भीतर तक प्रवेश कर जाती है। यह झिल्ली अत्यन्त कोमल होती है तथा इसी में रक्त वाहिनियों का जाल बिछा रहता है, जिससे मस्तिष्क तथा मेररज्जु को पोषक तत्व एवं ऑक्सीजन की आपूर्ति होती है।

5.4 मस्तिष्क निलय (Ventricles of the Brain)

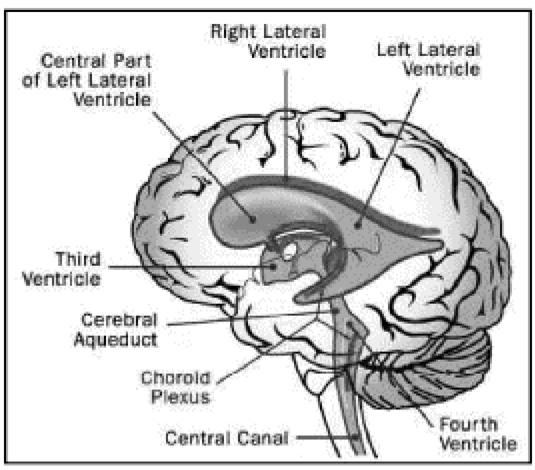

मस्तिष्क के अन्दर चार अनियमिताकार खोखले भाग या गुहाएँ (Cavities) होती हैं, जिन्हें निलय या प्रकोष्ठ (Ventricle) कहा जाता है। इन्हीं में प्रमस्तिष्क मेरुतरल भरा होता है। प्रमस्तिष्क मेरुतरल निरन्तर बहता रहता है और मस्तिष्क इसी तरल में डूबा रहता है। ये निलय इस प्रकार हैं–

1. दायाँ तथा बायाँ निलय (Right and Left Ventricles)– ये दोनों ही निलय प्रमस्तिष्क में उपस्थित रहते हैं। यह अंग्रेजी के "C" अक्षर जैसी एक गुहा (Cavity) है, जो तृतीय निलय (Third Ventricle) से अन्तरा निलय छिद्र (Interventricular Foramen) द्वारा जुड़ी रहती

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

ह ।

2. तृतीय निलय (Third Ventricle) : यह पार्श्व निलय के ठीक नीचे थैलेमस के दोनों भागों के बीच अवस्थित रहता है। यह एक नलिका (Canal) द्वारा चतुर्थ निलय से संबंध रहता है।

3. चतुर्थ निलय (Fourth Ventricle) : चतुर्थ निलय अनुमस्तिष्क (Cerebellum) के सामने, सुषुम्नाशीर्ष (Medulla Oblongata) और सेतु (Pons) के पीछे तथा तृतीय निलय के नीचे एवं पीछे की ओर अवस्थित रहता है। यह अधोजाल तानिका अवकाश (Sub Arachnoid Space) से एक छिद्र द्वारा सम्पर्क बनाए रखता है। इसी छिद्र से होकर प्रमस्तिष्क मेरुतरल (Cerebrospinal Fluid) अधोजाल तानिका अवकाश में जाता है।

5.5 प्रमस्तिष्क मेरुतरल (Cerebrospinal Fluid)

यह निलयों की रक्त जालिका (Choroid Plexus) से स्रावित होकर तथा छनकर तैयार होता है। इसकी मात्रा मस्तिष्क के उन स्थान पर अधिक होती है, जहाँ निलय की दीवार पतली होती है तथा रक्तवाहिनियों से जुड़ी होती है। एक स्वस्थ वयस्क व्यक्ति के शरीर में प्रमस्तिष्क मेरुतरल की मात्रा लगभग 150 मिलीलीटर होती है। यह निरन्तर 0.5 ml प्रति मिनट की दर से स्रावित होता रहता है। इस तरह एक दिन में 720 ml प्रमस्तिष्क मेरुतरल का स्रावण होता है। इसमें से लगभग 150 ml तक की मात्रा मस्तिष्क में उपस्थित रहती है, बाकी सारा द्रव मस्तिष्क द्वारा शोषित कर लिया जाता है।

प्रमस्तिष्क मेरुतरल में ग्लूकोज, प्रोटीन, यूरिया, क्लोराइड, पोटैशियम, सोडियम, कैल्शियम, फोस्फेट, यूरिक अम्ल, क्रिएटिनिन आदि मिले रहते हैं। मस्तिष्क आवरण शोथ (Meningitis) रोग में इस तरल की मात्रा काफी बढ़ जाती है, जिससे मस्तिष्क पर दबाव पड़ता है और तेज बुखार हो जाता है।

5.6 मस्तिष्क के भाग (Parts of Brain)

मस्तिष्क शरीर का अति कोमल तथा नाजुक अवयव है। यह कपालगुहा (Cranial Cavity) में अवस्थित रहता है। मस्तिष्क मस्तिष्कावरण (Meninges) से पूर्णत: ढका रहता है। मस्तिष्कावरण हटाने पर यह ज्ञात होता है कि मस्तिष्क धूसर रंग (Gray Matter) के पदार्थ से बना हुआ है, जिस पर अनेक दरारें व उभार दिखाई देते हैं। इन दरारों को फीसर (Fissure) तथा उभारों को मेड़ (Rigds) कहा जाता है। मस्तिष्क को मुख्यत: तीन भागों में विभक्त किया गया है—

1. अग्र मस्तिष्क (Fore Brain),

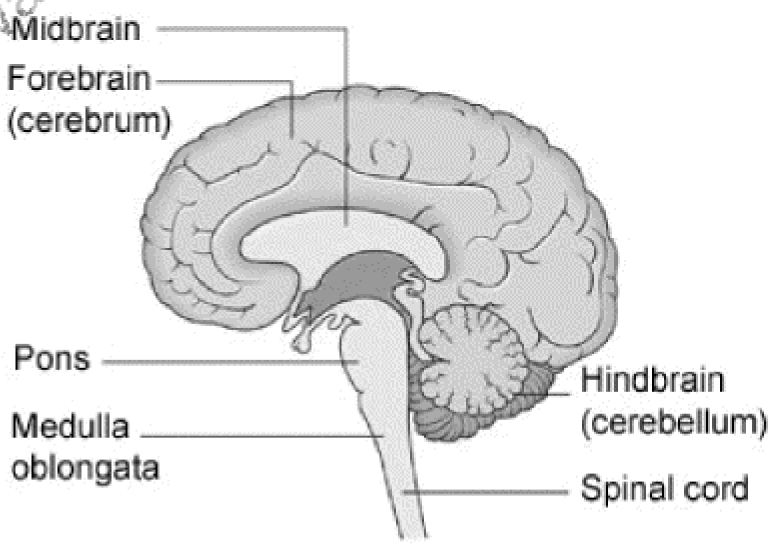

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2. मध्य मस्तिष्क (Mid Brain),

3. पश्च मस्तिष्क (Hind Brain)।

मस्तिष्क

- **अग्र मस्तिष्क**
  - **चेतक** (Thalamus)
  - **अधश्चेतक** (Hypothalamus)
  - **घ्राण केन्द्र** (Olfactory Bulbs)
  - **बेसल गैंगलिया** (Basal Ganglion)
  - **प्रमस्तिष्क-गोलार्द्ध** (Cerebral Hemisphere)
- **मध्य मस्तिष्क**
  - **टेक्टम**
  - **टेग्मेंटम**
  - **सेरेब्रल पेंडुकल**
- **पश्च मस्तिष्क**
  - **अनुमस्तिष्क** (Cerebellum)
  - **सेतु** (Pons)
  - **सुषुम्नाशीर्ष** (Medulla Oblongata)

5.6.1 अग्रमस्तिष्क : संरचना एवं कार्य (Fore Brain : Structure and Functions)

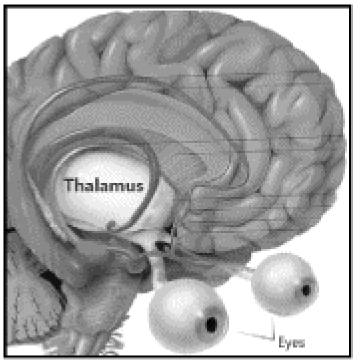

अग्रमस्तिष्क के निम्न भाग हैं–

1. चेतक (Thalamus) : अग्रमस्तिष्क का यह भाग अण्डाकार होता है, जो धूसर पदार्थ का बना होता है। यह तृतीय निलय (Third Ventricle) के बगल में तथा उससे थोड़ी दूर पीछे की ओर स्थित रहता है। थैलेमस को रिले स्टेशन की संज्ञा दी गई है। यह दर्द, ताप, पीड़ा, स्पर्श आदि उत्तेजनाओं को नियत स्थानों पर पहुंचाने का कार्य करता है। इसके अतिरिक्त यह संवेदी एवं भावुक प्रतिक्रियाओं (Emotional Reactions) के प्रति भी सक्रिय रहता है। साधारण प्रकार की सीखने की क्रिया थैलेमस द्वारा ही होती है।

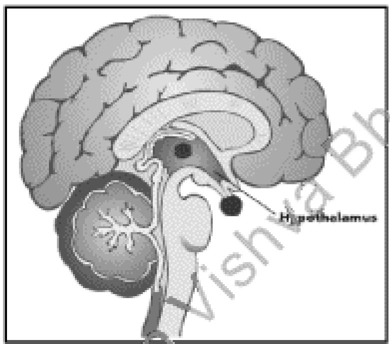

2. अधश्चेतक (Hypothalamus) : हाइपोथेलेमस थैलेमस के आगे नीचे की ओर तथा पियूष ग्रंथि के बिलकुल ऊपर अवस्थित होता है। इसका निर्माण तंत्रिका कोशिकाओं के द्वारा होता है। यह तंत्रिका तन्तुओं द्वारा पियूष ग्रंथि से संबंधित होता है और पश्चपिण्ड (Posterior Lobe) तथा रक्त वाहिनियों द्वारा अग्रपिण्ड (Anterior Lobe) से संबंधित होता है। इस तरह हाइपोथैलेमस पियूष ग्रंथि से स्रावित हार्मोन्स को नियंत्रित करता है। इसका संबंध मध्य-मस्तिष्क (Mid Brain), बैसल केन्द्रक (Basal Nucleus), घ्राण पिण्ड (Olfactory Lobe) और सेरेब्रल कॉर्टेक्स के क्षेत्रों से भी होता है।

हाइपोथैलेमस के कार्य (Functions of Hypothalamus) :

1. यह तंत्रिका तंतुओं को सुषुम्नाशीर्ष की ओर भेजकर श्वसन क्रिया में मदद करता है।
2. यह सभी प्रकार के संवेदनात्मक व्यवहारों के संचालन का प्रमुख केन्द्र है।
3. अन्त:स्रावी ग्रंथियों से स्रावित हार्मोन्स पर नियंत्रण कर शरीर के भीतर स्थित सभी अन्त:स्रावी ग्रंथियों के कार्यों में सहायता करता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4. निद्रा केन्द्र (Sleep Centre) हाइपोथैलेमस में ही स्थित होता है। अत: यह 'सोने व जागने' की क्रिया पर नियंत्रण करता है।

5. यह शरीर में नियत तापक्रम बनाये रखने में सहयोग करता है।

6. भूख, प्यास, मोटापा आदि पर नियंत्रण करता है।

7. यह जठर अम्ल (Gastric Acid) के स्राव को नियंत्रित करता है।

8. लैंगिक व्यवहारों (Sexual Behaviours) का नियमन एवं नियंत्रण इसके द्वारा ही होता है।

9. यह वसा, कार्बोहाइड्रेट तथा प्रोटीन की पाचन क्रिया का नियमन करता है।

3. घ्राण पिण्ड (Olfactory Lobe) : यह नाक के ठीक ऊपर स्थित होता है। अधर तल से यह पिण्ड प्रमस्तिष्क से निकलता दिखाई देता है।

4. बैसल गैंगलिया (Basal Ganglion) : यह प्रमस्तिष्क गोलार्द्धों (Cerebral Hemispheare) के भीतर धूसर पदार्थ (Grey Matter) के रूप में पाया जाता है। इसमें मुख्य दो भाग होते हैं, जिसमें से धारीदार भाग को 'रेखीकाय' (Corpus Striatum) भी कहते हैं। यह भाग शारीरिक मुद्राओं को नियंत्रित करता है। कंकाल पेशी तथा असामान्य गति का नियंत्रण भी बैसल गैंगलिया के द्वारा ही होता है।

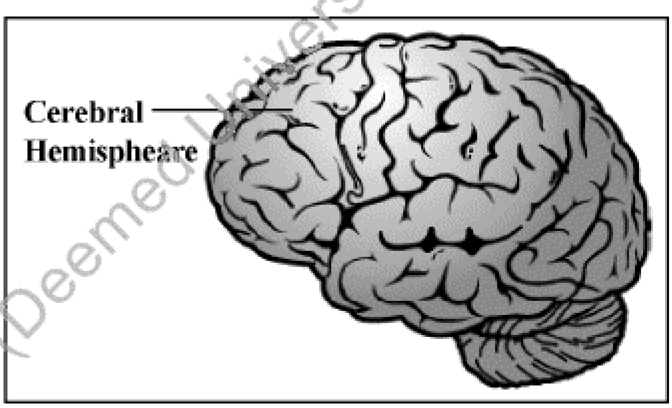

5. प्रमस्तिष्क (Cerebral Hemispheare) : अग्र मस्तिष्क के ऊपरी भाग को प्रमस्तिष्क-गोलार्द्ध के नाम से जाना जाता है। यह मस्तिष्क का सबसे बड़ा भाग है, तथा एक दरार द्वारा दो समान गोलार्द्धों में बंटा रहता है। इस गोलार्द्ध के कारण ही इसे प्रमस्तिष्क गोलार्द्ध कहते हैं। ये दोनों गोलार्द्ध शरीर में विपरीत अंगों की क्रियाओं पर नियंत्रण रखते हैं। जैसे— दायाँ गोलार्द्ध शरीर के बायें अंगों पर नियंत्रण रखता है तो बायाँ गोलार्द्ध दायें अंगों पर।

प्रमस्तिष्क के ऊपर का भाग गुम्बज की तरह (Dome Shaped) तथा नीचे का भाग समतल होता है। प्रमस्तिष्क की सतह पर कई उभार व दरारें दिखाई देती हैं। कुछ विशेषज्ञों का मत है कि अधिक उभार व दरारों की उपस्थिति अधिक बुद्धिमत्ता का द्योतक है। यानि जिस व्यक्ति के प्रमस्तिष्क में जितने अधिक उभार व दरारें होंगी, वह व्यक्ति उतना ही अधिक बुद्धिमान होगा। मंद बुद्धि वाले व्यक्ति के प्रमस्तिष्क का यह भाग सपाट होता है।

प्रमस्तिष्क प्रान्तस्था (Cerebral Cortex) में धूसर द्रव्य (Grey Matter) भरा रहता है। इसके ठीक नीचे तंत्रिका तंतुओं के सूमह रहते हैं, जिसे श्वेत पदार्थ (White Matter) के नाम से जानते हैं। प्रमस्क्ि प्रान्तस्था में कई गहरी परिखाएँ (Deep Fissures) होती हैं। इन परिखाओं एवं कार्य के आधार पर इसे चार खण्डों में विभाजित किया गया है—

खण्ड-नाम	स्थान	कार्य
1. अग्र खण्ड या ललाट खण्ड (Frontal Lobe)	प्रमस्तिष्क के सामने का भाग	बोलने की क्रिया
2. पार्श्वकपाल खण्ड (Parietal Lobe)	प्रमस्तिष्क के दोनों तरफ का भाग	स्पर्श-बोध
3. पश्चकपाल खण्ड (Occipital Lobe)	प्रमस्तिष्क के पीछे का भाग	देखने की क्रिया
4. शंख खण्ड (Temporal Lobe)	प्रमस्तिष्क के नीचे का भाग	सुनने की क्रिया

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रमस्तिष्क गोलार्द्ध के कार्य (Functions of Cerebral Hemispheare)

I. सांवेदनिक क्रियाएँ (Sensory Functions) : सांवेदनिक क्षेत्र केन्द्रीय परीखा (Central Sulci) के पीछे अवस्थित होता है। यह क्षेत्र शरीर के विभिन्न अंगों से ताप, दर्द, स्पर्श, चुभन आदि संवेदी उत्तेजनाओं को ग्रहण करता है। सोचना, समझना, इच्छा करना, सुख-दु:ख का अनुभव करना आदि इसके मुख्य कार्य हैं। मानव शरीर की सम्पूर्ण सांवेदनिक क्रियाओं को निम्न भागों में बांटा गया है—

1. श्रवण संबंधी अनुभव— प्रमस्तिष्क के शंखखण्ड (Tempoal Lobe) द्वारा श्रवण संबंधी ज्ञान होता है। यह क्रिया कान में उपस्थित संवेदी रोम-कोशिका (Sensory Hair Cell) द्वारा शंख खण्डों में पहुंचती है, जिससे ध्वनि को सुन पाते हैं।

2. दृष्टि संबंधी अनुभव— दृष्टि संबंधी अनुभवों का ज्ञान पश्च-कपाल खण्ड के द्वारा होता है। नेत्रों की तंत्रिकाएँ दृष्टि संबंधी संवेदनाओं को मस्तिष्क तक पहुंचाने का कार्य करती हैं।

3. घ्राण संबंधी अनुभव— सूंघने का केन्द्र शंख खण्ड (Temporal Lobe) के भीतरी भाग में अवस्थित रहता है। यहाँ संवेदनाएँ नाक से घ्राण तंत्रिका (Olfactory Nerve) द्वारा पहुंचती हैं और हमें गंध का ज्ञान होता है। इसी तरह स्वाद केन्द्र पार्श्व परीखा के ठीक ऊपर अवस्थित होता है। जीभ पर स्वाद कलिकाएँ (Taste Buds) होती हैं, जिनसे तंत्रिकाएँ स्वाद ग्रहण कर इन क्षेत्रों में पहुंचाने का कार्य करती हैं।

4. स्पर्श संबंधी अनुभव— स्पर्श बोध अनुभव केन्द्र पार्श्व कपाल खण्ड (Parietal Lobe) में स्थित होता है। शरीर के विभिन्न अंगों में स्थित तंत्रिका कोशिकाओं से जो तंत्रिका प्रवाह निकलता है, वह मस्तिष्क के इस भाग में पहुंचता है और स्पर्श, ताप, चुभन, दर्द आदि का बोध होता है।

II. प्रेरक क्रियाएँ (Motor Functions) : प्रेरक क्रियाओं का संचालन एवं नियंत्रण भी प्रमस्तिष्क द्वारा होता है। इसी भाग में प्रेरक केन्द्र उपस्थित होता है। प्रेरक केन्द्र ललाट खण्ड के अग्रभाग में केन्द्रीय परीखा (Central Sulci) के पास होता है। इस भाग में पिरामिड के आकार की कोशिकाएँ पाई जाती हैं। प्रेरक क्षेत्र शरीर की सभी ऐच्छिक पेशियों की गति का संचालन एवं नियमन करते हैं। बायें प्रमस्तिष्क गोलार्द्ध में उपस्थित प्रेरक क्षेत्र दायें ओर के सभी अंगों की ऐच्छिक पेशियों का संचालन एवं नियंत्रण करते हैं। इसी तरह दायें प्रमस्तिष्क गोलार्द्ध के प्रेरक क्षेत्र शरीर के बायीं ओर की सभी ऐच्छिक पेशियों का संचालन एवं नियंत्रण करते हैं। अगर किसी भी तरफ के प्रेरक क्षेत्र के तंत्रिका तंत्र में किसी प्रकार की गड़बड़ी, आघात, चोट या क्षति होती है तो इससे संबंधित विपरीत अंगों पर बुरा प्रभाव पड़ता है तथा विपरीत तरफ की पेशियों का पक्षाघात हो जाता है।

प्रेरक केन्द्र के द्वारा ही हमारी सभी प्रकार की इच्छाएँ कार्यरूप में परिणत होती हैं। शारीरिक सन्तुलन, अंगों का संचालन व नियंत्रण इसी केन्द्र के द्वारा होता है।

III. यह अनुबंधी प्रतिवर्ती क्रियाओं (Conditional Reflexes) को भी नियंत्रित करता है।

IV. सोचने, समझने, तर्क करने, वाक् पटुता, स्मृति, न्याय करने व योजना बनाने आदि का कार्य प्रमस्तिष्क गोलार्द्ध में स्थित विशिष्ट केन्द्रों के द्वारा ही निष्पन्न होता है।

V. प्रमस्तिष्क कॉर्टेक्स को ''भण्डार गृह'' (Store House) की संज्ञा दी गई है, क्योंकि तंत्रिका तंत्र के माध्यम से सूचनाओं को ग्रहण कर यह विभिन्न प्रकार के कार्यों का सम्पादन करता है। सम्पादित कार्यों की सूचनाओं की आज्ञा को संबंधित अंगों में भेजता है और इन्हें स्टोर भी रखता है।

5.6.2 मध्य मस्तिष्क : संरचना एवं कार्य

मध्य मस्तिष्क की रचना

मध्य मस्तिष्क प्रमस्तिष्क के नीचे की ओर तथा सेतु (Pons) और अनुमस्तिष्क (Cerebellum) के ऊपरी स्तम्भाकार भाग में स्थित रहता है। मध्य मस्तिष्क के भीतर भी नलिकाएँ उपस्थित होती हैं, जिन्हें मस्तिष्क कुल्या (Aqueduct Cerebri) कहते हैं। मस्तिष्क के इस भाग में भी प्रमस्तिष्क मेरुद्रव (Corebrospinal Fluid) रहता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

है। यह नीचे की ओर तृतीय निलय (Third Ventricle) से संबंधित रहता है। मध्य मस्तिष्क का निर्माण टेक्टस, टगमेंटम, सेरेब्रल पेण्डूकल तथा लाल केन्द्रक (Red Nucleus) से होता है।

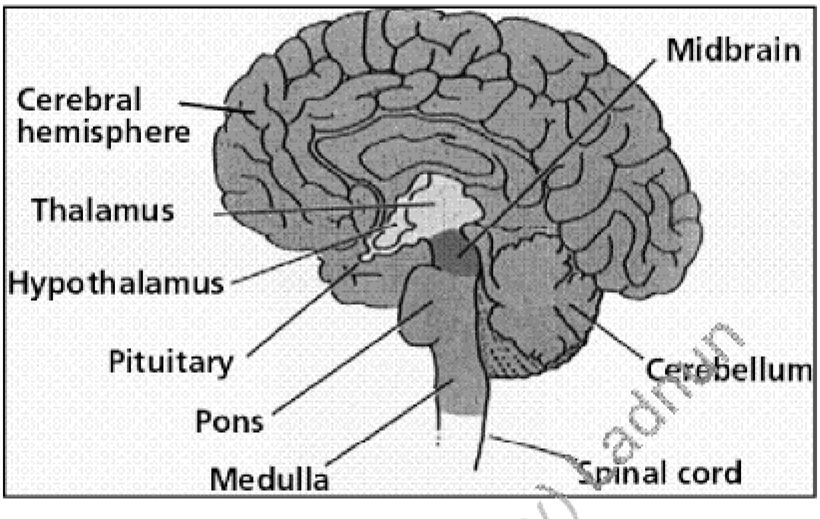

मध्य मस्तिष्क के कार्य

1. मध्य मस्तिष्क के ऊपरी भाग (Tectum) में दो जोड़ी संवेदी केन्द्र— श्रवण केन्द्र तथा दृष्टिकेन्द्र उपस्थित होते हैं, जो देखने एवं सुनने की क्रिया को सम्पन्न करते हैं, साथ ही साथ आँखों की गति पर नियंत्रण रखते हैं।

2. मध्य मस्तिष्क की निचली सतह को तल (Floor) कहते हैं। इसके द्वारा ज्ञान तंत्रिका प्रवाह मस्तिष्क में ऊँचे केन्द्रों की ओर जाता है। प्रेरक तंत्रिका प्रवाह इसी रास्ते से मस्तिष्क के निचले केन्द्रों में पहुंचता है।

3. यह अग्र मस्तिष्क (Fore Brain) और पश्च मस्तिष्क (Hind Brain) के बीच का भाग है तथा एक-दूसरे को जोड़ने का कार्य करता है।

5.6.3 पश्च मस्तिष्क : संरचना एवं कार्य

यह (Hind Brain) मध्य मस्तिष्क के नीचे अवस्थित रहता है। इसके तीन भाग हैं—

1. अनुमस्तिष्क (Cerebellum),
2. सेतु (Pons),
3. सुषुम्नाशीर्ष (Medulla Oblongata).

1. अनुमस्तिष्क (Cerebellum) :

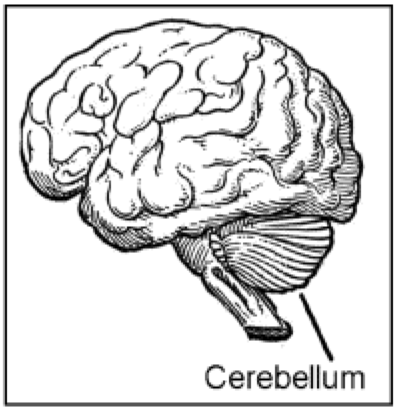

संरचना : यह पश्च मस्तिष्क का सबसे बड़ा भाग है। इसके सामने सेतु तथा सुषुम्ना-शीर्ष उपस्थित होते हैं। सेतु तथा सुषुम्ना शीर्ष अनुमस्तिष्क से चतुर्थ निलय द्वारा अलग रहते हैं। एक स्वस्थ युवा व्यक्ति में इसका वजन 150 ग्राम होता है। अनुमस्तिष्क में भी दो गोलार्द्ध होते हैं— एक दायीं तथा दूसरा बायीं ओर। इसका संबंध एक ओर प्रमस्तिष्क से तंत्रिका तंतुओं द्वारा तथा दूसरी ओर सुषुम्नाशीर्ष से रहता है। अनुमस्तिष्क का ऊपरी भाग धूसर पदार्थ तथा भीतरी भाग श्वेत पदार्थ का बना होता है। कार्यों के आधार पर अनुमस्तिष्क को दो भागों में विभाजित किया गया है—

1. फ्लोकुलर नोडूलर लोब,
2. कॉर्पस सेरेबेली।

कार्य : 1. शरीर को संतुलित अवस्था में रखने वाली पेशियों पर नियंत्रण,

2. शरीर को सामान्य स्थिति में रखना,
3. विभिन्न अंगों, पेशियों, जोड़ों आदि की क्रियाओं में सामंजस्य,
4. सभी प्रकार की जटिल क्रियाओं को क्रम में रखना,
5. व्यक्ति की चाल एवं गति का नियंत्रण।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

II. सेतु (Pons) :

रचना एवं कार्य : सेतु अनुमस्तिष्क के सामने का भाग है तथा तंत्रिका तंत्र की बनी हुई एक पट्टी है। यह सफेद पदार्थ की बनी होती है। सेतु (Pons) ही अनुमस्तिष्क के दोनों गोलार्द्धों को मिलाता है। इसी भाग में प्रमस्तिष्क के तंत्रिका तंतु एक ओर से प्रवेश कर दूसरी ओर की पेशियों में पहुंच जाते हैं। इसी तरह बायीं तरफ से आने वाले तंत्रिका तंतु दायें ओर तथा दायें तरफ से आने वाले तंत्रिका तंतु बायीं ओर की तंत्रिकाओं को प्रभावित करते हैं, जिससे शरीर की पेशियाँ प्रभावित होती हैं। पाँचवीं, छठी तथा सातवीं जोड़ी कापालिक तंत्रिकाओं के केन्द्र सेतु में ही स्थित होते हैं।

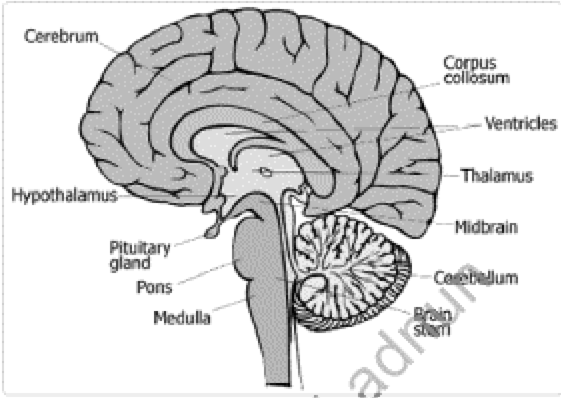

III. सुषुम्ना शीर्ष (Medulla Oblongata) :

रचना : सुषुम्ना शीर्ष को ''मेरुशीर्ष'' भी कहते हैं। सुषुम्ना के ऊपर एक फूला हुआ भाग होता है, जिसे सुषुम्ना शीर्ष कहा जाता है। इसके भीतर धूसर पदार्थ तथा बाहर श्वेत पदार्थ होता है। मस्तिष्क का यह भाग बेलनाकार होता है, जिसकी लम्बाई लगभग 2.5 सेंटीमीटर होती है। इसका आकार उल्टा पिरामिड जैसा होता है। यह कपाल के भीतर फोरमेन मैग्नम के ऊपर अवस्थित होता है। सुषुम्नाशीर्ष के भीतर ही 8वीं, 9वीं, 10वीं, 11वीं कापालिक तंत्रिकाओं (Cranial Nerves) के केन्द्र होते हैं। इसके भीतर ही धूसर पदार्थों की कई तंत्रिका गुच्छिकाएँ (Basal Ganglia) दिखाई पड़ती हैं। इन्हीं धूसर पदार्थों के गड्ढों में कई जीवनावश्यक केन्द्र होते हैं, जैसे—

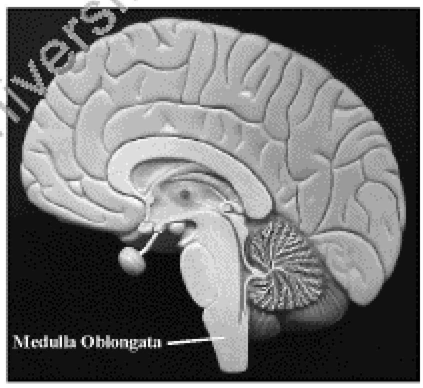

1. हृत् केन्द्र (Cardiac Centre),
2. श्वसन केन्द्र (Respiratory Centre),
3. वैसोमोटर केन्द्र (Vasomotor Centre),
4. प्रतिवर्ती केन्द्र (Reflex Centre).

कार्य—1. उपस्थित जीवनावश्यक केन्द्रों द्वारा महत्त्वपूर्ण कार्यों का सम्पादन,

2. प्रतिवर्ती क्रिया का निष्पादन,
3. भोजन निगलने जैसी सहज क्रियाओं में मदद,
4. कपाल तंत्रिकाओं को आने-जाने का मार्ग प्रदान करना।

5.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

निबंधात्मक प्रश्न

1. मानव मस्तिष्क की संरचना एवं कार्यों का वर्णन कीजिए।
2. कपाल तंत्रिकाऐं कितनी होती हैं, उनके नाम देते हुए उनके उद्‌गम स्थल एवं कार्य बताइये।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. मस्तिष्क की तंत्रिकाएँ कौन-कौन-सी हैं?
2. मस्तिष्क को कितने प्रमुख भागों में बांटा गया है?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

बहुवैकल्पिक प्रश्न

1. मस्तिष्क भाग है–

   (क) स्वशासी तंत्रिका तंत्र का (ख) मेरुदण्ड का (ग) सुषुम्ना का (घ) केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र का

2. प्रमस्तिष्क प्रान्तस्था के भाग होते हैं—

   (क) पांच (ख) तीन (ग) एक (घ) चार

सन्दर्भ ग्रंथ

1. शरीर क्रिया विज्ञान–कान्ति पाण्डेय, प्रमिला वर्मा
2. मानव शरीर एवं क्रियाविज्ञान–डा. बृन्दासिंह
3. Principles of Anatomy and Physiology– G.J. Tortora and N.P. Anagnostakos

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई-6 : सुषुम्ना— संरचना एवं महत्त्वपूर्ण कार्य

संरचना

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 सुषुम्ना

6.3 सुषुम्ना की संरचना

6.4 सुषुम्ना तंत्रिकाओं के मूल

6.5 सुषुम्ना के कार्य

6.6 अभ्यास प्रश्न

6.0 उद्देश्य

1. सुषुम्ना किन द्रव्यों से बनी होती है?
2. प्रमस्तिष्क मेरूतरल क्या है?
3. सुषुम्ना की संरचना को समझ सकेंगे।
4. मेरू-तंत्रिकायें कौन सी होती हैं?
5. प्रतिवर्त क्रियाओं की महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6.1 प्रस्तावना

मस्तिष्क के सुषुम्नाशीर्ष (Medulla Oblongata) से नीचे रस्सी के आकार की नीचे लटकती रचना को सुषुम्ना (Spinal Chord) कहा जाता है। एक वयस्क व्यक्ति में इसकी लम्बाई लगभग 42 से 48 सेमी (16 से 18 इंच) होती है। यह लगभग बेलनाकार होती है और इसका व्यास लगभग एक इंच (2.5 सेमी) होता है।

6.2 सुषुम्ना

सुषुम्ना को मेरुरज्जु के नाम से भी जाना जाता है। यह मस्तिष्क आवरण (Meninges) के स्तरों से आवृत्त रहती है तथा प्रमस्तिष्क मेरुतरल (Cerebrospinal Fluid) से घिरी रहती है। इसका आकार लम्बा और बेलनाकार रस्सी के जैसा होता है। सुषुम्ना (Spinal Cord) सुषुम्नाशीर्ष (Medulla Oblongata) के नीचे के भाग से आरम्भ होती है तथा पश्चकपालास्थि के महाछिद्र (Foramen Magnum) से निकलती है तथा कशेरुकदण्ड (Vertebral Column) के प्रथम शीर्षधर कशेरुका (Atlas Vertebrae) में घुसकर, कशेरुका नाल (Vertebral Canal) से होती हुई कटि कशेरुका (Lumbar Vertebrae) में पहुंचती है तथा वहाँ से दूसरी कमर कशेरुका के सामने आकर समाप्त होती है। एक वयस्क मनुष्य में इसकी लम्बाई लगभग 45 से.मी. तक होती है। सुषुम्ना का आकार सब जगह एक-सा नहीं होता बल्कि गर्दन (Neck) तथा कमर प्रदेश (Lumbar Region) में यह अधिक मोटी होती है।

सुषुम्ना भी मस्तिष्क के समान एक आवरण, जिसे मेनिनजेज (Meninges) कहते हैं, से ढ़की रहती है। इसमें तीन परतें होती हैं—

1. दृढ़तानिका (Duramater),
2. जालतानिका (Arachnoid),
3. मृदुतानिका (Piamater)।

दृढ़तानिका (Duramater) सबसे बाहरी एवं कठोर परत है। यह मस्तिष्क के सभी नाजुक अंगों की सुरक्षा करती है तथा उन्हें सहारा प्रदान करती है। इसके ठीक नीचे जालतानिका (Arachnoid) का स्तर है जो दृढ़तानिका से कम

कठोर होता है तथा लचीले संयोजी-उत्तक का बना होता है। यह मस्तिष्क आवरण का मध्य स्तर है। जालतानिका (Arachnoid) के नीचे मृदुतानिका (Piamater) का स्तर होता है। मृदुतानिका में ही रक्त नलिकाओं (Blood Vessels) का जाल बिछा होता है तथा यह प्रमस्तिष्क मेरुतरल (Cerebrospinal Fluid) से भरा होता है। इसी प्रमस्तिष्क मेरुतरल में मस्तिष्क डूबा रहता है। यह तरल मस्तिष्क को आघात, चोट एवं बाहरी धक्के से बचाता है।

6.3 सुषुम्ना की संरचना (Structure of Spinal Cord)

बेलनाकार छड़ के समान आकार वाली एवं सभी जगहों से असमान मोटाई वाली इस सुषुम्ना की अनुप्रस्थ काट (Transverse Section) देखने पर यह अण्डाकार दिखाई देती है। सुषुम्ना के अन्त:आवरण को हटाने पर इसमें स्पष्ट रूप से दो धारियाँ दिखाई देती हैं। एक सामने की ओर, जिसे अग्र मेडियन दरारें (Anterior Median Fissures) तथा दूसरी पीछे की ओर, जिसे पश्च मेडियन (Posterior Median Fissure) कहते हैं। सुषुम्ना भी मस्तिष्क की तरह धूसर पदार्थ एवं श्वेत पदार्थ की बनी होती है।

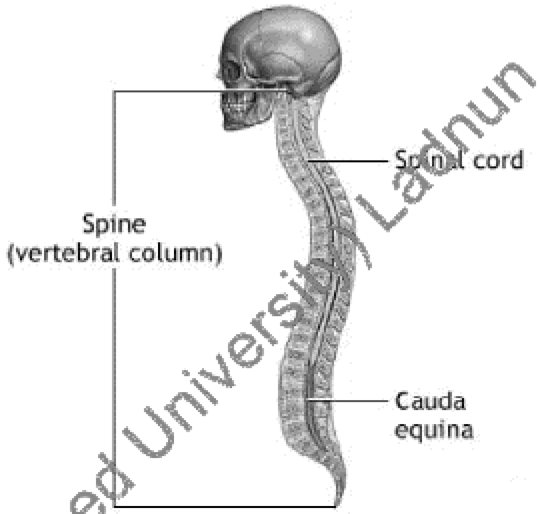

धूसर पदार्थ (Grey Matter)

सुषुम्ना में धूसर पदार्थ भीतर की ओर व्यवस्थित रहता है। इसका आकार अंग्रेजी के 'H' अक्षर के जैसा होता है। धूसर पदार्थ का क्षेत्र अनुप्रस्थ भाग में होता है। धूसर पदार्थ के मध्य में ऊपर से नीचे एक छिद्र होता है, जिसे केन्द्रीय नलिका (Central Canal) कहते हैं। यह केन्द्रीय नलिका मस्तिष्क के चौथे निलय से निकली होती है। इसी निलय (Ventricle) में प्रमस्तिष्क मेरुतरल (Cerebrospinal Fluid) भरा रहता है।

धूसर (Grey) भाग में चार भुजाएँ दिखाई देती हैं, दो अग्र (Anterior) भाग में तथा दो पश्च (Posterior) भाग में। अग्र भुजा को अग्र शृंग (Anterior horn) तथा पश्च भुजा को पश्च शृंग (Posterior Horn) कहते हैं। अग्र शृंग की तंत्रिका कोशिकाएँ (Nerve Cells) संचालक प्रकृति (Motor Nerve) की होती हैं तथा ये तंत्रिकाएँ धड़, पैर और हाथों की मांसपेशियों में जाती हैं। पश्च शृंग की तंत्रिका कोशिकाएँ संवेदी (Sensory) प्रकार की होती हैं। ये संवेग प्रवाह को शरीर के विभिन्न अंगों की त्वचा में ले जाती हैं। शरीर के विभिन्न भागों की संवेदी तंत्रिकाएँ (Sensory Nerves) त्वचा द्वारा पश्च शृंग (Posterior Horn) में पहुंचती हैं।

श्वेत पदार्थ (White Matter)

सुषुम्ना का बाहरी भाग श्वेत पदार्थ (White Matter) का बना होता है। यह श्वेत पदार्थ तीन पंक्ति (column) में सजा रहता है– अग्र, पश्च एवं पार्श्व पंक्ति। ये तीनों पंक्तियाँ मस्तिष्क से ऊपर की ओर संवेदी तंत्रिकाओं की बनी होती हैं तथा मस्तिष्क से नीचे की ओर संचालक तंत्रिकाओं (Motor-Nerve) तथा तन्तुमय संयोजी न्यूरॉन्स की बनी होती हैं।

6.4 सुषुम्ना तंत्रिकाओं के मूल (Roots of Spinal Nerves)

सुषुम्ना से 31 जोड़ी तंत्रिकाएँ निकलती हैं, जो ऊपर से नीचे को जाती हैं। ये सुषुम्ना तंत्रिकाओं (Spinal Nerves) के नाम से जानी जाती हैं। ये तंत्रिकाएँ सुषुम्ना के दोनों ओर दायें व बायें दिशा में व्यवस्थित होती हैं। प्रत्येक सुषुम्ना तंत्रिका (Spinal Nerve) के दो मूल (Roots) होते हैं–

1. अग्र मूल (Anterior Root),
2. पश्च मूल (Posterior Root).

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

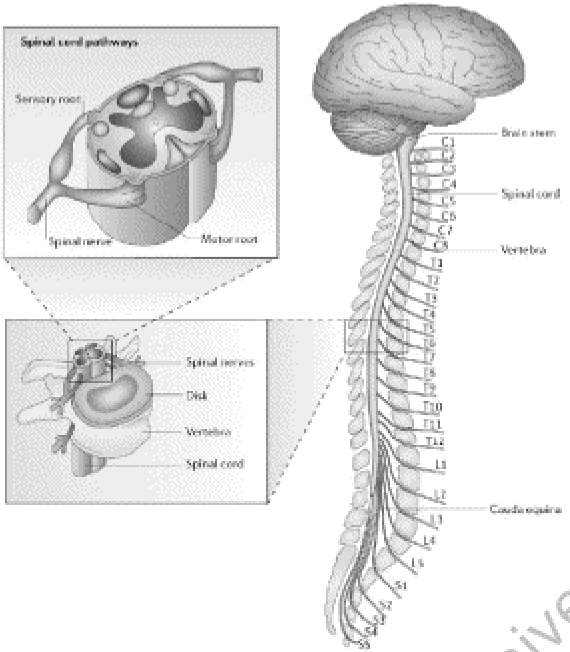

Spinal Cord and Roots of Spinal Nerves

अग्र मूल (Anterior Root) का निर्माण अग्र शृंग (Anterior Horn) से निकलने वाली तंत्रिकाओं के द्वारा होता है। इसी के कारण हमारी सभी प्रकार की पेशियों में संकुचन एवं गति (Contraction & Motion) होती है। ये तंत्रिकाएँ प्रेरक प्रकार (Motor) की होती हैं, जिन्हें संचालक तंत्रिकाएँ भी कहा जाता है। प्रेरक-तन्तु संवेगों को मस्तिष्क से शरीर के अंगों की विभिन्न पेशियों की ओर ले जाते हैं।

पश्च मूल (Posterior Root) का निर्माण पश्च शृंग (Posterior Horn) से निकलने वाली तंत्रिकाओं के द्वारा होता है। ये तंत्रिकाएं संवेदी (Sensory) प्रकार की होती हैं और शरीर के विभिन्न भागों से संवेदनाओं को मस्तिष्क की ओर ले जाती हैं। संवेदी तंतुओं (Sensory Fibres) के उद्‌गम स्थान को संवेदी-तंत्रिका मूल (Sensory Nerve Roots) कहते हैं।

दोनों मूलों (Both Roots) से निकलने वाली तंत्रिकाएँ कशेरुकदण्ड (Vertebral Column) में स्थित कशेरुक नलिका (Vertebral Column)में आकर मिल जाती हैं तथा दो कशेरुकाओं (Vertebraes) के बीच स्थित छोटे-छोटे छिद्रों से बाहर आ जाती हैं। इस तरह दायीं ओर की तंत्रिकाएँ बायीं ओर निकलती हैं तथा बायीं ओर की तंत्रिकाएँ दायीं ओर। पश्च शृंग से निकलने वाली तंत्रिकाओं का एक समूह होता है, जिसे 'पश्च शृंग गंडिका' (Posterior Root Gangalion) कहते हैं। इस तरह ये तंत्रिकाएँ विभाजित हो जाती हैं तथा त्वचा व मांसपेशियों में चली जाती हैं।

6.5 सुषुम्ना के कार्य (Functions of Spinal Cord)

सुषुम्ना तंत्रिका तंतुओं की बनी होती है। इसके मुख्य दो कार्य हैं–

1. प्रतिवर्ती क्रिया में भाग लेना,
2. मस्तिष्क का शेष शरीर से सम्बन्ध बनाए रखना।

1. प्रतिवर्ती क्रिया (Reflex Action) : सुषुम्ना प्रतिवर्ती क्रिया का केन्द्र है। मनुष्य जीवन पर्यंत कुछ-न-कुछ सोचते रहता है और उसी के अनुरूप क्रियाएँ करता है। कुछ क्रियाएँ तो स्वत: ही हो जाती हैं, जैसे– अगर हमारे हाथ में सूई चुभती है अथवा हाथ किसी गर्म वस्तु से छू जाता है तो हाथ तुरन्त उस गर्म वस्तु या स्थान से हट जाता है। हाथ हटाने की यह क्रिया स्वत: ही होती है। इसके लिए हमें सोचने-विचारने की जरूरत नहीं पड़ती है। इसी तरह अगर हमारे पाँव में कांटा चुभ जाता है तो भी हमारा पैर तुरन्त ही वहाँ से हट जाता है। पाँव हटने की क्रिया भी स्वत: ही होती है। इस तरह की क्रियाएँ हमारे शरीर में निरन्तर होती रहती हैं, जिनका हमें आभास तक प्रतिक्रिया घटित होने के बाद होता है। सर्वप्रथम जब हमारे पाँव में कांटा चुभता है तो वहाँ तलवे की त्वचा में उपस्थित संवेदी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

तंत्रिकाएँ (Sensory Nerves) कांटा चुभने के संवेग-प्रवाह को मस्तिष्क तक ले जाती हैं। मस्तिष्क में उस अंग विशेष से संबंधित संचालक तंत्रिकाएँ (Motor Nerves) उपस्थित होती हैं, जो मस्तिष्क द्वारा दिये गए आदेश को लेकर उस संबंधित अंग में पहुंचती हैं। फलतः पैरों की पेशियों में संकुचन होता है और पाँव स्वयं ही वहाँ से खिंच या हट जाता है। इसी तरह अगर हमारी आँखों के आगे तेज रोशनी या धूल-कण आदि कुछ आ जाएँ तो आँखों की पलकें (eyelids) स्वतः ही बंद हो जाती हैं। अतः इस तरह की सारी क्रियाएँ प्रतिवर्ती क्रियाएँ होती हैं, जिनके लिए हमें सोचने, समझने, चिन्तन करने या मानसिक विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं होती है।

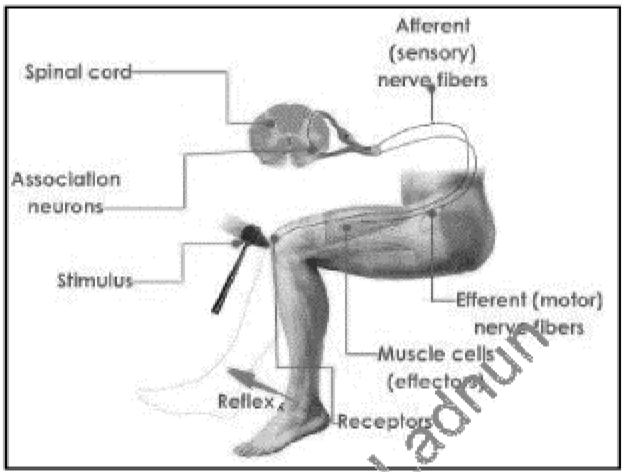

इसी तरह अगर हमारे सामने अचार या पसन्दीदा पकवान आता है तो मुँह से पानी आने लगता है। अचार या स्वादिष्ट खाना यहाँ उत्तेजक है, जिसे आँख देखती है तथा इनकी उपस्थिति की सूचना सुषुम्ना में तंत्रिकाओं द्वारा पहुंचती हैं। सुषुम्ना में उपस्थित संचालक तंत्रिकाएँ (Motor Nerves) जीभ तक पहुंचती हैं तथा प्रेरक क्रिया स्वरूप जीभ से लार निकलने लगती है। इसलिए इस प्रकार बिना सोचे-समझे तुरन्त हो जाने वाली स्वतः संचालित क्रियाओं को प्रतिवर्ती क्रिया कहते हैं।

2. शरीर के शेष भाग से मस्तिष्क का सम्बन्ध बनाए रखना : सुषुम्ना शरीर के विभिन्न भागों तक संवेग पहुंचाने वाले तंत्रिका-तंतुओं एवं मस्तिष्क के बीच संबंध बनाए रखती है। मस्तिष्क को शरीर-तंत्र का प्रधान कार्यालय माना गया है और सुषुम्ना को सहायक कार्यालय। अगर सुषुम्ना को कोई चोट, क्षति या आघात लगता है तो उस स्थान से नीचे वाले अंगों की विपरीत ओर की संबंधित पेशियाँ प्रभावित होती हैं और उनकी सक्रियता नष्ट हो जाती है।

जहाँ से जिस प्रदेश से सुषुम्ना का श्वेत पदार्थ (White Matter) क्षतिग्रस्त होता है, वहीं से उस अंग तथा मस्तिष्क का संबंध-विच्छेद हो जाता है। इस तरह अगर कटि प्रदेश (Lumber Region) की सुषुम्ना तंत्रिकाएँ (Spinal Nerves) क्षतिग्रस्त होती हैं तो पैरों की चलने-फिरने जैसी क्रियाएँ बंद हो जाती हैं। इसी प्रकार ग्रीवा प्रदेश (Cervix Region) की सुषुम्ना तंत्रिकाएँ नष्ट होती हैं तो श्वसन-क्रिया बंद होकर व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि सुषुम्ना मस्तिष्क और शेष शरीर के बीच जीवनावश्यक संबंध बनाए रखती है। इसमें आए किसी भी विकार का परिणाम शेष शरीर के लिए हानिकर या घातक हो सकता है तथा मनुष्य का जीवन कष्टप्रद या मरणासन्न स्थिति में पहुंच सकता है।

6.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. सुषुम्ना की संरचना एवं कार्यों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
2. प्रतिवर्त क्रियाओं का विवरण दीजिए।
3. प्रतिवर्त से आप क्या समझते हैं?
4. प्रतिवर्त क्रियाएँ कितने प्रकार की होती हैं?
5. सुषुम्ना की लगभग लम्बाई कितनी होती है?
   (क) 45-50 सेमी (ख) 42-48 सेमी (ग) 50-55 सेमी (घ) 30-35 सेमी
6. सुषुम्ना का व्यास लगभग होता है:—
   (क) 4 सेमी (ख) 2.5 सेमी (ग) 4.8 सेमी (घ) 3 सेमी

सन्दर्भ ग्रंथ

1. Principles of Anatomy and Physiology—G.J. Tortora and N.P. Anagnostakos.
2. मानव शरीर एवं क्रियाविज्ञान—डॉ. बृन्दासिंह
3. शरीर क्रिया विज्ञान—कान्ति पाण्डेय, प्रमिला वर्मा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–7 : स्वायत्तशासी तंत्रिकातंत्र– अनुकंपी एवं परानुकम्पी प्रभाग : संरचना एवं कार्य

संरचना

7.0 उद्देश्य
7.1 प्रस्तावना
7.2 स्वायत्तशासी तंत्रिका तन्त्र
7.2.1 अनुकम्पी तन्त्रिका तन्त्र
7.2.2 परानुकम्पी तन्त्रिका तन्त्र
7.3 स्वायत्तशासी तंत्रिका तन्त्र के कार्य
7.4 प्रश्नावली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.0 उद्देश्य

1. क्या स्वायत्तशासी तन्त्र का मस्तिष्क से सम्बन्ध है?
2. स्वायत्तशासी तन्त्रिका तन्त्र के कितने भाग हैं?
3. अनुकम्पी तंत्रिकाएँ क्या हैं?
4. क्या अनुकम्पी तथा परानुकम्पी तन्त्र के विपरीत कार्य हैं?
5. फाइट एवं फ्लाइट प्रतिक्रिया क्या है?

7.1 प्रस्तावना

शरीर के भीतर कुछ ऐसी भी तंत्रिकाएँ हैं जिनकी क्रियाओं का संबंध मस्तिष्क से नहीं रहता, परंतु ऐसी तंत्रिकाएँ केंद्रीय तंत्रिका तंत्र से ही उत्पन्न होती हैं। क्रियाओं की भिन्नता के कारण वह एक अलग भाग बन जाता है। इस भाग की तंत्रिकाएँ हमारे मस्तिष्क को न तो सूचना भेजती हैं और न ही मस्तिष्क से कोई सूचना ग्रहण करती हैं। इनकी क्रिया स्वतः होती है। फुफ्फुस, हृदय की धड़कन, आमाशय की पेशियों में संकुचन तथा प्रसरण, वृक्क, मूत्राशय, गर्भाशय आदि की क्रियाएँ हमारी इच्छाओं द्वारा नहीं होतीं। वे स्वतः कार्यरत रहती हैं। इनको नियंत्रित करने वाली तंत्रिकाओं का मस्तिष्क के केंद्रों से कोई संसर्ग नहीं रहता। आंतरिक अंगों को नियंत्रित करने वाली तंत्रिकाओं का स्वतंत्र समूह होता है, जिसे एक पृथक् मंडल के रूप में रखा गया है। इस तंत्र में भी तंत्रिका कोशिका की गंडिकाएं (Ganglion) तथा तंतु होते हैं। यह तंत्र केंद्रीय तंत्रिका तंत्र के तंतुओं द्वारा संबंधित रहते हुए भी स्वतंत्र कार्य करता है, इसीलिए इसे स्वायत्तशासी तंत्रिका तंत्र कहा जाता है।

7.2 स्वायत्तशासी तंत्रिका तंत्र (Autonomic Nervous System – ANS)

स्वायत्तशासी तंत्रिका तंत्र की परिभाषा के अनुसार यह एक प्रेरक तंत्रिका तंत्र है, जो हमारी ग्रंथियों, हृदय पेशियों तथा सभी प्रकार की चिकनी पेशियों की क्रियाओं को नियंत्रित करता है। स्वायत्तशासी का अर्थ ही स्वयं शासित होता है (अंग्रेजी में Autonomic का अर्थ auto=self, nom=rule–means self governed) इसे विसरल मोटर तंत्र (visceral motor system) भी कहा जाता है। ANS का प्राथमिक क्रिया के क्षेत्र हैं–वक्ष गुहा तथा उदर गुहा के भीतरी अवयव साथ ही यह शरीर की बाह्य दीवारों, जैसे– रक्त वाहिनियों की भीत्ति, श्वेद ग्रंथियों तथा पाइलोइरेक्टर पेशियों को भी नियंत्रित करने का कार्य करती हैं।

स्वायत्तशासी तंत्रिका तंत्र को दो भागों में विभाजित किया जाता है–1. अनुकंपी, 2. परानुकंपी।

ये दोनों विभाजन रचना एवं क्रिया के अनुसार तो अलग-अलग हैं परन्तु ये हमेशा एक ही क्रियास्थल के अंग पर होते हैं तथा दोनों का अच्छा समन्वय होता है व आपस में विपरीत प्रभाव डालते हैं।

7.2.1 अनुकम्पी तंत्रिका तंत्र (Sympathetic Nervous System)

अनुकम्पी तंत्र को 'वक्ष कटि विभाग' (Thorocolumbar Division) भी कहा जाता है, क्योंकि यह मेरुरज्जू के कटि व वक्ष खण्डों से निकलती है। मेरुरज्जू के पृष्ठवंश के दोनों ओर श्वेत रंग की छोटी-छोटी गंडिकाओं की लम्बी शृंखला निकली हुई रहती है। ये गंडिकाएँ माला की तरह लटकी रहती हैं। मेरुरज्जु के दोनों ओर गुच्छिकाओं की इस शृंखला को अनुकंपी शृंखला कहते हैं। इन गंडिकाओं की संख्या व्यक्ति-व्यक्ति के अनुसार भिन्न होती है परन्तु सामान्यत: तीन जोड़े ग्रीवा से, 11 जोड़े वक्ष से, 4 जोड़े कटि और 1 जोड़ा त्रिक भाग में होता है। वक्ष कटि विभाग में प्रत्येक गण्डिका-तंत्रिका तंतुओं द्वारा संबंधित रहती है और यहाँ से तंतु निकलकर सुषुम्ना से मिले रहते हैं। मेरुरज्जु से निकलने वाले तंतु धूसर भाग के पार्श्व शृंगों में स्थित कोशिकाओं से अक्षतंतु के रूप में निकलकर अग्र मूल के साथ बाहर आते हैं। फिर ये मूल से अलग होकर पार्श्व गण्डिका में चले जाते हैं। ये चमकीले तथा श्वेत रंग के होते हैं। इन्हें श्वेत संयोजनी तंतुकाएँ कहते हैं। कुछ तंतु गण्डिका से निकलकर मेरु तंत्रिका में चले जाते हैं। ये कुछ मटमैले रंग के होते हैं, जिन्हें धूसर संयोजनी तंतुकाएँ कहते हैं।

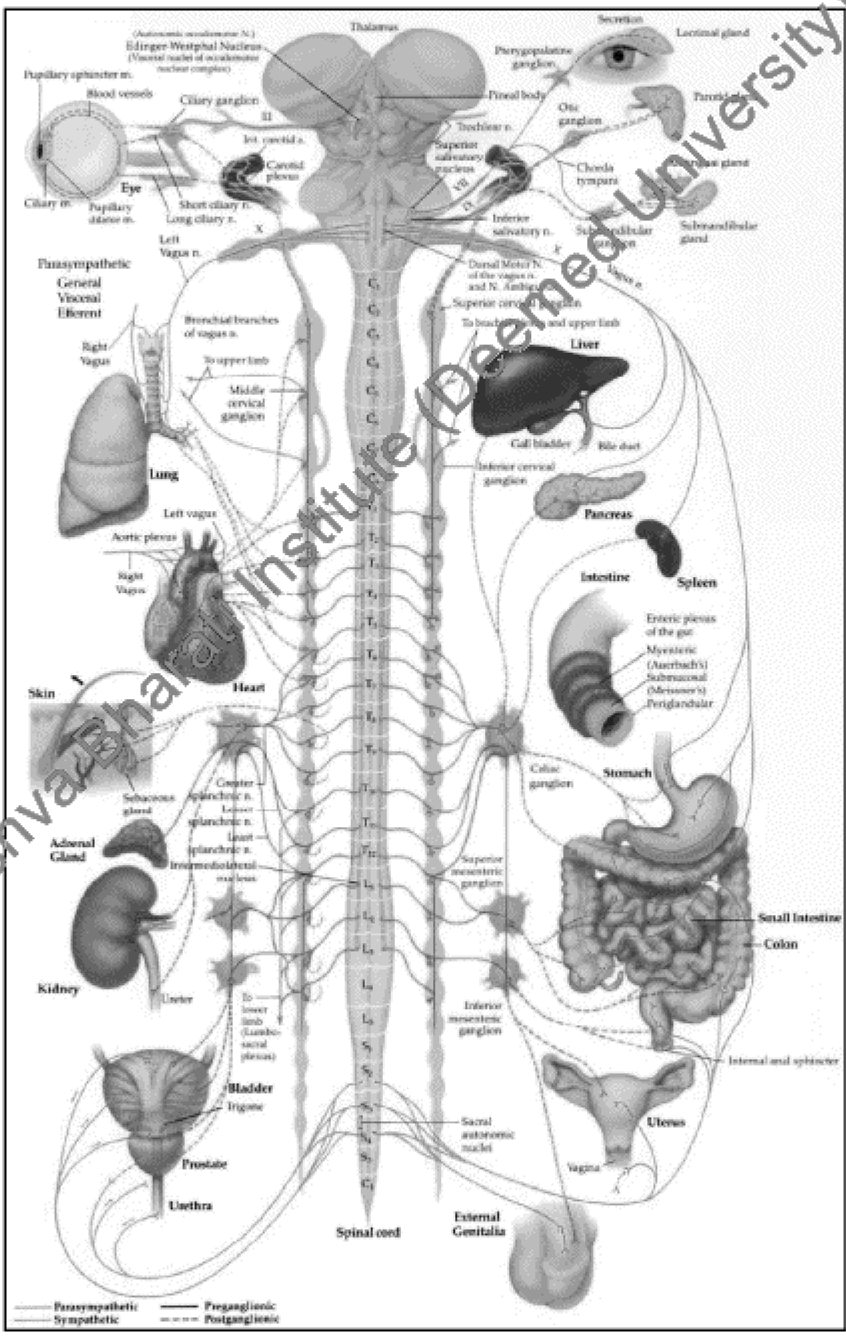

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.2.2 परानुकम्पी (Parasympathatic) तंत्रिका तंत्र

परानुकम्पी तंत्र को कपाल त्रिक विभाग भी कहते हैं, क्योंकि इसकी गुच्छिका तंत्रिका-कोशिकाएँ, मस्तिष्क और मेरुरज्जु के त्रिक खण्डों में पायी जाती है। परानुकम्पी तंत्रिका तंत्र परानुकम्पी गण्डिका से बना हुआ होता है जो परीधीय उत्तक के पास स्थित रहता है। यह एक-दूसरे से जुड़कर शृंखला का निर्माण नहीं करते हैं। पूर्वगंडिकीय परानुकम्पी तंतु अक्षतंतु होते हैं, जो या तो अधो भाग के तंतु त्रिक प्रांत में स्थित मेरु के तृतीय, चतुर्थ और पंचम खण्डों में स्थित कशेरुकाओं से निकलते हैं या ऊर्ध्व भाग के सूत्र मध्य, सेतु और मेरुशीर्ष के विशेष केन्द्रों से निकलते हैं।

परानुकम्पी तंत्रिका केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र से निकलती है तथा इनका विस्तार परीधीय ऊतकों तक होता है और वहाँ ये अलग होकर उन ऊतकों के पास ये प्रत्येक गण्डिका में बदल जाती हैं। पश्च गंडिकीय तंतु गंडिका कोशिका के अक्ष तंतु हैं। थोड़ी दूर जाने पर ये अलग होकर ये चिकनी पेशी या ग्रंथियों के तंतु बन जाते हैं। प्रथम प्रकार के तंतुओं (पूर्व गंडिकीय) का अंत किसी गंडिका या जालिका में होता है। सबसे ऊपर मध्य मस्तिष्क से आने वाले तंतु नेत्र चालकी या तृतीय कपाल तंत्रिका के केन्द्र से निकलते हैं और परितारिका में समाप्त हो जाते हैं। इसके द्वारा ही उत्तेजनाएँ परितारिका में पहुंचती हैं, जिससे पेशियों में संकुचन होता है और नेत्र का तारा संकुचित तथा प्रसारित होता है। इसी प्रकार से चेहरे में स्थित कोशिकाएँ आनन तंत्रिका के केन्द्र से संबंधित हैं। वेगस तंत्रिका का शरीर में अधिक दूर तक विस्तार रहता है। इसमें अधिकतर परानुकम्पी तंतु होते हैं। इसका विस्तार फुफ्फुसीय जालिका तक होता है और यहाँ से इसके तंतु वायु-प्रणालिकाओं की भित्तियों में जाते हैं। इसके आगे ये तंतु हृदय में चले जाते हैं, फिर यही तंत्रिका उदर भाग में चली जाती है, जहाँ इसके तंतु आमाशय, क्षुद्रान्त, यकृत, पित्ताशय, वृहदान्त, पित्त नलिकाओं तथा अग्नाशय में फैले रहते हैं।

मेरुरज्जु के दूसरे, तीसरे और चौथे कटि खण्ड से अग्र मूलों के साथ बाहर निकलने वाली त्रिक तंत्रिका वृहदांत्र के बाकी भाग और श्रोणी में उपस्थित अंगों को नियंत्रित करती है। इसके तंतु मूत्राशय, गुदा की पेशियों तथा वृहदांत्र के शेष भाग की पेशियों को नियंत्रित करते हैं।

7.3 स्वायत्तशाषी तंत्रिका तंत्र के कार्य

स्वायत्तशासी तंत्रिका तंत्र के दोनों भाग अनुकम्पी व परानुकम्पी हमेशा एक-दूसरे के विपरीत और विरोधी कार्य करते हैं। उदाहरण—अनुकम्पी तंत्रिका तंत्र हमारे हृदय की गति को सामान्य से बढ़ाने का कार्य करता है जबकि परानुकम्पी इस बढ़ी हुई गति को पुनः सामान्य करने का कार्य करता है। हम दोनों तंत्रों के कार्यों को पृथक् करके विस्तार से अध्ययन करेंगे। अनुकम्पी तंत्रिकाएँ हमारे शरीर के अनेक अंगों की क्रियाओं का नियंत्रण तथा नियमन करता है। ये हमारी अनैच्छिक पेशियों से क्रिया करवाती है। त्वचीय तंत्रिकाओं से मिलकर ये त्वचा की अनैच्छिक पेशियों से क्रिया करवाती है। त्वचा स्थित रक्त वाहिकाएँ इनकी सक्रियता से ही संकुचित होती हैं और हृदय, मस्तिष्क तथा पेशियों को अधिक रक्त मिलता है, परिणामस्वरूप रक्त का दाब बढ़ता है। स्वेद ग्रंथियों में अधिक स्वेद बनता है। यह उदर के भीतर वाले अंगों में आंतों की गति को नियंत्रित करता है। इसकी क्रिया के कारण ही हृदय की गति बढ़ जाती है। यकृत में ग्लायकोजन बनता है, मूत्राशय की दीवारें ढीली पड़ जाती है तथा संवरणी पेशी संकुचित होती है, श्वसन दर बढ़ जाती है तथा पाचक क्षेत्र की चरता और स्राव घट जाता है।

हमारे दोनों गुर्दों के ऊपर टोपी के समान दो ग्रंथियाँ उपस्थित होती हैं, जिन्हें हम अधिवृक्क ग्रंथि कहते हैं। इन ग्रंथियों से 'एड्रिनेलिन' नामक हार्मोन का स्राव होता है। यह स्राव हमारी अनुकम्पी तंत्रिका की क्रिया के फलस्वरूप ही बनता है। यह हार्मोन हमारे शरीर के ताप को नियंत्रित तथा नियमित करता है। इस रसायन के साथ मिलकर सहायक तंतुओं की क्रिया यकृत पर होती है, जिससे रक्त में ग्लूकोज की मात्रा बढ़ जाती है। इसका प्रभाव रक्त वाहिनियों पर पड़ता है। जब ऊतकों में जल की कमी होती है तब रक्त से जल ऊतकों में चला जाता है और जब ऊतकों में जल की मात्रा अधिक होती है, तब जल ऊतकों से रक्त में चला जाता है। इस प्रकार यह रसायन रक्त-वाहिनियों के भीतर रक्त तथा उनके चारों ओर ऊतकों में उपस्थित जल की मात्रा को नियंत्रित तथा नियमित करता है। आवश्यकता पड़ने पर शरीर में शक्ति आ जाती है। यह शक्ति, यह रसायन अनुकम्पी तंत्रिका तंत्र की क्रिया का ही परिणाम होता है। हमारे शरीर में होने वाली Fight/Flight क्रिया को करवाने का कार्य अनुकम्पी तंत्रिका तंत्र ही करवाता है। जब हमारे शरीर पर आक्रमण

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

होता है तब हम अपने आपको उससे लड़ने के लिए तैयार कर लेते हैं। इस स्थिति में शरीर की पेशियाँ तन जाती हैं, रक्त संचार बढ़ जाता है, मुख लाल हो जाता है, त्वचा में रोमहर्ष हो जाता है और नथुने फूल जाते हैं आदि कार्य अनुकम्पी तंत्रिका तंत्र की सक्रियता का ही परिणाम होता है।

परानुकम्पी तंत्रिका तंत्र हमारे शरीर के विभिन्न अंगों की कार्य करने की बढ़ी हुई दर को सामान्य करने में सहायक होता है। संरचना के अनुसार विभिन्न भागों से निकलने वाले तंतु अलग-अलग अंगों को प्रभावित करते हैं, जैसे—इसके ऊर्ध्व भाग के तंतु जब उत्तेजित होते हैं तब नेत्र का तारा संकुचित हो जाता है। कर्णमूल जिह्वाधर तथा अधोह्नवीय ग्रंथियों के स्राव कम हो जाते हैं, जिससे ये स्थान सूखे लगने लगते हैं। आमाशय आंत तथा अग्नाशय के स्राव बढ़ जाते हैं। इसी प्रकार त्रिक से निकलने वाले तंतु सक्रिय होकर मलाशय, गुदा, त्रिक से निकलने वाले तंतु सक्रिय होकर मलाशय, गुदा, मुत्राशय आदि को संकुचित करते हैं। ऐच्छिक पशियों के संकुचन के लिए जिम्मेदार रसायन ऐसिटिलकोलीन (Acetylcholine) का उत्पादन परानुकम्पी तंत्रिका तंत्र के द्वारा ही होता है। तंत्रिका कोशिकाओं और अक्ष तंतु के संगम स्थानों के द्वारा जो उत्तेजना एक ओर से दूसरी ओर जाती है, वह एसिटिलकोलीन के ही कारण होता है। नेत्र की परितारिका, लार ग्रंथियाँ, आमाशय, आंतों, मूत्राशय आदि में जाने वाले परानुकम्पी तंतु इस रासायनिक पदार्थ को उत्पन्न करते हैं।

शरीर के विभिन्न भागों पर अनुकम्पी और परानुकमपी तंत्रों के प्रभाव को निम्न सारणी में तुलनात्मक रूप से दिखाया गया है—

शरीर के अंग	अनुकम्पी का प्रभाव	परानुकम्पी का प्रभाव
ह्रदय	कार्य दर को बढ़ाता है	कार्य गति को कम करता है
आहारनाल (आंत्र)	गति को शिथिल करना	गति को तीव्र करना
आँखें (परितारिका)	प्रसारित करना	प्रकुंचित करना
पाचक क्षेत्र	चरता और स्राव घटाना	चरता और स्राव बढ़ाना
त्वचा तथा उदर गुहा की रक्त प्रणाली	संकुचित करना	प्रसारित करना
पेशियों की रक्त-प्रणाली	प्रसारित करना	संकुचित करना

7.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

निबंधात्मक प्रश्न

1. 'स्वचालित तंत्रिका तंत्र' किसे कहते हैं? संक्षेप में वर्णन करें।
2. परानुकंपी तंत्रिका तंत्र का वर्णन करते हुए शरीर में उसके महत्त्व को स्पष्ट करें।
3. अनुकंपी तंत्र का वर्णन करते हुए उसके कार्यों का विवरण दें।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. अनुकम्पी एवं परानुकम्पी की क्रियाओं में कोई दो अन्तर बताइये।
2. अनुकम्पी तंत्रिकाओं द्वारा निर्मित तीन जालिकाओं का विवरण दीजिए।

बहुवैकल्पिक प्रश्न

1. स्वायत्तशासी तंत्रिका तंत्र के भाग होते हैं:—

   (क) तीन (ख) चार (ग) पांच (घ) दो

2. परानुकम्पी तंत्रिकाएं ह्रदय गति को बढ़ाती हैं:—

   (क) हां (ख) नहीं (ग) हां और नहीं दोनों (घ) न बढ़ाती है न घटाती है

सन्दर्भ ग्रंथ

1. शरीर क्रिया विज्ञान—कान्ति पाण्डेय, प्रमिला वर्मा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई-8 : स्वायत्तशासी तंत्रिका तंत्र एवं तनाव; तनाव-प्रबन्धन में प्रेक्षाध्यान की भूमिका

संरचना

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 स्वायत्तशासी तंत्रिका तंत्र और तनाव

8.2.1 तनाव से गड़बड़ी

8.2.2 तनाव के कारण

8.2.3 तनाव से बचने का उपाय

8.2.4 तनाव मुक्ति क्या है?

8.3 तनाव स्वनियंत्रित तंत्रिका तंत्र और प्रेक्षाध्यान

8.4 अभ्यास प्रश्नावली

8.0 उद्देश्य

1. स्वायत्तशासी तंत्रिका तन्त्र और तनाव के सम्बन्ध को जान सकेंगे।
2. तनाव क्या है?
3. अनुकम्पी की उत्तेजना से शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है?
4. परानुकम्पी के प्रभाव से शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है?
5. तनाव के क्या-क्या कारण हो सकते हैं?
6. क्या हम तनाव से मुक्ति पा सकते हैं?
7. क्या तनाव दूर करने की कायोत्सर्ग एक सक्षम पद्धति है।

8.1 प्रस्तावना

स्वायत्तशासी तंत्रिका तंत्र अनैच्छिक और स्वतः संचालित तंत्र के रूप में शरीर के आन्तरिक एवं महत्त्वपूर्ण अंगों की क्रियाओं को नियन्त्रित करता है। आँखों के तारे की साइज में परिवर्तन, दृष्टि को फोकस करना, रक्तवाहिकाओं की दीवार का संकुचन या फैलना, हृदय गति, आँतों की गति, अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का स्राव आदि अनेक गतिविधियों का नियन्त्रण एवं नियोजन स्वायत्तशासी तंत्रिका तंत्र के द्वारा ही होता है। ये सारी क्रियायें स्वतः संचालित होती रहती हैं। इन पर हमारी इच्छा का कोई नियन्त्रण नहीं होता। इस तंत्र की तंत्रिकाएँ क्रियावाही (मोटर) प्रकृति की होती हैं। ये तंत्रिकाएँ केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र (मस्तिष्क और सुषुम्ना) से संदेश और आवेग शरीर के विभिन्न अंगों को केवल ले जाती हैं इसीलिए इन्हें विसरल इफरेन्ट फाइबर्स (Visceral Efferent Fibers) कहा जाता है। उन सभी अंगों को जिन्हें ये तंत्रिकाएँ संदेश लेकर जाती हैं प्रभावक अंग (Visceral Efferctors, विसरल इफेक्टर्स) कहते हैं।

8.2 स्वायत्तशासी तंत्रिका तंत्र और तनाव

सारे आन्तरिक प्रभावक अंगों (Visceral Effectors) में दोनों प्रकार की तंत्रिकाएँ पाई जाती हैं—1. वे जो अनकुम्पी अनुभाग (Sympathetic Division) से आती हैं तथा 2. वे जो परानुकम्पी अनुभाग (Parasympathetic Division) से आती हैं। इनमें से एक अनुभाग से प्राप्त संकेतों के आधार पर अंगों की सक्रियता (उत्तेजना) बढ़ती है जबकि दूसरे अनुभाग से प्राप्त संकेत उन्ही अंगों की सक्रियता को घटाते हैं। उत्तेजना बढ़ाने वाला अनुभाग अनुकम्पी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

भी हो सकता है और परानुकम्पी भी। यह अंग विशेष पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए अनुकम्पी हृदय गति को बढ़ाता है जबकि परानुकमी इसे घटाता है। दूसरी तरफ परानुकम्पी पाचन गतिविधियों को बढ़ाता है जबकि अनुकम्पी इसे घटाने का काम करता है। इन दोनों अनुभागों की क्रियाओं का सन्तुलन हमारे शरीर में साम्यावस्था (Homeostasis) बनाने में उल्लेखनीय भूमिका अदा करता है।

विविध प्रकार की शारीरिक क्रियाओं का विश्लेषण किया जाय तो यह तथ्य सामने आता है कि अनुकम्पी अनुभाग उन प्रक्रियाओं को नियोजित करने में सहयोग करता है जिनका सम्बन्ध ऊर्जा के खर्च से होता है। वह भी उस स्थिति में जब व्यक्ति शारीरिक अथवा मानसिक भावावेश के कारण तनाव में होता है। जब शरीर साम्यावस्था की स्थिति में होता है उस समय अनुकम्पी भाग का कार्य परानुकम्पी अनुभाग के कार्यों को इस रूप में प्रभावित करने का होता है जिससे ऊर्जा उत्पादन की सामान्य प्रक्रिया चलती रहे और शरीर को सामान्य काम काज के लिए आवश्यक ऊर्जा मिलती रहे। अत्याधिक तनाव की स्थिति में अनुकम्पी अनुभाग परानुकम्पी के कार्यों की अपेक्षा अधिक तीव्र और अधिक क्षमता से कार्य करने लग जाता है और आन्तरिक अंगों की क्रियाशीलता कई गुना बढ़ जाती है। सम्भवत: इसी कारण व्यक्ति आवेश की उच्चतम स्थिति में ऐसे आश्चर्यजनक काम कर डालते हैं जो सामान्य अवस्था में सम्भव नहीं होते। भय परानुकम्पी अनुभाग को इस प्रकार उत्तेजित कर देता है जिससे अनेक प्रकार की शारीरिक और भावात्मक क्रियाएँ सम्पादित हो जाया करती हैं।

परानुकम्पी की उत्तेजना और उसकी सक्रियता के परिणाम स्वरूप आन्तरिक शारीरिक क्रियाओं की एक शृंखला सामने आती है जिसे सामूहिक रूप से फ्लाइट या फाइट उद्दीपन (करो या मरो) कहा जाता है। इस उद्दीपन की अवस्था में निम्नांकित क्रियाएँ होती देखी जाती हैं—

1. आँखों की पुतलियाँ फैल जाती हैं।
2. हृदय गति और उसके संकुचन की तीव्रता बढ़ जाती है।
3. रक्तचाप बढ़ जाता है
4. कुछ रक्त वाहिकाओं (त्वचा और आन्तरिक अंगों) की दीवारों में संकुचन हो जाता है।
5. शेष रक्त वाहिकाओं की दीवार फैल जाती है जिसके कारण उनमें रक्त प्रवाह तेज हो जाता है इसके परिणाम स्वरूप कंकाल पेशियों, हृदय की पेशियों तथा फेफड़ों में रक्त प्रवाह अधिक हो जाता है क्योंकि ये अंग ही मूल रूप से किसी सम्भावित खतरे से निपटने में अहम् भूमिका निभाते हैं।
6. श्वास तेज और गहरी हो जाती है, श्वसनिकाएँ फैलकर चौड़ी हो जाती हैं जिससे प्रत्येक श्वास के साथ अधिक से अधिक मात्रा में वायु फेफड़ों में आ जा सके।
7. शरीर में ऊर्जा की खपत अत्यधिक बढ़ जाने के कारण यकृत में संचित ग्लाइकोजन ग्लूकोज के रुप में परिवर्तित होकर रक्त प्रवाह में आ जाता है जिससे रक्त में ग्लूकोज (शुगर) की मात्रा बढ़ जाती है।
8. एड्रिनल ग्रन्थि से एपीनेफ्रीन और नॉरएपीनेफ्रीन हार्मोनों का स्राव तेज हो जाता है जिसके कारण अनुकम्पी तंत्र के द्वारा बढ़ाई गई उत्तेजना में पुनर्वृद्धि हो जाती है तथा वह उत्तेजना और मजबूत होती जाती है।
9. वे क्रियाऐं दब जाती हैं जो तनाव की स्थिति से निपटने में सहायक नहीं होती। उदाहरण के लिए आहारनाल की पेशियों के क्रमांकुचन की गति कम हो जाती है और पाचक रसों का स्राव या तो अत्यन्त कम हो जाता है या फिर बिल्कुल बन्द हो जाता है।

ये सारी परिस्थितियाँ किसी उत्तेजना विशेष के फलस्वरूप उत्पन्न होती हैं। यदि दैनिक जीवन में दैनिक परिस्थितियों के चलते इस प्रकार की उत्तेजनाएँ बार-बार मिलती रहें तो इन परिवर्तनों के कारण दबाव की दशा निर्मित होती है जिसे तनाव या Stress कहते हैं। यह स्थिति शरीर के लिए संरचनात्मक एवं क्रियात्मक दोनों ही रूपों में घातक होती हैं। स्वायत्तशासी तंत्रिका तंत्र ही इनका नियोजक और नियन्त्रक होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

8.2.1 तनाव से गड़बड़ी

मनुष्य-सहित सभी प्राणियों में एक आन्तरिक तंत्र विद्यमान होता है और इसकी प्रतिक्रिया, जो प्राणी को संकट-स्थिति का मुकाबला करने या उससे भगाने के लिए तैयार करती है, अनैच्छिक रूप से (स्वत:) घटित होती है। जब संकट-स्थितियाँ बार-बार आती हैं, तब दबाब तंत्र बार-बार सक्रिय होता है। यदि ऊपर वर्णित शारीरिक स्थिति लम्बे समय तक बनी रहे या उसका बार-बार पुनरावर्तन होता रहे, तो गम्भीर गड़बड़ी पैदा हो सकती है। इस प्रकार यदि रक्तचाप लगातार ऊंचा बना रहे और रक्तवाहिनियों की संकुचित स्थिति लगातार बनी रहे, तो उसके परिणाम हो सकते हैं— दिल का दौरा या रक्ताघात (मस्तिष्क की रक्त-वाहिनी का फट जाना)। यदि आमाशय आदि पाचन-अवयवों को मिलने वाली रक्त की मात्रा लगातार लम्बे समय तक क्षीण रहे, तो पाचन-क्रिया में गड़बड़ी हो सकती है। यदि श्वास की गति लम्बे समय तक लगातार तेज बनी रहे, तो उसका परिणाम दमा आदि श्वास की बीमारियों के रूप में हो सकता है। मांसपेशियों के लम्बे समय तक लगातार तनाव से सिर, पीठ, गर्दन और कंधे में दर्द और पीड़ा पैदा हो सकती है। इन गड़बड़ियों के अलावा, निरन्तर तनाव से मानसिक आतंक की भावना पैदा हो सकती है, जो अकारण भय के रूप में होगी। यह न केवल भयावह होगी, अपितु मनुष्य को बिल्कुल हताश बनाने वाली सिद्ध हो सकती है। इसका कारण यह है कि लगातार दबाब की स्थिति रहने पर ग्रन्थि-तंत्र पहले गड़बड़ा जाता है और बाद में समूचा कार्य करना ही बंद कर देता है। एड्रीनलीन का स्राव बंद हो जाए, तो हृदय की गति मंद हो जाएगी, रक्तवाहिनियाँ शिथिल हो जाएंगी तथा मस्तिष्क को पहुंचने वाला रक्त बंद हो जाएगा, जिससे बेहोशी आ सकती है। इस बात को प्रमाणित करने के लिए अब पर्याप्त प्रमाण प्राप्त हो गये हैं कि अनेक प्रकार के रोगों को पैदा करने में तनाव काफी बड़ा निमित्त बनता है। यदि हम तनाव के दुष्परिणामों से बचना चाहते हैं, तो हमें ऐसा उपाय ढूंढ़ना होगा, जिससे परानुकम्पी संस्थान अपना कर्त्तव्य क्षमतापूर्वक निभा सके अर्थात् बिगड़े हुए संतुलन को बनाकर सामंजस्य को पुनः प्रस्थापित कर सके।

8.2.2 तनाव के कारण

ऊपर की चर्चा से ऐसा निष्कर्ष निकालना ठीक नहीं होगा कि तनाव एकान्तत: हानिकारक ही है। कुछ होने के लिए या उपलब्धी के लिए कुछ मात्रा में तनाव आवश्यक भी है। जो हानि होती है, कार्य में बाधा आती है और थकावट या बीमारियाँ पैदा होती हैं, वे तनाव की निरन्तरता के कारण तथा अत्यधिक मात्रा के कारण है। दीर्घकालीन तनाव या उसकी हानिकारक अति मात्रा के उत्पत्ति के कारणों में एक कारण है— व्यक्ति की जीवन-शैली में अचानक घटित होने वाला परिवर्तन। डॉ. होम्स (Holmes) और डॉ. आर. राहे (Rahe) ने जीवन-शैली के परिवर्तनों का अंकीकरण किया है।

उनके द्वारा बनाई गयी सूची में दिये गये कुछेक परिवर्तन एवं उनके अंक इस प्रकार हैं—

क्र.सं.	घटना	अंक
1.	दम्पत्ति में से किसी एक की मृत्यु	100
2.	तलाक	73
3.	चोट, बीमारी	53
4.	विवाह	50
5.	कार्य से निष्कासन	47
6.	सेवा-निवृत्ति	45
7.	लैंगिक समस्याएं	39
8.	कार्य (व्यवसाय) में परिवर्तन	29
9.	जीवन की स्थितियों में परिवर्तन	25
8.	सोने या आहार सम्बंधी आदतों में परिवर्तन	20

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

यह सूची अपने आप में पूर्ण नहीं है। इसमें दी गई घटनाएँ और उनके अंक भी सभी पर समान रूप से लागू नहीं होते, फिर भी यदि किसी भी व्यक्ति को किन्हीं घटनाओं से 300 अंक प्राप्त होते हैं, तो उसे भयंकर बीमारी की संभावना हो जाती है। 100 से ऊपर अंक आ जाएं, तब उपचार के उपायों का सेवन आवश्यक हो जाता है। यह स्पष्ट है कि एक ही परिवर्तन की घटना को झेलना अधिक सरल होगा, किन्तु जीवन इतना सरल नहीं है। व्यक्ति को अनेक परिवर्तनों का एक साथ सामना करना पड़ता है, वैसी स्थिति में कायोत्सर्ग आदि उपचारात्मक उपायों का सेवन अपेक्षित है।

8.2.3 तनाव से बचने का उपाय

आधुनिक औषध-विज्ञान द्वारा प्रदत्त प्रशामक (ट्रेन्क्वीलाइज्र्स) गोलियाँ केवल अस्थाई आराम का आभास कराती हैं, पर लम्बे काल में गोलियाँ स्वयं बीमारी से अधिक खतरनाक बन जाती हैं। तब प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या हमारी वर्तमान युगीन परिस्थितियाँ और वातावरण के कारण विनाश तक पहुंचना ही हमारे भाग्य में लिखा है या ऐसा कोई रास्ता भी है जिसके माध्यम से हम अपने आप को कम से कम उस रूप में परिस्थिति के अनुकूल बना सकते हैं, जिससे कि इस दैनिक दबाव के हानिकारक प्रभावों से बच जाएँ?

सौभाग्यवश हमारे भीतर ऐसी सुरक्षात्मक प्रणाली है, जिसे सक्रिय बनाने पर उस शारीरिक अवस्था का निर्माण किया जाता है, जो 'लड़ो या भागो' वाली प्रतिक्रिया से नितांत उल्टी स्थिति का सृजन कर सकती है। नोबेल-पुरस्कार विजेता स्वीट्जरलैंड के सुप्रसिद्ध शरीर-वैज्ञानिक डॉ. वालटर ने इस प्रणाली को "ट्रोपोट्रोफिक प्रतिक्रिया" की प्रणाली कहा है और उसे एक सुरक्षात्मक प्रणाली के रुप में निरुपित करते हुए बताया है कि इससे अधिक दबाव के द्वारा उत्पादित प्रतिक्रियात्मक प्रक्रिया की प्रतिरोधी क्रिया की जा सकती है।

डॉ. हर्बर्ट बेन्शन, एम.डी. ने इसे 'तनाव-मुक्ति-प्रक्रिया' कहा है। हम अपने आपको इस प्रक्रिया का प्रशिक्षण दे सकते हैं और स्वयं-सूचन (auto-suggestion) की तकनीक द्वारा अपनी आंतरिक सुरक्षात्मक प्रणाली को सक्रिय कर सकते हैं तथा तनाव द्वारा निष्पन्न स्थिति को दूर करने में सफलता प्राप्त कर सकते हैं, एड्रीनल के अतिरिक्त स्रावों के उत्पादन में कमी कर सकते हैं और अनुकम्पी संस्थान के दुष्प्रभावों को परानुकम्पी की सक्रियता द्वारा समाप्त कर सकते हैं, अन्ततोगत्वा मांसपेशियाँ शिथिल और तनाव-मुक्त बनेंगी और उदरीय कड़ापन समाप्त हो जाएगा। शिथिलीकरण (कायोत्सर्ग) का नियमित अभ्यास वर्तमान युगीन अनेक कष्टदायक बीमारियों से बचने के लिए रामबाण उपाय है।

8.2.4 तनाव-मुक्ति क्या है?

तनाव-मुक्ति की साधना (कायोत्सर्ग का प्रयोग) तनाव को समाप्त करने का एकदम सीधा और निर्दोश तरीका है। तनाव-मुक्ति के बिना व्यक्ति न तो शांति प्राप्त कर सकता है, न स्वास्थ्य और न सुख, फिर चाहे व्यक्ति के पास सुखी होने के लिए कितने ही साधन क्यों न हों? यदि कोई भी व्यक्ति इस साधना को सीख लेता है और प्रतिदिन आधा या पौन घंटा नियमित उसका अभ्यास करता है तो किसी भी परिस्थिति में न केवल तनाव-मुक्त और अनुद्विग्न रह सकता है, अपितु अपनी कार्यक्षमता और गुणवत्ता को बढ़ा सकता है।

कायोत्सर्ग की साधना का सही मूल्यांकन करने के लिए हमें मांसपेशियों की कार्य-पद्धति की जानकारी होनी चाहिए। हमारी मांसपेशियाँ संबंधित स्नायु से उत्तेजना मिलते ही विद्युत वेग से संकुचित होती हैं। हमारी कंकाली मांसपेशियों के कारण ही हम इच्छानुसार हलन-चलन कर सकते हैं। हलन-चलन की क्रिया को समझने के लिए मांसपेशियों को हम विद्युत्-चुम्बक (electro magnet) के साथ उपमित कर सकते हैं और जो स्नायु (या नाड़ी) उत्तेजित करता है, वह उस विद्युत् के तार के समान है, जो उसको मस्तिष्क से जोड़ता है।

नींद के दौरान स्नायुओं में सामान्य रुप से विद्युत् प्रवाह बंद हो जाता है और विद्युत्-प्रवाह प्राय:-प्राय: चुम्बकत्व रहित हो जाता है। केवल कुछ सुरक्षा और जीवन टिकाने वाली क्रियाओं में प्रवृत मांसपेशियों को छोड़कर शेष सारी मांसपेशियाँ नींद में शिथिल हो जाती हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जब कोई व्यक्ति विश्राम की मुद्रा में होता है, तब भी वस्तुओं में प्रवाहित होने वाला विद्युत्-प्रवाह बहुत मन्द-सा होता है। इससे मांसपेशियों का चुम्बकीयकरण भी मन्द होता है और इसलिए वे शांत-शिथिल पड़ी रहती हैं।

जब-जब व्यक्ति किसी भी शारीरिक (मानसिक या वाचिक) क्रिया में प्रवृत होता है, तब-तब मस्तिष्क के आदेशानुसार नाड़ियों में विद्युत-प्रवाह को तीव्र कर दिया जाता है, जो विद्युत्-चुम्बकों (मांसपेशियों) को सक्रिय बना देता है, जिससे मांसपेशियाँ संकुचित की जा सकती हैं। कितने सूक्ष्म क्रियात्मक स्नायुओं (मोटर नर्व्ज) को गति देना है, इसका आधार किए जाने वाले प्रयत्न की तीव्रता पर निर्भर होता है।

नींद, विश्राम और क्रियात्मकता इन तीनों स्थितियों में से व्यक्ति दिनभर में कितनी ही बार गुजरता रहता है। पर इन तीन के अतिरिक्त एक चौथी स्थिति और है, जो असामान्य होने पर भी कुछ व्यक्तियों के दैनिक जीवन में बार-बार घटित होती है और वह स्थिति है— अतितनाव की। निरन्तर कसे हुए जबड़े, तनी हुई भृकुटियाँ और आमाशय की मांसपेशियों का कड़ापन; ये इस प्रकार की स्थिति के कुछ प्रत्यक्ष चिह्न हैं इस स्थिति में हमारे शरीरस्थ विद्युत्-चुम्बकों का तीव्र विद्युत् प्रवाह के कारण अति-चुम्बकीकरण (over-magnetization) हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप हमारी मांसपेशियों के दल एक स्थायी संकुचन की स्थिति में बने रहते हैं; जो कि बहुत बार अनावश्यक होता है। इसके कारण हमारी स्नायुविक और मांसपेशिय ऊर्जा का एक बहुत बड़ा हिस्सा व्यर्थ चला जाता है, क्योंकि इस स्थिति में विद्युत् का निरन्तर व्यय होता है। ऊर्जा का व्यय कितनी मात्रा में होगा, इस बात का आधार क्रियावाही मांसपेशियों की संख्या पर है, न कि उनकी लंबाई-चौड़ाई पर या उनकी शक्ति पर। जैसे— चेहरे की एक छोटी सी मांसपेशी को संकुचित करने में उतनी ही स्नायुविक ऊर्जा व्यय होती है, जितनी कि पैर की एक बड़ी मांसपेशी को सक्रिय करने में होती है। इस प्रकार ऊर्जा का होने वाला समग्र व्यय क्रियावाही तंतुओं की संख्या और विद्युत्-वाहकों के भीतर चलने वाले विद्युत्-प्रवाह के सामर्थ्य इन दोनों पर निर्भर है। दूसरी विशेष बात यह है कि जहाँ हमारे अन्य ऊतकों में प्रतिदिन लाखों और करोड़ो की संख्या में निकम्मी और मृत कोशिकाओं का स्थान नई स्वस्थ कोशिकाएँ ले लेती हैं, वहाँ स्नायुविक कोशिकाओं को उनके पुरानी या मृत होने पर भी बदला नहीं जा सकता। ज्यों-ज्यों व्यक्ति की आयु बढती है, स्नायुविक कोशिकाओं की संख्या निरन्तर घटती रहती है। यदि किसी भी कारण से हम उन्हे आहत कर देते हैं (उदाहरणार्थ— मानसिक दबाव के रुप में उनसे अधिक कार्य लेने पर ऐसा घटित होता है) तब हम सदा-सदा के लिए उन्हें गंवा देते हैं, जो अपने पीछे अपूरणीय क्षति छोड़ जाती हैं।

संकल्पपूर्वक यदि संपूर्ण शिथिलीकरण को जागरूकता के साथ किया जाए, जिसे कायोत्सर्ग कहा जाता है, तो हम उपरोक्त प्रकार की थकान, क्षति से बच सकते हैं। कायोत्सर्ग के द्वारा मांसपेशी रूपी विद्युत्-चुम्बकों को विद्युत् पहुंचाने वाले तारों (स्नायुओं) का सम्बंध नींद की अपेक्षा और अधिक क्षमतापूर्वक स्थगित किया जा सकता है। इसके विद्युत् के प्रवाह को करीब-करीब शून्य तक पहुंचा कर ऊर्जा के व्यय को न्यूनतम बनाया जा सकता है।

8.2.4.1 कायोत्सर्ग से तनाव-मुक्ति

अनेक घंटों की अव्यवस्थित निद्रा की अपेक्षा आधे घंटे के सधे हुए कायोत्सर्ग से व्यक्ति के तनाव और थकान को अधिक भली-भांति दूर किया जा सकता है। कायोत्सर्ग की साधना हमारी सचेतन इच्छा-शक्ति के शरीर पर पड़ने वाले प्रभाव को व्यक्त करने वाली एक साधना है। हमारी यह इच्छा शक्ति किसी आततायी तानाशाह की तरह हाथ में चाबुक लेकर अपनी शक्ति के बल पर दूसरों को चलाने वाली नहीं, अपितु उस स्नेहमयी माता की तरह है जो ममता और धैर्य के द्वारा अपने जिद्दी बच्चे को ठीक करती है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि कायोत्सर्ग कभी भी बल प्रयोग, तनातनी या हिंसक भावों से नहीं, अपितु केवल विनम्र निवेदन-मूलक स्वत:-सुझावों से ही सधता है।

8.2.4.2 स्वयं-सूचन ही विलक्षण चिकित्सा-शक्ति

प्राचीन युग में मनुष्य और पशु दोनों को ही ऐसी आंतरिक संज्ञाएँ उपलब्ध थीं, जो अपने आप को स्वस्थ रखने के लिए उन्हें क्या करना है, उस दिशा में मार्गदर्शन करती रहती थीं। कालान्तर में पशुओं में संज्ञाएँ बनी रहीं,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

पर मनुष्य ज्यों-ज्यों सभ्यता के क्षेत्र में आगे बढ़ता गया, त्यों-त्यों अपनी इन नैसर्गिक उपलब्धियों से वंचित होता गया। फिर भी किसी तरह लगभग प्रत्येक गांव या समाज में इक्के-दुक्के ऐसे व्यक्ति अवश्य मिलते हैं, जो अपनी ऊपर उल्लिखित संज्ञाजन्य उपलब्धियों को पर्याप्त मात्रा में बचा कर रखते हैं। ऐसे व्यक्तियों को सामान्यत: "उपचारकर्ता" (हीलर) की संज्ञा दी जाती है। छोटे गांवों में "सयाना", "ओझा" "झाड़ा-झपटा करने वाला" आदि व्यक्तियों के रूप में हम आज भी ऐसे "उपचार-कर्ताओं" को देख सकते हैं। ऐसे "महाशयों" को प्राकृतिक उपचार, पथ्य-परहेज, जड़ी-बूंटी, हड्डी बैठाना (पहलवानों द्वारा हड्डी की मरम्मत), साधारण शल्य-क्रिया आदि उपचारों के अलावा आस्था-उपचार (फेथ-हीलिंग) की पद्धति का ज्ञान भी था, जिसके द्वारा वे रोगी को शिथिलीकरण करवा कर या सम्मोहित कर सुझाव/निर्देशों को देते थे। इस प्रकार सुझाव चिकित्सा अथवा स्वयं-सूचना-चिकित्सा, मनोरोग-चिकित्सा प्रणालियों (साइकोथेरेपी) में सर्वाधिक प्राचीन पद्धति है, ऐसा कहा जा सकता है।

प्राचीन काल से अब तक प्राय: सभी संस्कृतियों ने चैतन्य की गहराई के स्तरों की छानबीन करने का प्रयत्न किया है। इस गवेषणा के दौरान जाने-अनजाने शिथिलीकरण/सुझाव-चिकित्सा की यह प्रक्रिया हस्तगत होती रही है। प्रत्येक संस्कृति ने अपनी-अपनी मान्यता के अनुसार चैतन्य की इन शक्तियों की व्याख्या करने की कोशिश की है। इस विषय में शोधकर्ताओं ने बताया है कि सभी आदिम संस्कृतियाँ अपनी धार्मिक प्रवृत्ति के रूप में उपर्युक्त प्रक्रिया को नाना रूपों में प्रयुक्त करती थीं। अब तक के समग्र इतिहास के दौरान यह बात पाई गई कि इन विविध रूपों में एक प्रबल एकरूपता विद्यमान थी तथा उसका बुनियादी तत्त्व था— शिथिलीकरण और सुझाव (या सूचना)। इसी तत्त्व को रोगी के उपचार हेतु काम में लिया जाता था। मिश्र में तीन हजार वर्ष पूर्व ऐसी प्रक्रिया के प्रमाण उपलब्ध होते हैं, जिनका अत्यन्त आधुनिक प्रक्रियाओं के साथ अद्‌भुत सादृश्य सामने आता है।

सभ्यता के विकास के साथ-साथ 'आस्था-उपचार' में लोगों का विश्वास क्रमश: क्षीण होता गया और अन्त में लगभग नष्ट हो गया। 'आस्था-उपचार' की वह पद्धति भी जादू-टोना करने वालों या नीम-हकीमों के हाथों में चली गई। मध्य-युग में 'आस्था-उपचार' की पद्धति पंडित-पुरोहितों के हाथों में चली गई, जो हस्त-स्पर्श, प्रार्थना आदि के माध्यम से श्रद्धालुओं का उपचार करते थे।

आधुनिक युग में फ्रांज मेस्मर नामक आस्ट्रियन डॉक्टर प्रथम व्यक्ति था जिसने व्यवस्थित 'सूचन' के महत्त्व को मान्यता दी और सामूहिक उपचार के लिए उसका प्रयोग किया। इस पद्धति को 'मेस्मरिजम' की संज्ञा दी गई जो विश्व भर में व्याप्त हो गई और आज तक भी एक या दूसरे रूप में प्रचलित ही है। ग्रीक भाषा में नींद के लिए हिप्नोसिस शब्द का उपयोग होता है, जिसका अर्थ सम्मोहन भी होता है। सम्मोहन-विधि के अनेक उपयोग आधुनिक मनोचिकित्सा के कुछ आधारभूत तत्त्व बन गए हैं। इसका एक महत्त्वपूर्ण सैद्धान्तिक परिणाम यह है कि 'प्रस्ताव्यता' (सजेस्टिबिलिटी) हमारे प्रतिदिन के व्यवहार का एक प्राकृतिक, स्वस्थ और सामान्य अंग है, यह बात स्पष्ट हुई। आजकल अधिकाधिक संख्या में सामान्य डॉक्टर एवं मनोचिकित्सक सुझाव-चिकित्सा को काम में लेते हैं।

8.2.4.3 स्वयं-सूचन

स्वयं-सूचन या स्व-सम्मोहन को हम एक विशेष प्रकार की सुझाव-चिकित्सा कह सकते हैं। जिसमें व्यक्ति स्वयं अपने सुझावों के द्वारा अपनी चिकित्सा करता है। कुछ शोधकर्ताओं ने सिद्ध कर दिया है कि सभी प्रकार की 'सुझाव-चिकित्सा' मूलत: स्वयं-सूचन (या स्व-सम्मोहन) पर ही आधारित है इसमें व्यक्ति अपनी क्षमता का विकास कर अपने आप गहरी शिथिलावस्था जैसी स्थिति में जा सकता है और उसके माध्यम से वह अपनी थकान, तनाव और सिरदर्द आदि को कम कर सकता है। स्वयं-सूचना के प्रयोगों को आम जनता तक पहुंचाने का कार्य बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में एमिल कोवे (Emile Coue) नामक फ्रेंच डॉक्टर ने किया। उसके द्वारा प्रदत्त नारे—"दिन दूना और रात चौगुना, बनता मेरा स्वास्थ्य सौ गुना" ने ऐतिहासिक महत्त्व प्राप्त कर लिया।

शिथिलीकरण के प्रयोग के दौरान जो परिवर्तन शरीर में घटित होते हैं, उन्हें मापा जा सकता है। हाल ही में किये गये अनुशीलनों से यह पता चला है कि इन प्रयोगों के परिणाम स्वरूप निम्नलिखित शारीरिक घटकों में हितकर परिवर्तन घटित होते हैं—

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1. रक्त का शर्करा-स्तर।

2. रक्त में श्वेत कणों की संख्या (जो रोग प्रतिरोधात्मक शक्ति के उत्पादक हैं)।

3. विद्युत मस्तिष्कीय लेखांकन (ई.ई.जी.)।

स्वयं-सूचन के प्रयोग की सफलता का आधार है— शरीर की शिथिल या तनाव-मुक्त और स्थिर अवस्था। जितनी अधिक शिथिलता और स्थिरता, उतनी अधिक सफलता।

कायोत्सर्ग के प्रयोग का आधार है— स्वयं-सूचन। इस प्रयोग में शरीर के प्रत्येक अवयव को स्नेहमय स्वत: सुझावों द्वारा क्रमश: शिथिल और तनाव-मुक्त बनाया जाता है।

8.3 तनाव प्रबन्धन में प्रेक्षाध्यान की भूमिका

प्रेक्षाध्यान पद्धति के दो महत्त्वपूर्ण घटक हैं— चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा और कायोत्सर्ग। चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा के अन्तर्गत शरीर के तंत्रिकीय ऊर्जा केन्द्रों एवं अन्त:स्त्रावी ग्रन्थियों की प्रेक्षा करके ऊर्जा नियोजन करते हैं। स्वनियन्त्रित तंत्रिका तंत्र स्वतन्त्र रूप से काम करते हुए भी परोक्ष रूप से केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र के उच्च संस्थानों, मस्तिष्क और सुषुम्ना से निर्देश प्राप्त करता है। सुषुम्ना और मस्तिष्क से निकलने वाले कई न्यूरॉनों के एक्सॉन अनुकम्पी और परानुकम्पी अनुभागों के न्यूरॉनों के एक्सॉन से मिलते हैं। सेरिब्रल कार्टेक्स में स्थित ऑटोनोमिक केन्द्र थैलेमस से जुडें होते हैं जो आगे हाइपोथैलेमस से सम्बन्धित होते हैं इस प्रकार हाइपोथैलेमस के माध्यम से सेरिब्रल कार्टेक्स का सीधा हस्तक्षेप दृष्टिगोचर होता हैं। हाइपोथैलेमस को तंत्रिका तंत्र की उन तंत्रिकाओं से संदेश मिलता है जो भावावेश (Emotional), घ्राण, भूख, तापमान परिवर्तन, संतुलन एवं रक्त में निहित रासायनिक पदार्थों की मात्रा से सम्बन्ध रखती हैं। संरचना की दृष्टि से देखा जाय तो हाइपोथैलेमस अनुकम्पी एवं परानुकम्पी दोनों अनुभागों से सम्बद्ध होता है जिसके कारण तनाव की परिस्थिति में उपरोक्त वर्णित परिवर्तनों में हाइपोथैलेमस का भी योगदान होता है। चैतन्यकेन्द्र प्रेक्षा के क्रम में जब शांति केन्द्र, ज्ञान केन्द्र, ज्योति केन्द्र और दर्शन केन्द्र प्रेक्षा के प्रयोगों का अभ्यास करते हैं तो उसका प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रभाव स्वायत्तशासी तंत्रिका तंत्र पर भी पड़ता है और तनाव प्रबन्धन में उल्लेखनीय सहायता मिलती है।

8.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. तनाव की विस्तृत व्याख्या कीजिए?
2. तनावों के प्रबन्धन में स्वायत्तशासी तंत्रिका तंत्र की भूमिका का वर्णन कीजिए?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. तनाव के सम्भावित कारण क्या हो सकते हैं?
2. कायोत्सर्ग से तनावमुक्ति कैसे संभव है?

बहुवैकल्पिक प्रश्न

1. स्वायत्तशासी तंत्रिका तंत्र के कितने भाग होते हैं?
   क. पाँच ख. सात ग. दो घ. चार
2. तनाव में श्वास की गति हो जाती है—
   क. तेज ख. मंद ग. बहुत मंद घ. अपरिवर्तित

सन्दर्भ पुस्तकें

1. प्रिंसिपिल्स ऑफ एनाटामी एण्ड फिजिओलोजी— जी. जे. टोरटोरा एवं एन. पी. अनगनासटकोस

2. जीवन विज्ञान की रूपरेखा— मुनि धर्मेश कुमार

3. ह्यूमन फिजीऑलोजी— मेकेनिज्म एण्ड डिजीज— गाइटन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–9 : अंत:स्रावी ग्रंथि तंत्र एवं हार्मोन : संगठन एवं उनके महत्त्वपूर्ण कार्य

संरचना

9.0 उद्देश्य
9.1 प्रस्तावना
9.2 ग्रन्थियों के प्रकार
9.3 ग्रंथियों का महत्त्व
9.4 मानव शरीर की प्रमुख अन्त:स्रावी ग्रंथियाँ
9.4.1 पियूष या पिट्यूटरी ग्रंथि
9.4.2 पीनियल ग्रंथि
9.4.3 अवटु ग्रंथियाँ
9.4.4 परावटु ग्रंथियाँ
9.4.5 थाइमस ग्रंथि
9.4.6 एड्रिनल ग्रंथियाँ
9.4.7 जनन ग्रंथियाँ
9.4.8 अग्नाशय
9.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

9.0 उद्देश्य

1. शरीर में कितने प्रकार की ग्रन्थियाँ हैं?
2. अन्त:स्रावी ग्रन्थियाँ कौन–कौन सी हैं?
3. शरीर में ग्रन्थियों एवं हार्मोन्स के महत्त्व को समझ सकेंगे।
4. हॉर्मोन क्या होते हैं?
5. शारीरिक वृद्धि में हॉर्मोन के उपयोग को समझ सकेंगे।
6. क्या मानसिक तथा भावनात्मक क्रियाओं पर हार्मोनों का प्रभाव पड़ता है।
7. पियूष ग्रन्थि को मास्टर ग्रन्थि क्यों कहते हैं?

9.1 प्रस्तावना

मानव शरीर के भीतर लगातार अनेक प्रकार की रासायनिक क्रियाएँ एक साथ चलती रहती हैं और अनेक ग्रंथियाँ विभिन्न रासायनिक यौगिकों का उत्पादन करती रहती हैं। ग्रंथियों से जो रासायनिक स्राव उत्पन्न होते हैं वे किसी विशेष कार्य के लिए ही स्त्रावित होते हैं।

मानव शरीर की क्रियाप्रणाली अनेक तंत्रों द्वारा संपादित होती है। इन्हीं तंत्रों में एक महत्त्वपूर्ण तंत्र है– ग्रंथितंत्र। यह तंत्र विशेष प्रकार के स्राव स्रावित करता है जिन्हें हार्मोन कहते हैं। ये हार्मोन शरीर में अनेक महत्त्वपूर्ण कार्यों हेतु जिम्मेदार हैं। अत: शरीर एवं उसकी गतिविधियों को विकसित, संचालित एवं संतुलित रखने में इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। ग्रंथि का अर्थ है– गांठ। मानव शरीर में दो प्रकार की ग्रंथियाँ होती हैं– नलिकायुक्त तथा नलिकामुक्त। नलिका मुक्त अथवा नलिकाविहीन ग्रंथियों को बहिस्रावी ग्रंथियाँ कहते हैं। इन ग्रंथियों के चारों ओर घने छायादार वृक्ष की भांति रक्त केशिकाओं का जाल बिछा रहता है। इन्हीं के माध्यम से इनके स्राव सीधे रक्त में पहुंचते हैं। यहीं से स्राव रक्त परिसंचरण के माध्यम से अंग विशेष में जाकर अपना कार्य करते हैं। ये ग्रंथियाँ हैं– लार ग्रंथियाँ, अश्रु ग्रंथियाँ, यकृत आदि। अन्त:स्रावी ग्रंथियाँ वे ग्रंथियाँ हैं जिनका स्राव नलिकाओं के माध्यम से सीधे रक्त में पहुंचाया जाता है। रक्तपरिसंचरण के माध्यम से ये स्राव तत्संबंधी अंगों को प्रभावित करते हैं। इसमें प्रमुख हैं– पीनियल, पिट्यूटरी आदि।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

9.2 हार्मोन

ग्रंथियों से निकलने वाले स्राव को हार्मोन कहते हैं। हार्मोन रासायनिक यौगिक होते हैं। अत: इन्हें रासायनिक नियामक (Chemical Co-ordinators) भी कहा जाता है। कुछ हार्मोन तंत्रिकाओं के साथ मिलकर शरीर की अधिकांश क्रियाओं का नियमन करते हैं, इसलिए इस प्रकार के नियमन को तंत्रिकीय अन्त:स्रावी नियमन (Heoro-Endocrine Regulation) भी कहते हैं। हार्मोन्स रासायनिक रूप से पेप्टाइड, स्टाराइड्स, अमीन्स एवं अमीनो अम्ल के व्युत्पन्न होते हैं।

9.2.1 हार्मोन्स की विशेषताएँ

हार्मोन्स की निम्न प्रमुख विशेषताएँ हैं–

1. हार्मोन्स अल्प मात्रा में ही स्रावित होते हैं।

2. हार्मोन्स का संश्लेषण एवं संग्रहण अपनी ही ग्रंथियों में होता है।

3. क्रिया के तुरन्त बाद इनकी क्रियाशीलता समाप्त हो जाती है तथा अपवाद स्वरूप पश्च पियूष हार्मोन का संश्लेषण हाइपोथैलेमस तथा संग्रह पश्च पियूष ग्रंथि में होता है।

4. हार्मोन नियमन का कार्य करते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि ग्रंथितंत्र एवं उससे निकलने वाले स्राव अर्थात् हार्मोन शारीरिक विकास एवं संतुलन के लिए आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी हैं। इनका असन्तुलन जहाँ शरीर एवं व्यवहार को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है, वहीं इनका सन्तुलन शरीर एवं व्यवहार को सकारात्मक रूप से प्रभावित करता है। प्रस्तुत पाठ में अन्त:स्रावी ग्रंथितंत्र एवं उसके स्राव अर्थात् हार्मोन्स की विस्तृत चर्चा की जा रही है।

9.3 अन्त:स्रावी ग्रंथियाँ

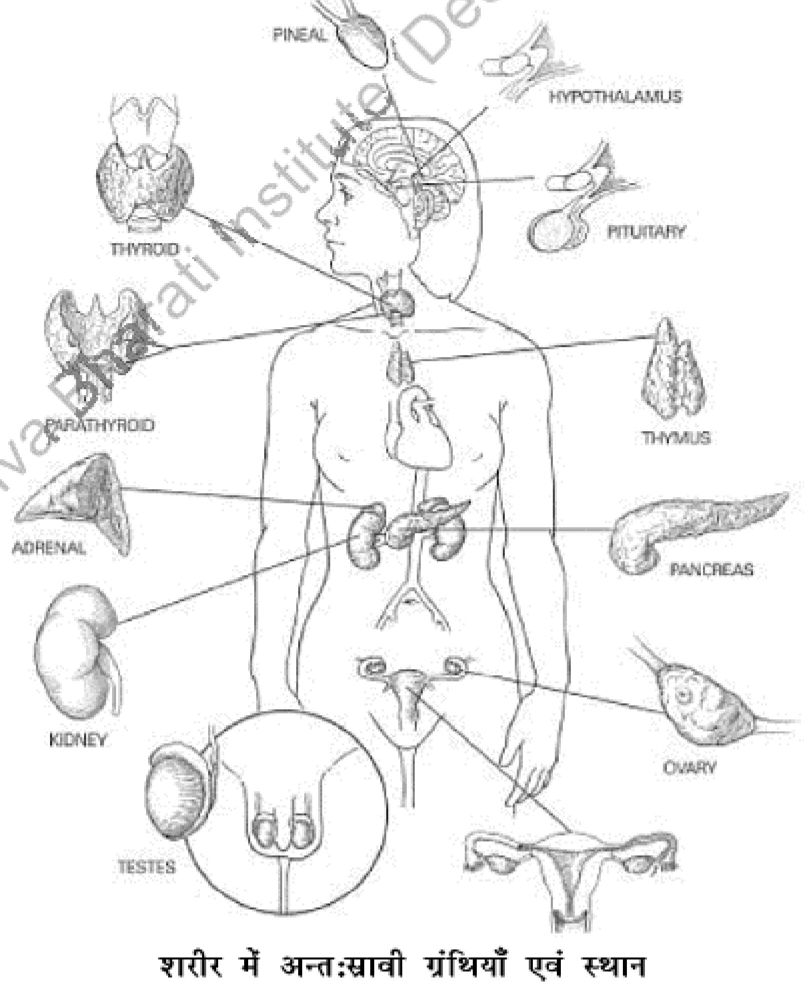

शरीर में अन्त:स्रावी ग्रंथियाँ एवं स्थान

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अन्त:स्रावी ग्रंथियों के प्रकार

अन्त:स्रावी ग्रंथियों के प्रमुख प्रकार निम्न हैं–

9.3.1 पियूष ग्रंथि (Pitutary Gland)

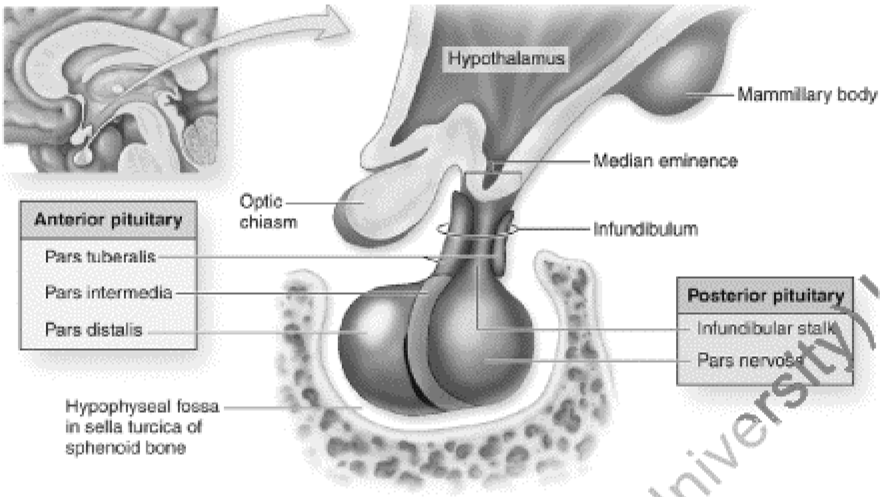

पियूष ग्रंथि को हाइपोफाइसिस सेरिब्री ग्रंथि (Hypophysis Cerebri Gland) भी कहा जाता है। यह ग्रंथि कपाल फर्श पर सेलार्टसिका में स्थित होती है। इसका आकार सेम के बीज जैसा होता है। इसकी आन्तरिक संरचना बहुत जटिल होती है। इसकी लम्बाई 12 मि.मी., चौड़ाई 10 मि.मी. तथा मोटाई 6 मि.मी. होती है। इसका वजन 570 मि. ग्रा. होता है। पियूष ग्रंथि को मास्टर ग्रंथि भी कहा गया है। इसका कारण यह है कि यह ग्रंथि स्वयं शारीरिक क्रियाओं के बावजूद कुछ अन्त:स्रावी ग्रंथियों का नियमन भी करती है। पियूष ग्रंथि शरीर में हार्मोन के सन्तुलन को बनाए रखती है। यह ग्रंथि अन्य अन्त:स्रावी ग्रंथियों की सक्रियता का नियमन करती है। इसी कारण से इसे आर्केस्ट्रा (Orchestra) कहा जाता है। साथ ही हाइपोथेलेमस को अन्त:स्रावी आर्केस्ट्रा की रानी (Queen of Endocrine Orchestra) कहा जाता है।

पियूष ग्रंथि के तीन प्रमुख भाग हैं– 1. अग्र पियूष, 2. मध्य पिण्ड तथा 3. पश्च पियूष।

1. अग्र पियूष– यह सबसे बड़ा पिण्ड होता है। इसकी कोशिकाएँ अण्डाकार अथवा बहुभुजीय होती हैं। इन कोशिकाओं के द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार के हार्मोन्स का स्राव किया जाता है।

अग्र पियूष में मुख्यत: तीन प्रकार की कोशिकाएँ होती हैं–

(i) एसिडोफिलिक कोशिकाएँ (Acidophilic Cells)– ये कोशिकाएँ अम्लीय रंग द्वारा अभिरंजित हो जाती हैं। इन्हीं के द्वारा सोमेटोट्रोफिक हार्मोन तथा प्रोक्टेलिन (STH and Proctalin) का स्राव होता है।

(ii) बेसोफिलिक कोशिकाएँ– ये कोशिकाएँ क्षारीय रंग द्वारा अभिरंजित हो जाती हैं। इन कोशिकाओं के द्वारा ही थाइराइड स्टीम्युलेटिंग हार्मोन (THS), ल्यूटिमाइनिंग हार्मोन्स (Leutimining Harmone) एवं फौलिकिल स्टीम्युलेटिंग हार्मोन (FSH) का स्राव होता है।

(iii) न्यूट्रोफिलिक कोशिकाएँ– ये कोशिकाएँ किसी भी रंग से अभिरंजित नहीं होती हैं। ये कोशिकाएँ प्राय: उदासीन रहती हैं। इनके द्वारा एड्रीनोकार्टिको ट्राफिक हार्मोन (ACTH) तथा एड्रीनल कार्टेक्स स्टीम्यूलेटिंग हार्मोन (ACSH) का स्राव होता है।

अत: इस प्रकार स्पष्ट है कि पियूष ग्रंथि कई प्रकार के स्राव उत्पन्न करती है जो विभिन्न प्रकार की क्रियाओं का संपादन करते हैं। इनकी विस्तृत चर्चा इस प्रकार से है–

(i) वृद्धि हार्मोन या सोमेटोट्रोफिक हार्मोन (Growth Harmone or Somatotrophic Hormone)– वृद्धि हार्मोन का संश्लेषण एडीनोहाइपोफाइसिस के द्वारा किया जाता है। यह हार्मोन अस्थियों, मांसपेशियाँ तथा अन्य अंगों

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

की वृद्धि करने में सहायक होता है। यदि इस हार्मोन के स्रवण में असंतुलन आ जाता है तो शारीरिक संरचना भी असंतुलित हो जाती है। जैसे अधिक स्राव के कारण शारीरिक अंगों का बढ़ना तथा स्राव कम होने पर शरीर की वृद्धि का रुकना आदि दोष पाये जाते हैं जिसके फलस्वरूप व्यक्ति अति भीमकाय या बौना हो जाता है। भीमकाय व्यक्ति का शरीर 7-8 फीट तक लम्बा हो जाता है। इसमें अस्थियाँ मोटी तथा बेशक्त हो जाती हैं। ऐसे व्यक्ति की आधारीय चयापचयीय दर (Basal Metabulic Rate) बढ़ जाती है। पसीने की मात्रा में वृद्धि होती है। ऐसे व्यक्ति ग्लाइकोसूरिया (Glycosuria) एवं हाइपरग्लाइसेमिया (Hyperglycemia) नामक बीमारी से ग्रसित हो जाते हैं। वृद्धि हार्मोन की अति सक्रियता कभी-कभी कुछ ही अंगों पर प्रकट होती है, जैसे— कपाल, जबड़ा या ऊर्ध्वशाखा की लम्बाई बढ़ना। इस स्थिति को एक्रोमिगैली (Acromigaly) कहते हैं।

वृद्धि हार्मोन के अल्प मात्रा में स्रावित होने से बौनेपन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इसमें अस्थियों, मांसपेशियों, ऊतकों आदि का विकास समुचित रूप से नहीं हो पाता है। ऐसे व्यक्ति में यौन संबंधी उत्साह का अभाव रहता है। प्रजनन अंग पूर्ण रूप से विकसित नहीं हो पाते हैं।

(ii) थाइराइड स्टीम्यूलेटिंग हार्मोन (T.S.H.) : इस हार्मोन का संश्लेषण एडीनोहाइपोफाइसिस के द्वारा होता है। इस हार्मोन के द्वारा ही थाइराइड ग्रंथि का विकास और क्रिया प्रभावित होते हैं। थाइराइड ग्रंथि से ही थाइरोक्सिन तथा ट्राइआयोडोथाइरोनिन का स्राव होता है जो पोषण में सहायक बनता है।

(iii) एड्रीनोकोटिको ट्रोफिक हार्मोन (ACTH) : इन हार्मोन्स का स्राव पियूष ग्रंथि के क्रोमोफोब कोशिकाओं के द्वारा किया जाता है। ये स्टीरॉइड (Steroid) की श्रेणी में आते हैं। ये हार्मोन एड्रीनल ग्रंथि के कॉर्टेक्स को उत्तेजित करते हैं जिससे रक्त में कोलेस्ट्रोल तथा स्टीरॉइड का सांद्रण बढ़ जाता है।

(iv) गोनेडोट्रोफिक हार्मोन (GTH) : यह हार्मोन अग्र पियूष द्वारा स्रावित होता है जो ज्ञानेन्द्रियों की वृद्धि के लिए आवश्यक माना जाता है। ये हार्मोन दो प्रकार के होते हैं जो स्त्रियों तथा पुरुषो में पाए जाते हैं, जैसे—

(a) फालिकल स्टीम्यूलेटिंग हार्मोन (FSH) : इनके द्वारा स्त्रियों के अंडाशय में अंडजनन का नियमन होता है। इसी हार्मोन के द्वारा ही ग्राफियन पुटिका की वृद्धि तथा विकास होता है। ग्राफियन पुटिका से इस्ट्रोजन (Oestrogen) हार्मोन स्रावित होता है जिनसे प्रजनन अंगों तथा लैंगिक लक्षणों का नियमन होता है। पुरुषों में यह हार्मोन शुक्रजनन का नियमन करता है जिससे शुक्राणु बनते हैं।

(b) ल्यूटिनाइजिंग हार्मोन (Luteinizing Harmone) : यह हार्मोन जनन क्रिया का नियमन करता है। स्त्रियों में यह कारपस ल्यूटिनम को प्रभावित करता है। कारपस ल्यूटियम से ही प्रोटेस्टोन नामक हार्मोन का स्राव होता है जो समर्थता के विकास के लिए आवश्यक होता है।

(v) ल्यूटिनाजिंग हार्मोन (LH) : यह हार्मोन पुरुष के वृषण को प्रभावित करता है। इस हार्मोन को इण्टरस्टीथियल सेल स्टीम्युलेटिंग हार्मोन (ICSH) कहा जाता है। यह हार्मोन वृषण की लेडिंग कोशिकाओं (Leyding Cells) द्वारा एन्ड्रोजन नामक हार्मोन का स्राव करता है, जो पुरुषों में सहायक-प्रजनन अंगों तथा लैंगिक लक्षणों का नियमन करते हैं।

(vi) लैक्ट्रोट्रोफिक हार्मोन (Lectrotrophic Hormone) : यह हार्मोन शिशु जन्म के पश्चात् माता में दुग्ध का निर्माण करता है। इसी से शिशु का पोषण होता है।

2. मध्य पिण्ड (Intermidiate Lobe) : पियूष ग्रंथि का मध्य भाग ऐडिमोफाइसिस के नाम से जाना जाता है। इसका आकार अत्यन्त छोटा होता है, जो पियूष ग्रंथि के अग्र एवं पश्च भाग के मध्य में स्थित रहता है। इस पिण्ड की कोशिकाओं द्वारा मेलानोफोर स्टीम्युलेटिंग हार्मोन (Melanophore Stimulating Hormone) का स्राव होता है। ये त्वचा में स्थित मेलानोफोर्स के रंग वर्णों की गतिविधियों का नियमन करते हैं।

3. पश्च पियूष ग्रंथि (Porterior Pitutary Gland) : इसे न्यूरोहाइपोफाइसिस भी कहा जाता है। इसकी रचना तंत्रिकीय ऊतकों द्वारा होती है। इसमें पिट्यूसाइट्स नामक कोशिकाएँ एवं न्यूरोसक्रेटरी केन्द्र न्यूरोन्स के अक्ष (Axone)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

स्थित होते हैं। पश्च पियूष से किसी भी प्रकार के हार्मोन का स्राव नहीं होता है वरन् इसमें हाइपोथेलेमस से आये हुए हार्मोन्स का संग्रह तथा मुक्ति (Storage and Release) होती है। इसमें हाइपोफाइसिल पोटेल सिस्टम द्वारा हार्मोन लाए जाते हैं। ये हार्मोन दो प्रकार के होते हैं– वेसोप्रेसिन तथा ऑक्सीटोसीन।

(i) वेसोप्रेसिन (Vasopressin) : इसे एक्टीडाइयूरेटिक हार्मोन भी कहा जाता है। ये पोलीपेप्टाइड प्रकृति के होते हैं। इसके दो प्रमुख कार्य हैं– रक्तचाप को बढ़ाना तथा सोडियम आयन का रिटेंशन (Retention) करना जिससे पेशाब की मात्रा में कमी हो जाती है तथा गुर्दों द्वारा जल के पुन: अवशोषण करने की क्रिया का नियमन होता है।

(ii) ऑक्सीटोसिन (Oxytocin) : इस हार्मोन द्वारा गर्भाशय की मांसपेशियों का संकुचन किया जाता है तथा प्रसव के पश्चात् रक्त स्राव को कम करने में सहायक होता है। यह माता के स्तनों में स्थित दूध को बाहर निकालने की क्रिया को भी उत्तेजित करता है।

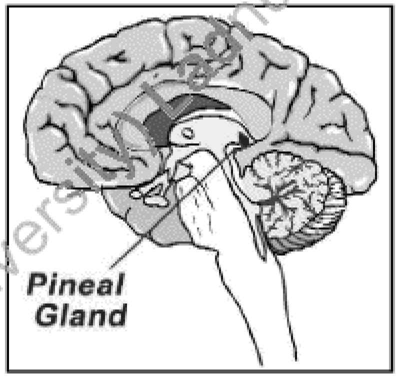

9.3.2 पीनियल ग्रंथि (Penial Gland)

यह ग्रंथि मस्तिष्क के मध्य में स्थित रहती है। इसका आकार गेहूँ के दाने के जैसा होता है। इस ग्रंथि का महत्त्वपूर्ण कार्य है गोनाड्स ग्रंथियों के स्रावों का निरोध करना। अत: शैशवावस्था में यह ग्रंथि कामवृत्ति का नियमन कर उसे यौवन प्राप्ति तक मुक्त रखती है। कुछ ऐसे भी प्रमाण मिले हैं कि इसके हार्मोन पिट्यूटरी के ACTH नामक हार्मोन का निरोध कर अप्रत्यक्ष रूप से एड्रीनल के स्रावों का नियमन करते हैं।

9.3.3 अवटु या थाइराइड ग्रंथि (Thyroid Gland)

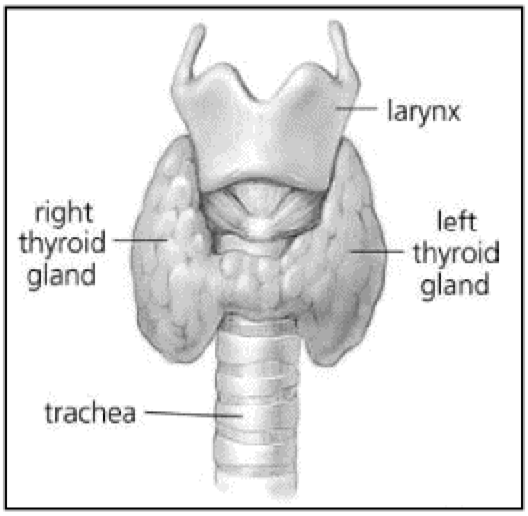

इस ग्रंथि का स्थान गर्दन में स्वर यंत्र तथा श्वास-नली के मध्य में है। यह द्विपिंडकीय ग्रंथि है। ये दोनों पिण्ड आपस में एक पतले सेतु द्वारा जुड़े रहते हैं। इस सेतु को इस्थमस के नाम से जाना जाता है। थाइराइड ग्रंथि का आकार तितलीनुमा होता है। यह ग्रंथि अनेक छोटी-छोटी पुटिकाओं (Folicle Cells) की बनी होती है। इसका भार 20-50 ग्राम होता है। प्रत्येक खण्ड की लम्बाई लगभग 5 से.मी., चौड़ाई 3 से.मी. होती है। इन पुटिकाओं के मध्य रक्त कोशिकाओं का जाल बिछा रहता है। पुटिकाओं के द्वारा लसदार एवं पारदर्शन द्रव्य का स्राव किया जाता है जिसमें थाइराइड हार्मोन्स रहते हैं। पुटिकाओं के मध्य ही सी-कोशिकाएँ भी होती हैं जिनसे कैल्सीटोनिन नामक हार्मोन का स्राव होता है।

थाइराइड हार्मोन चार प्रकार के होते हैं लेकिन केवल थाइरॉक्सिन हार्मोन ही रक्त कोशिकाओं के द्वारा रक्त परिसंचरण में डाला जाता है। यह हार्मोन आयोडीन युक्त प्रोटीन होता है जो शारीरिक तथा मानसिक वृद्धि तथा विकास हेतु आवश्यक होता है।

थाइराइड हार्मोन के कार्य

थाइराइड हार्मोन के निम्न प्रकार के कार्य हैं–

1. यह हार्मोन हृदय गति को तीव्र करता है।
2. शारीरिक एवं मानसिक विकास में वृद्धि करता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

29ण च्बुमतशारीरप्प्के;दा पैक्षन भ्य्रेदकमयंद्रणकमेद्ध सहायकप्वामेतप्मंहै।

4. यह उपापचय क्रियाओं का नियमन करता है।

5. माताओं में दुग्ध वृद्धि में सहायक बनता है।

थाइरोक्सिन हार्मोन के अल्प स्राव के प्रभाव (Hypoactivity of Thyroixin Harmone)

थाइरोक्सिन के अल्प स्राव के निम्न प्रभाव दृष्टिगत होते हैं—

सामान्यतया भोजन से आयोडीन की प्राप्ति होती है। यदि भोजन द्वारा इसकी पूर्ति नहीं होती है अथवा कमी हो जाती है तो थाइरोक्सिन हार्मोन का स्राव भी कम होता जाता है जिससे इस ग्रंथि की कोशिकाएँ बढ़ जाती हैं। फलस्वरूप यह ग्रंथि एक गांठ का रूप ले लेती है तथा गलगण्ड या गोइटर (goitre) नाम से जानी जाती है। थाइरोक्सिन की अल्प मात्रा के निम्न परिणाम दृष्टिगत होते हैं—

1. इसके कम स्राव से बच्चों में क्रीटिनिज्म (Cretinism) नामक रोग हो जाता है जिसके प्रमुख लक्षण हैं—

(i) शारीरिक एवं मानसिक वृद्धि रुक जाती है।

(ii) बच्चों का स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है।

(iii) लम्बाई न बढ़ने से कद छोटा हो जाता है।

2. वयस्कों में इस हार्मोन की कमी से मिक्सिडेया (Myxoedema) नामक रोग हो जाता है जिसके प्रमुख लक्षण हैं—

(i) मांसपेशियाँ काफी दुर्बल हो जाती हैं।

(ii) हृदयगति मंद पड़ जाती है।

(iii) सिर दर्द रहता है।

(iv) बाल झड़ने लगते हैं। बालों की चमक खत्म हो जाती है तथा वे कड़े हो जाते हैं।

(v) शरीर में सुस्ती रहने से जल्दी थकान का अनुभव होता है।

(vi) शरीर का तापक्रम कम हो जाता है जिससे रोगी गर्मी में भी सर्दी का अनुभव करता है।

3. गलगण्ड या घेंघा रोग (Goitre) हो जाता है। यह गले में एक फूली हुई गांठ के सदृश होता है।

थाइरोक्सिन के अति स्राव के प्रभाव (Hyperactivity of Thyroxine Harmone)

थाइरॉक्सीन के अति स्राव से एक्सोप्थैलेमिक गोइटर (Exopthelemic Goitre) नामक रोग हो जाता है। इसे ग्रेवस का रोग (gravc's desease) भी कहा जाता है। इस रोग के निम्न लक्षण प्रकट होते हैं—

1. उपापचय क्रिया में अधिक तीव्रता आती है।

2. हृदय गति तीव्र तथा त्वचा का रंग लाल हो जाता है।

3. शरीर का तापक्रम बढ़ने से अधिक पसीना निकलता है।

4. रोगी बेचैन, चिन्तित एवं चिड़चिड़ा हो जाता है।

5. आँखों के बीच वसा के जमाव के कारण आँख की गोली बड़ी होकर बाहर निकली हुई दिखाई पड़ती है। इस स्थिति को एक्सोपथैलेमस (Exopthalamus) कहा जाता है।

6. नाड़ी की गति तेज होने से रोगी हाँफता है।

7. स्त्रियों में इसके अतिस्राव से रजोधर्म अनियमित एवं पीड़ाकारक होता है।

8. थाइराइड ग्रंथि की सी-कोशिकाओं से स्रावित कैंटसीटोनिन नामक हार्मोन अस्थियों तथा गुर्दों पर क्रिया करता है तथा रक्त में कैल्शियम के स्तर को कम करता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

9.3.4 पशवटु या पैराथाइराइड ग्रंथि

यह ग्रंथि थाइराइड ग्रंथि के पास ही छोटी-छोटी पिण्डिकाओं के रूप में होती है। इसका आकार मटर के दाने के समान होता है। ये संयोजी ऊतकों द्वारा निर्मित होती हैं जो गोलाकार होती हैं। इनकी संख्या चार होती है। इस ग्रंथि में मुख्यतया दो प्रकार की कोशिकाएँ होती हैं जिनमें से एक प्रकार की कोशिकाएँ पैराथारमोन (Paratharmone) का स्राव करती हैं। यह पोली पेप्टाइड श्रेणी का हार्मोन है जो कैल्सीटोनिन (calcitonin) के साथ मिलकर किया करता है। इसके प्रमुख कार्य हैं—

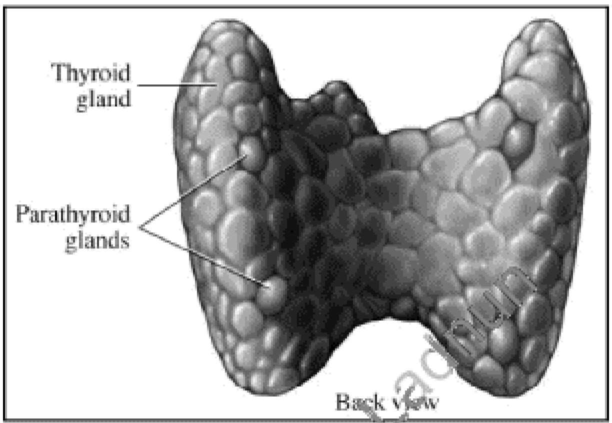

1. शरीर में कैल्शियम तथा फास्फोरस की मात्राओं का नियमन करना।
2. रक्त में कैल्शियम की मात्रा अधिक होने पर उसे अस्थियों तक पहुंचाना।
3. रक्त में कैल्शियम की मात्रा कम होने पर अस्थियों से कैल्शियम लाकर रक्त को प्रदान करना।
4. अस्थियों एवं मांसपेशियों को सुदृढ़ बनाना।
5. रक्त में कैल्शियम आयन की सान्द्रता का नियमन करना।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

पैराथारमोन के अल्प स्राव के प्रभाव (Hypoactivity of Paratharmone)

पैराथारमोन के कम स्राव से टिटैनी नामक रोग हो जाता है जिसके निम्न लक्षण हैं—

1. रक्त में कैल्शियम आयन की मात्रा बढ़ जाती है।
2. मांसपेशियाँ एवं तंत्रिका तंतु अधिक उत्तेजित हो जाते हैं।
3. पूरे शरीर अथवा हाथ-पांव में एंठन होने लगती है।
4. रोगी बेचैन एवं चिड़चिड़ा हो जाता है।

कभी-कभी इस हार्मोन की कमी से स्वर यंत्र की मांसपेशियाँ भी प्रभावित होती हैं जिससे मृत्यु की आशंका हो जाती है। आँखों में कैटेरेक्ट हो जाता है।

पैराथारमोन के अति स्राव के प्रभाव (Effect of Hyper-para-tharmone)

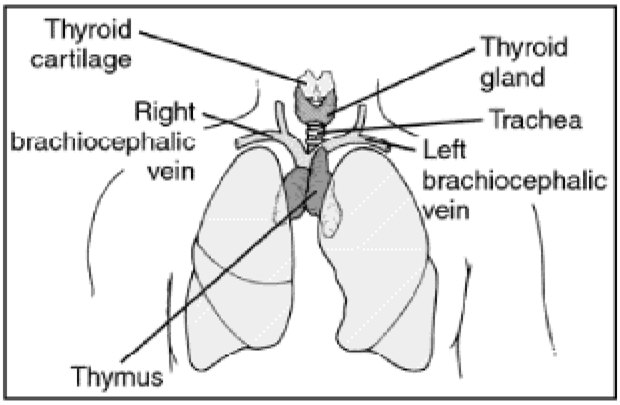

पैराथारमोन के अति स्राव से ग्रंथि में गाठें पड़ जाती हैं जो उस स्थान पर कैल्शियम आयन के अत्यधिक जमाव का परिणाम होती हैं। रक्त में कैल्शियम की मात्रा बढ़ जाती है। गुर्दों में वसा जमा होने से पथरी की आशंका बढ़ जाती है। पथरी होने पर गुर्दे अपना काम करना बंद कर देते हैं। साथ ही गुर्दों में अवरोध पैदा हो जाता है। कोमल ऊतकों में कैल्शियम के जमा होने से वे उत्तक सख्त एवं कड़े हो जाते हैं, माँसपेशियाँ कमजोर हो जाती हैं।

9.3.5 थाइमस ग्रंथि (Thymus Gland)

थाइमस श्वास नली के पास तथा थाइराइड ग्रंथि के नीचे स्थित है। यह ग्रंथि अंशत: अन्त:स्रावी ग्रंथियों से निर्मित होती है। लसिका उत्तक भी इस ग्रंथि के निर्माण में सहयोगी बनते हैं। इस ग्रंथि की पहचान हैसल्स की

कापेटस के द्वारा होती है। इस ग्रंथि के मुख्यतया दो भाग होते हैं—कार्टेक्स तथा मेड्यूला।

थाइमस ग्रंथि के कार्य (Functions of Thymus Gland)

इस ग्रंथि द्वारा निम्न कार्य संपादित होते हैं—

1. लिम्फोसाइट्स का निर्माण करना।
2. यौन ग्रंथियों की वृद्धि तथा विकास करना।
3. अस्थियों में लवणों को जमा करना।

थाइमस ग्रंथि 8-10 वर्ष तक ही बढ़ती है। उम्र के बढ़ने पर यह ग्रंथि स्वत: छोटी हो जाती है तथा अन्तत: लुप्त हो जाती है।

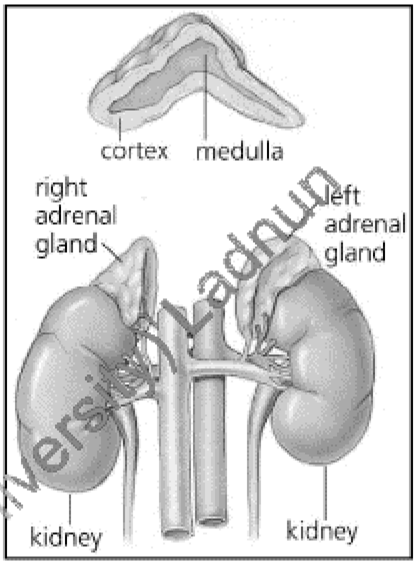

9.3.6 एड्रीनल ग्रंथि या सुपरारीनल (Adrenal Gland or Suprarenal Gland)

एड्रीनल ग्रंथियाँ उदर गुहा में स्थित दोनों गुर्दों के ऊपर चोटी के आकार में स्थित होती हैं। इसीलिए इसे सुपारारीनल ग्रंथि भी कहते हैं। इसकी चौड़ाई 4 से.मी. तथा मोटाई 3 से.मी. होती है। इस ग्रंथि के मुख्य दो भाग हैं—एड्रीनल कार्टेक्स (Adrenal Cortax) तथा एड्रीनल मेड्यूला (Adrenal Medulla)।

एड्रीनल मेड्यूला— इस भाग से तीन प्रकार के हार्मोन्स का स्राव होता है, जैसे— जोना ग्लोमेरुलोसा (Zona-Glomerulosa), जोना फैसीकुलासा (Zona Faciculasa) एवं जोना रेटीकुलाटा (Zona Reiticulata).

1. जोना ग्लोमेरुलोसा (Zona Glomerulosa)— यह स्तंभी कोशिकाओं द्वारा निर्मित होता है जो समानान्तर क्रम में स्थित होते हैं। यह पिनरेलो कार्टिको स्टीराइड-एल्डोस्टीरोन नामक हार्मोन का स्राव करता है।

2. जोना फैसिकुलाटा (Zona Faciculata)— इसका निर्माण पोलीहेड्रल कोशिकाओं द्वारा होता है। इस स्तर के द्वारा ग्लुको कॉर्टिको स्टीरायड का स्राव किया जाता है। इसमें मुख्यत: कोर्टीसोन (Cortisone), कोर्टिकोस्टीरोन (Corticosterone), 11-डी हाइड्रो, 17-हाइड्रोकॉर्टिकोस्टीराइड्स हार्मोन होते हैं। ग्लुकोकार्टिकोस्टीराइड के मुख्य कार्य हैं—

1. यह कार्बोहाइड्रेट के चयापचय की क्रिया का नियमन करता है। यह इन्सुलीन की तरह क्रिया करता है। साथ ही यकृत (lever) में ग्लुकोनियोजेनेसिस की क्रिया में सहायक बनता है। यह ग्लूकोज को ग्लाइकोजन में परिवर्तित करता है। यह एन्टीइन्सुलीन की तरह भी क्रिया करता है और ग्लाइकोजन को ग्लुकोज में परिवर्तित करता है। इस प्रकार यह कार्बोज की चयापचय क्रिया का नियमन करता है।
2. यह हार्मोन प्रोटीन तथा वसा की चयापचय क्रिया का भी नियमन करता है।
3. यह यकृत में ग्लाइकोजन के निर्माण तथा संग्रह में भी सहायक बनता है।
4. यह आधारीय चयापचय (Basel Metobolic Rate) को उत्तेजित करता है।

3. जोना रेटिकुलाटा (Zona Reticulata)— इसकी कोशिकाएँ अनियमित आकार की होती हैं तथा यह रेटिकुलो एंडोथेलियल कोशिकाओं से रेखित होती हैं। इस स्तर द्वारा लिंग स्टीराइड्स (sex steroids) का स्राव होता है। इसमें मुख्यत: प्रोजेस्ट्रोन (projestrone), आस्ट्रोजन (oestrogen) तथा एण्ड्रोजन (Androgens) नामक हार्मोन्स होते हैं। इनके द्वारा लैंगिक क्रियाओं तथा प्रजनन अंगों की क्रियाओं का नियमन होता है। ये हार्मोन शारीरिक क्रियाओं की वृद्धि तथा विकास को प्रभावित करते हैं तथा यौन इच्छाओं का विकास करते हैं।

कार्टिकल हार्मोन के अल्पस्राव के प्रभाव (Effect of Hypoactivity & Cortical Hormone)

एड्रीनल ग्रंथि के कार्टेक्स भाग से कोर्टिन नामक हार्मोन का स्राव होता है। इस हार्मोन की कमी से ऐडीसन्स

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

नामक रोग होता है जिसके निम्न लक्षण हैं—

1. मांसपेशियाँ कमजोर होना।
2. रक्तदाब में कमी होना।
3. शरीर में सूजन हो जाना।
4. बेचैनी, चक्कर तथा कभी-कभी डायरिया, नींद में कमी तथा थकान का अनुभव होना।

इस हार्मोन की कमी से महिलाओं में रजोधर्म अनियमित हो जाता है, बाल झड़ने लगते हैं, शीघ्र थकान का अनुभव तथा नींद में कमी आने लगती है।

2. एड्रीनल मेड्यूला (Adrenal Medula) : यह एड्रीनल ग्रंथि का भीतरी भाग है जो अधिकांशतः कार्टेक्स से ढका रहता है। इसकी कोशिकाएँ बड़ी होती हैं जो समूह में पाई जाती हैं। ये कोशिकाएँ स्टीरॉइड श्रेणी के हार्मोन्स का स्राव नही करती है बल्कि प्रोटीन श्रेणी के हार्मोन्स का स्राव करती है। एड्रीनल मेड्यूला द्वारा मुख्यतः दो प्रकार के हार्मोन्स का स्राव किया जाता है—एड्रीनलीन एवं नॉर-एड्रीनलीन।

एड्रीनलीन तथा नॉर-एड्रीनलीन के कार्य (Functions of Adrenalene and Nor-Adrenelene)

एड्रीनलीन हार्मोन को एपीनेफ्रीन (Epinephrine) एवं नॉर-एड्रीनलीन को एपीनेफ्रीन (Nor-Epinephrine) हार्मोन भी कहा जाता है। इन दोनों हार्मोन्स को सम्मिलित रूप से कैटेकालएमीन्स (Catecholamines) भी कहा जाता है। ये हार्मोन्स विभिन्न प्रघातों की प्रतिक्रियाओं का नियमन तथा रक्तवाहिनियों में रक्तदाब का नियमन करते हैं। प्रतिकूल परिस्थितियों में इस हार्मोन का अधिक स्राव होता है जिससे व्यक्ति को विचलित परिस्थितियों में अधिक साहस का अनुभव होता है। इसी कारण वह प्रतिकूल स्थितियों का साहस पूर्वक सामना करता है। इस हार्मोन का स्राव 'भागो या लड़ो' (Fight and Flight) वाली अवस्था में अधिक होता है। यकृत द्वारा अतिरिक्त मात्रा में रक्त में ग्लूकोज छोड़ने से ग्लूकोज की मात्रा बढ़ जाती है जिससे व्यक्ति अत्यधिक शक्ति प्राप्त करता है। यही शक्ति व्यक्ति के लड़ने या भागने के लिए उत्तरदायी होती है। यह हार्मोन चयापचय की दर को बढ़ा देता है जिससे हृदय गति तेज हो जाती है। शरीर से अधिक पसीना निकलता है तथा आँखों की पुतलियाँ फैल जाती हैं। श्वसनिकाओं के फूलने से श्वास नली में अतिरिक्त हवा भरने से श्वास की गति भी तीव्र हो जाती है।

9.3.7 अग्नाशय (Pancreas)

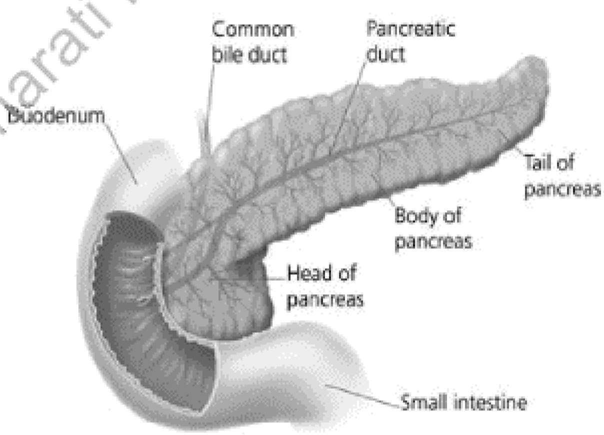

Pancreas

अग्नाशय में निम्न संरचनाएँ होती हैं—

लैंगरहैन्स की द्वीपिकाएँ (Islets of Langerhans) : ये द्वीपिकाएँ एक समूह के रूप में होती हैं जो अग्नाशय में रहती हैं। ये विशिष्ट प्रकार की कोशिकाएँ हैं जो रक्त केशिकाओं के जाल द्वारा घिरी रहती हैं। इन कोशिकाओं द्वारा ही एक प्रकार के हार्मोन्स का स्राव किया जाता है जो अन्तःस्रावी होता है। अग्नाशय के पिण्डकों की कोशिकाओं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

द्वारा अग्नाशयी रस का स्राव किया जाता है। यह रस अग्नाशय वाहिनियों द्वारा पक्वाशय में डाल दिया जाता है। यह एक बहिस्रावी ग्रंथि है लेकिन यह अंत:स्रावी ग्रंथि भी है।

लैंगरहेन्स की द्वीपिकाओं में मुख्यतया तीन प्रकार की कोशिकाएँ होती हैं जो विभिन्न प्रकार का स्राव करती हैं। ये कोशिकाएँ हैं—

1. **अल्फा कोशिकाएँ (cells)** ये आकार में बड़ी होती हैं तथा पोलिपेप्टाइड ग्लूकागोन का स्राव करती हैं।

2. **बीटा कोशिकाएँ (cells)**—ये आकार में छोटी होती हैं तथा इन्सुलिन का स्राव करती हैं।

3. **डेल्टा कोशिकाएँ (cells)**—ये कोशिकाएँ सोमेटोस्टैटिन का स्राव करती हैं।

ग्लूकागोन तथा इन्सुलीन दोनों ही प्रोटीन प्रकृति के हार्मोन्स हैं जो कार्बोहाइड्रेड के उपापचय के लिए अत्यन्त आवश्यक होते हैं। इनके द्वारा शरीर में कार्बोज की मात्रा का नियमन किया जाता है। शरीर में ग्लूकोज सामान्य स्तर से (45-95 mg/100 मिली मीटर) अधिक होने पर इसका सन्तुलन इन्सुलिन द्वारा ही किया जाता है।

ग्लूकागोन (Glocagon)—ये पोलीपेप्टाइड हार्मोन है जिसमें 29 एमीनो अम्ल पाए जाते हैं। यह रक्त में ग्लुकोज की मात्रा को बढ़ा देता है। यह क्रिया दो प्रकार से होती है—

1. ग्लाइकोजेन को ग्लूकोज में परिवर्तित करने से,

2. अकार्बोज स्रोत (वसा, प्रोटीन) से ग्लूकोज को बनाकर।

अकार्बोज से ग्लूकोज निर्माण की प्रक्रिया को ग्लूकानियोजेनेसिस (Gluconeogenesis) कहते हैं। अत: यह हार्मोन ग्लूकोज का निर्माण कर रक्त में उसकी मात्रा को बढ़ाता है। यह हार्मोन तब अधिक क्रियाशील होता है जब व्रत, उपवास अथवा किन्हीं कारणों से भोजन की आपूर्ति न हुई हो। उस समय यह हार्मोन शरीर में उपस्थित प्रोटीन तथा वसा को तोड़कर ग्लूकोज का निर्माण कर रक्त में डालता है जिससे ऊर्जा की प्राप्ति होती है।

1. इन्सुलिन—यह हार्मोन भी पोलीपेप्टाइड हार्मोन है जिसमें 51 प्रकार के अमीनो अम्ल उपस्थित रहते हैं। ये अमीनो अम्ल दो प्रकार की शृंखलाओं द्वारा सजे होते हैं जिसमें प्रथम में 21 तथा द्वितीय में 30 अमीनो अम्ल होते हैं। एक सामान्य स्वस्थ व्यक्ति में प्रतिदिन 50 यूनिट इन्सुलिन का स्राव होता है जबकि अग्नाशय में इसकी संग्रह क्षमता 200 यूनिट तक होती है। अग्नाशय से इन्सुलिन सदैव निकलता रहता है।

इन्सुलिन के कार्य (Functions to Insuline) : इन्सुलिन के निम्नलिखित कार्य हैं—

1. यह रक्त में ग्लूकोज की मात्रा का नियमन करता है।
2. यह ग्लूकोज को ग्लाइकोजन में परिवर्तित करता है जिसे यकृत एवं मांसपेशियों द्वारा संग्रहित कर लिया जाता है।
3. वस्त्र का संग्रह वसीय उत्तक द्वारा कर लिया जाता है।
4. यह ग्लूकोनियोजेनेसिस की क्रिया को रोकता है और प्रोटीन एवं वसा का उपापचय करता है।
5. यह शरीर में होमियोस्टेसिस की क्रिया को रोकता है। जैसे ही रक्त में ग्लूकोज का स्तर बढ़ता है तो यह उसे तुरन्त ग्लाइकोजन में परिवर्तित कर देता है।
6. इन्सुलिन प्रोटीन संश्लेषण को उत्तेजित करता है एवं मांसपेशियाँ की वृद्धि में सहायक बनता है।
7. यह वसामय उत्तक में वसीय अम्ल, ग्लीसराल फास्फेट तथा ट्राइग्लिसेराइड का भी संश्लेषण करता है।
8. यह शरीर में कीटोन बॉडी (Ketone Body) को बनने से रोकता है और शरीर पोटेशियम ग्रहण करने की क्षमता में वृद्धि करता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इन्सुलिन के अल्पस्राव के प्रभाव : इन्सुलिन के अल्पस्राव के निम्न प्रभाव होते हैं—

1. इन्सुलिन की कमी से रक्त में ग्लुकोज की मात्रा बढ़ जाती है तथा वह पेशाब में भी आने लगता है जिसे मधुमेह या चीनिया रोग कहा जाता है।
2. रोगी का वजन धीरे-धीरे कम होने लग जाता है।
3. रोगी अधिक भूख-प्यास का अनुभव करता है।
4. पेशाब में कीटोन आने लगता है।
5. गुर्दे धीरे-धीरे काम करना बन्द कर देते हैं जिससे वृक्कावरोध (Rend failure) हो जाता है।

इन्सुलिन के अतिस्राव के प्रभाव : इन्सुलिन के अतिस्राव के निम्न प्रभाव होते हैं—

1. इन्सुलिन के अतिस्राव से रक्त में ग्लूकोज का स्तर सामान्य से अधिक या कम हो जाता है।
2. रोगी को हाइपोग्लाइसेमिया हो जाता है।
3. रोगी को शीघ्र थकान का अनुभव होता है।
4. रोगी काफी कमजोर हो जाता है।
5. बार-बार भूख-प्यास लगती है जिससे वह सदैव ही भूखा अनुभव करता है।
6. रोगी चिन्तित, बेचैन तथा चिड़चिड़ा हो जाता है।
7. अत्यधिक रोग की अवस्था में रोगी बेहोश हो जाता है।

9.3.8 यौन ग्रंथियाँ (Sex Glands)

वृषण (Testes) : पुरुषों की यौन या लिंग ग्रंथियों को वृषण तथा स्त्रियों में डिम्ब कहा जाता है।

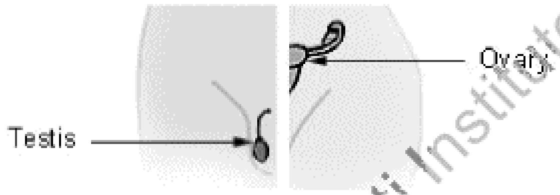

(Male) **(Female)**

वृषण (Testes) : पुरुष यौन ग्रंथियाँ अण्डकोष में स्थित रहती हैं तथा स्परमैट्रिक कोर्ड (Sphermetic Cord) द्वारा शरीर में मिली होती हैं। वृषण में कुछ विशिष्ट कोशिकाएँ होती हैं जिन्हें लैडिंग कोशिकाएँ (Leyding Cells) कहा जाता है। ये लैडिंग कोशिकाएँ ही नर हार्मोन्स (Male Hormones) का स्राव करती हैं। इन स्रावों को एण्ड्रोजन्स कहा जाता है। इनमें दो प्रकार के हार्मोन्स होते हैं—टेस्टोस्टेरॉन एवं एण्डोस्टेरॉन।

एण्ड्रोजन्स के कार्य : एन्ड्रोजन्स के निम्न कार्य हैं—

1. यह शारीरिक एवं मानसिक विकास में सहायक होता है।
2. यौन अंगों की वृद्धि एवं विकास में सहायक होता है।
3. शुक्राणुजनन (Spermatogenesis) की क्रिया का नियमन करता है।
4. यह यौन सहायक ग्रंथियों तथा अतिरिक्त लैंगिक लक्षणों का नियंत्रण करता है।
5. पुरुष में लैंगिक लक्षणों का विकास करते हैं, जैसे— आवाज भारी होना, दाढ़ी-मूँछ आना, जनन अंगों, काखों तथा छाती पर बालों का उगना आदि।

एण्ड्रोजन के अतिस्राव से पुरुष में अधिक कामलोलुपता आ जाती है तथा उसमें विषय (Sex) संबंधी उत्साह अधिक होता है। इस हार्मोन के कम स्राव होने से पुरुष में पुरुषत्व की कमी हो जाती है, जिससे लैंगिक लक्षणों एवं जननांगों का सम्पूर्ण विकास नहीं हो पाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

डिम्ब ग्रंथि (Ovary) : ये ग्रंथियाँ स्त्रियों के गर्भाशय के दायी एवं बायी दोनों तरफ होती हैं। स्त्री के गोनाड्स के अण्डाशय (Ovary) भी कहा जाता है। इसी के द्वारा ही हार्मोन का स्राव होता है। ये हार्मोन स्टीराइड प्रकृति के होते हैं। स्त्री गोनाड्स द्वारा मुख्यत: दो प्रकार के हार्मोन्स का स्राव किया जाता है।

ओस्ट्रोजेन्स एवं प्रेजेस्टीरोन्स अथवा प्रोजेस्टेजन्स :

1. ओस्ट्रोजेन्स (Oestrogens) : इसका स्राव अण्डाशय द्वारा किया जाता है। अण्डाशय में फालिक्यूलर एपीथीलियम की कोशिकाएँ होती हैं जिनसे ग्रैफियन पुटिका (Grafian Folicles) का निर्माण होता है। इन पुटिकाओं द्वारा ही ओस्ट्रोजन्स हार्मोन्स का निर्माण किया जाता है।

2. प्रोजेस्टीरोन्स (Progesterones) : जब ग्रैफिसन पुटिका से अण्ड क्षरण अथवा अण्डोत्सर्ग (Ovulation) होता है तो यह परिपक्व अण्ड ग्रैफियन पुटिका को तोड़कर बाहर आ जाता है। वहाँ रिक्त स्थान पर पीले रंग की कोशिकाओं का निर्माण हो जाता है जिसे पीत पिण्ड या कार्पस ल्युट्यिम कहते हैं। कार्पस ल्युटियम की कोशिकाएँ ही प्रोजेस्टीरोन नामक हार्मोन का स्राव करती हैं।

ओस्ट्रोजन्स तथा प्रोजेस्टरोन हार्मोन के कार्य : इन हार्मोन्स के निम्न कार्य हैं–

1. इनके द्वारा स्त्री प्रजनन अंगों की वृद्धि एवं विकास किया जाता है।
2. इनके द्वारा ही स्तनों का विकास एवं दुग्ध ग्रंथियों की वृद्धि होती है।
3. ये रजोधर्म के स्राव का नियमन करते हैं।
4. प्रोजेस्टीरोन हार्मोन निषेचित अण्डे (Fertilized Ovam) को अपरा (Placeta) से जोड़ता है।
5. यह गर्भावस्था के दौरान होने वाले विभिन्न प्रकार के परिवर्तनों का नियमन करता है।
6. यह स्त्रियों में यौनेच्छा को बढ़ाता है तथा उनमें नारी सुलभ लक्षणों का विकास भी करता है।
7. यह स्त्री के सहायक प्रजनन अंगों का विकास भी करता है, जैसे—स्तन का विकास आदि।

ओस्ट्रोजन्स तथा प्रोजेस्ट्रीरोन के अल्प स्राव के प्रभाव : इनके अल्प स्राव के निम्न प्रभाव हैं—

1. इनके कम स्राव से स्त्रियों में स्त्रीत्व का गुण नहीं आ पाता है।
2. प्रजनन अंगों का विकास रुक जाता है।
3. स्तन अविकसित तथा छोटे रह जाते हैं।
4. यौन संबंधी उत्साह कम हो जाता है।
5. प्रजनन क्षमता काफी कम हो जाती है।

आस्ट्रोजन तथा प्रोजेस्ट्रीटोन के अति स्राव के प्रभाव : इनके अति स्राव के निम्न प्रभाव हैं—

1. स्तन काफी बड़े हो जाते हैं।
2. स्त्रियाँ अधिक कामुक हो जाती हैं।
3. विषय संबंधी उत्साह काफी बढ़ जाता है।
4. रजोधर्म अनियमित हो जाता है तथा मासिक स्राव भी अधिक होता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि ग्रंथितंत्र अपने आप में महत्त्वपूर्ण तंत्र है जिसका सन्तुलित विकास एवं सन्तुलित स्राव व्यक्ति के व्यवहार को भी सन्तुलित बनाता है।

9.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

निबंधात्मक प्रश्न

1. मानव शरीर की प्रमुख अन्त:स्रावी ग्रंथियों का वर्णन करें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2. ग्रंथियों के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए किसी एक ग्रंथि का सचित्र वर्णन करें।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. अल्पावटुता एवं अत्यावटुता क्या हैं समझाइए।
2. पियूष ग्रंथि के प्रकार एवं उप प्रकार बताइये।

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. नेत्रोत्सेंधी गलगंड किस दशा को कहते हैं?
2. वामनता क्या है?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. किस हॉर्मोन की कमी से गर्भपात हो जाता है—
   (क) प्रोजेस्ट्रोन (ख) एस्ट्रोजन
   (ग) इंसुलिन (घ) थाइरॉक्सिन ( )
2. डिम्बाशय से निकलने वाले अंत:स्राव की मात्रा होती है—
   (क) 1 gm. (ख) .5 gm.
   (ग) डाक टिकट की तोल के बराबर
   (घ) इनमें से कोई नहीं ( )
3. अवटु ग्रंथि के संयोजक का आकार होता है—
   (क) Y (ख) B
   (ग) I (घ) H ( )
4. पियूष ग्रंथि के मध्य भाग में स्थित गड्ढे को कहते हैं—
   (क) पियूषि खात (ख) जतुक खंड
   (ग) मध्यांश (घ) एक्रोमिगेली ( )
5. दूध के उत्पादन को बढ़ाने वाला हॉर्मोन है—
   (क) टेस्टोस्टेरोन (ख) थाइरॉक्सिन
   (ग) इंसुलिन (घ) प्रोलेक्टिन ( )

सन्दर्भ पुस्तकें :

1. डॉ. वृन्दा सिंह—मानव एवं शारीरिक क्रिया-विज्ञान, पंचशील प्रकाशन, जयपुर.
2. डॉ. के.के. पाण्डेय—रचना शरीर, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी.
3. डॉ. एन.पी. शर्मा—शरीर रचना एवं क्रिया-विज्ञान, खेल साहित्य केन्द्र, नई दिल्ली.
4. डॉ. प्रवीण तामड़े—प्राथमिक शरीर रचना शास्त्रा तथा व्यायाम क्रिया-विज्ञान, स्पोर्ट्स पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली.

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–10 : श्वसन तंत्र की मूल संरचना, श्वसन प्रक्रिया, प्रमुख कार्य तथा श्वसन प्रक्रिया से ऊर्जा नियोजन में प्रेक्षाध्यान का योगदान

संरचना

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 श्वसन क्रिया

10.3 श्वसन तंत्र की संरचना

10.4 श्वसन तंत्र के प्रमुख अवयव

- 10.4.1 नासागुहाएँ
- 10.4.2 ग्रसनी
- 10.4.3 स्वर यंत्र
- 10.4.4 श्वासनली
- 10.4.5 श्वसनी
- 10.4.6 फुफ्फुस

10.5 श्वसन क्रिया के प्रकार

- 10.5.1 बाह्य श्वसन
  - 10.5.1.1 श्वसन प्रक्रिया
- 10.5.2 अन्त: श्वसन
  - 10.5.2.1 गैसों का विनिमयन

10.6 श्वसन तन्त्र के कार्य

- 10.6.1 गैसों का विनिमय
- 10.6.2 उत्सर्जन
- 10.6.3 अवशोषण
- 10.6.4 स्रवण
- 10.6.5 आवाज–उत्पादन
- 10.6.6 घ्राण–केन्द्र
- 10.6.7 छींक व खांसना
- 10.6.8 जल तथा अम्लक्षार संतुलन
- 10.6.9 रक्त परिसंचरण तथा लसिका तंत्र पर प्रभाव

10.7 श्वसन प्रक्रिया से ऊर्जा नियोजन में प्रेक्षाध्यान का योगदान

10.8 अभ्यास प्रश्नावली

10.0 उद्देश्य

1. श्वसन क्रिया के चरणों को जान सकेंगे।
2. श्वसन का जीवन में कितना महत्त्व हैं?
3. श्वसन तन्त्र के प्रमुख अवयव कौन–कौन से हैं?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4. फेफड़ों की श्वास ग्रहण करने की क्षमता कितनी है?

5. श्वसन तन्त्र के कार्यों को जान सकेंगे।

6. श्वसन प्रक्रिया से ऊर्जा नियोजन में प्रेक्षाध्यान के योगदान को समझ सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

भोजन तथा पानी के बिना तो प्राणी कुछ समय तक जीवित भी रह सकता है, लेकिन श्वास के बिना एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता। अत: प्रत्येक जीव को जीवित रहने के लिए ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है। शरीर के ऊतकों को सभी प्रकार की क्रियाएँ करने के लिए ऑक्सीजन की आपूर्ति होना अनिवार्य है। कोशिकाओं में सभी तत्त्वों का चयापचय और उससे प्राप्त ऊर्जा तथा ऊष्मा का सृजन ऑक्सीजन द्वारा ही होता है। वस्तुत: ऑक्सीजन ही जीवन है। कुछ ही मिनटों में ऑक्सीजन के अभाव से उत्तक निष्क्रिय हो जाते हैं, हृदय स्पंदन बंद हो जाता है तथा मस्तिष्क की तंत्रिकाएँ भी कुछ ही देर बाद निष्क्रिय होने लगती हैं। अत: ऑक्सीजन ही एक ऐसी वस्तु है जो जीवन को चलाती है, यह अक्षरश: सत्य है।

10.2 श्वसन क्रिया

ऑक्सीजन की प्राप्ति वातावरण से होती है। वातावरण, रक्त और कोशिका के बीच में गैसों का आदान-प्रदान ही श्वसन कहलाता है। जो हम ऑक्सीजन ग्रहण करते हैं, उस ऑक्सीजन के अंतर्ग्रहण करने का काम श्वसन तंत्र करता है। श्वसन तंत्र के द्वारा शरीर की प्रत्येक कोशिका ऑक्सीजन की संपूर्ति प्राप्त करती है। यह श्वसन तंत्र और हृद-पेशी तंत्र दोनों ही श्वसन प्रक्रिया में समान रूप से भाग लेते हैं। दोनों में से एक भी तंत्र के खराब हो जाने पर शरीर पर एक जैसा ही प्रभाव पड़ता है जैसे समस्थिति का बिगड़ना, कोशिकाओं का शीघ्र मरना। श्वसन प्रक्रिया से ऑक्सीजन की संपूर्ति के साथ ही कोशिका ऑक्सीकरण के अनुपयोगी उत्पादों से मुक्ति पाती है। ऑक्सीजन चयापचय क्रिया में कोशिका को मदद करती है।

इस प्रकार श्वसन क्रिया दो चरणों में पूर्ण होती है—

1. वातावरण से ऑक्सीजन को ऊतकों तक पहुंचाना, तथा
2. ऊतकों से कार्बनडाइऑक्साइड, त्याज्य पदार्थ इत्यादि को बाहर निकालना।

श्वसन की एक क्रिया अर्थात् एक गैस को लेना और दूसरी गैस को छोड़ना सजीव प्राणियों का प्रधान गुण है। जैसे ही शिशु जन्म लेता है और उसके फुफ्फुसों का जिस क्षण वातावरणीय वायु से संस्पर्श होता है वे वायु से भरने लगते हैं और जीवन का आरंभ हो जाता है। जन्म से आरंभ हो कर यह प्रक्रिया जीवन पर्यन्त चलती रहती है। श्वसन क्रिया की गति जन्म या बाल्यकाल में तेज रहती है लेकिन जैसे-जैसे बालक बड़ा होता है यह अपेक्षाकृत धीमी हो जाती है। श्वसन क्रिया वस्तुत: कोशिकाओं तथा वातावरणीय वायु के मध्य होने वाले गैसों के पारस्परिक विनिमय अर्थात् आदान-प्रदान का ही नाम है। जो जीव एक कोष के होते हैं वहाँ श्वसन क्रिया तो होती है, लेकिन इसका तरीका कुछ भिन्न होता है। ऐसे जीवों के शरीर में गैसों का आदान-प्रदान प्रत्यक्षरूप से होता है। बहुकोशीय जीवों में दूरस्थ कोशिकाओं का वातावरणीय वायु से कोई सीधा सम्पर्क नहीं रहता है अत: ऐसे जीवों के शरीर में निर्दिष्ट स्थान पर ऑक्सीजन का संवाहन करने के लिए एक विशेष तंत्र की आवश्यकता होती है। उस विशेष तंत्र का ही नाम श्वसन तंत्र है।

10.3 श्वसन तंत्र की संरचना

श्वसन के तीन अर्थ होते हैं–

1. श्वास–अर्थात् फुफ्फुसों द्वारा संवातन (Ventilation),
2. रक्त व हवा के मध्य एवं रक्त और उत्तक द्रव्य के मध्य गैस का अदान-प्रदान,
3. कोशिकीय चयापचय में ऑक्सीजन का उपयोग।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

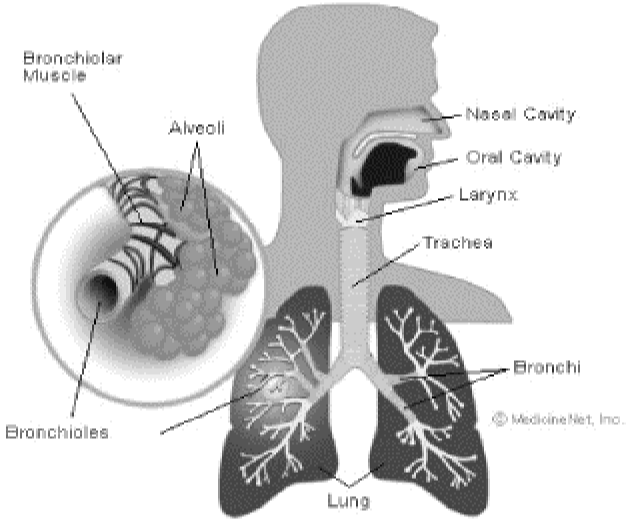

(Respiratory System)

इस पाठ में हम प्रथम दो क्रियाओं का अध्ययन करेंगे। उपरोक्त क्रियाएँ शरीर के जिस तंत्र द्वारा सम्पादित की जाती हैं, उसे श्वसन तंत्र कहा जाता है। श्वसन तंत्र के प्रमुख अंग– नासागुहाएँ (Nasal Cavities), ग्रसनी (Pharynx), स्वरयंत्र (Larynx), श्वासनली (Trachea), श्वसनी (Bronchi) और फुफ्फुस (Lungs) हैं।

जब हम श्वास लेते हैं तब वायु सर्वप्रथम नाक में प्रविष्ट होकर नासाग्रसनी से होती हुई मुँह के पृष्ठ भाग में पहुंचती है। वहाँ से यह स्वरयंत्र में प्रवेश करती है। इसके सामने दो चौड़ी तथा नरम हड्डियाँ होती हैं, जिन्हें थाइराइड कार्टिलेज कहा जाता है। इसके ऊपरी भाग में एक ढक्कन होता है, जिसे कण्ठच्छद कहते हैं। यहाँ से श्वास श्वसनी से होता हुआ दोनों फुफ्फुसों तक पहुंचता है तथा इसी क्रम में यह वापस बाहर निकलता है। श्वसन क्रिया में प्रयुक्त हुए अवयवों की संरचना का आगे हम विस्तृत अध्ययन करेंगे।

10.4 श्वसन तंत्र के प्रमुख अवयव

10.4.1 नासागुहाएँ (Nasal Cavities)

नाक के कई कार्य होते हैं, जैसे–हम जो वायु भीतर ले रहे हैं, उसे गरम करना, साफ करना तथा उसकी आर्द्रता को बनाए रखना और यह हमें गन्ध का अहसास कराने के साथ-साथ हमारी आवाज को तेज (Amplifie) करने का कार्य भी करता है।

नाक का बाहरी हिस्सा अस्थि और उपास्थि से मिलकर बना हुआ होता है। नासागुहा का निचला तल तालवास्थि (Hard Palate) के ऊपरी तल से बनता है। दोनों नासागुहाओं की नलिका का अग्र-नासाद्वार, नाक प्रघाण (Vestibule of the Nose) में खुलता है। इस भाग में स्तरित उपकला होती है। इसका त्वचा से अविच्छिन्न सातत्य रहता है। अग्र नासाद्वार की सतह पर कुछ तैलीय ग्रंथियाँ (Sebaceous Glands) रहती हैं। यहाँ कुछ बाल भी रहते हैं जो छोटे कणों को नाक के भीतर तक जाने से रोकने का कार्य करते हैं। बचे हुए हिस्से में उपकला का एक स्तर पाया जाता है।

नासा श्लेष्मिक कला स्तंभाकार-रोमिकामयी उपकला से बनी रहती है। इनमें चषक-कोशिका होती हैं, जिनके स्राव से नासिका की श्लेष्मिक-कला, चिकनी एवं चिपचिपी सी रहती है। बाहर से आने वाली अशुद्धियाँ, जैसे– कण, रेशे तथा जीवाणु भी इनसे सट जाते हैं और भीतर नहीं जा पाते हैं। नासागुहा में पाये जाने वाले इरेक्टाइल (erectile) उत्तक हर 30 से 40 मिनट में रक्त से भर जाते हैं तथा एक तरफ से वायु के प्रवेश को रोक देते हैं। जब यह सूख जाता है तब वह नासागुहा खुल जाता है। इस प्रकार हम श्वास नासिका हर घंटे में दो बार बदल लेते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

10.4.2 ग्रसनी (The Pharynx)

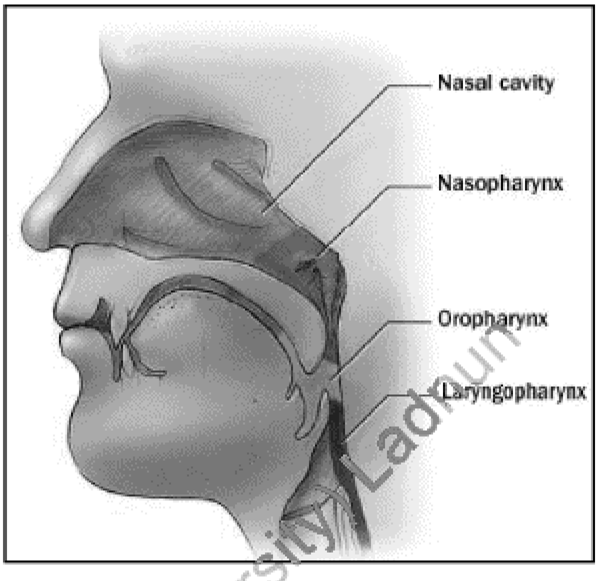

यह मांसपेशियों द्वारा निर्मित एक कीप के जैसी संरचना है, जो 13 cm लंबी होती है। इसके तीन क्षेत्र होते हैं– नेसोफैरिंक्स, ओरोफैरिंक्स तथा लैरिंगोफैरिंक्स। यह कपाल के नीचे के हिस्से के समीप, नासा-गुहाओं के बाद स्थित है। इस भाग में कान से आने वाली कर्ण कंठनली (Eustachian Tube) का मुख्य छिद्र होता है, जो ग्रसनी की पार्श्विक भित्ति पर होता है।

इसका लैरिंगोफैरिंक्स भाग हायोड (Hyoid) अस्थि के स्तर पर होता है। इसी स्थान से ग्रासनली शुरू होती है। नेसोफैरिंक्स से सिर्फ हवा गुजरती है, जबकि ओरोफैरिंक्स तथा लैरिंगोफैरिंक्स से हवा, भोजन व तरल पदार्थ गुजरते हैं।

10.4.3 स्वर यंत्र (The Larynx)

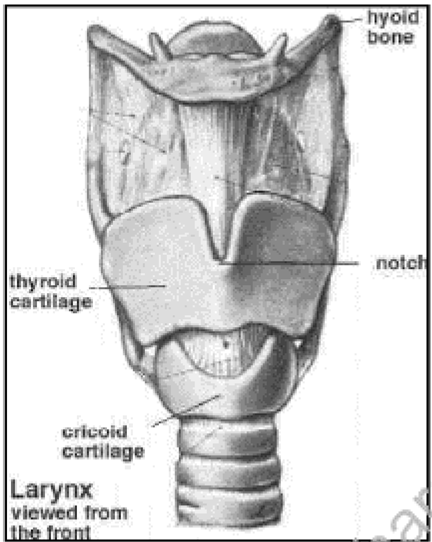

यह उपास्थि से बना हुआ 4 से.मी. का एक कक्ष होता है। इसका प्राथमिक कार्य भोजन व पेय पदार्थों को हवा से अलग करना है। यह इसके साथ-साथ ध्वनि का उत्पादन भी करता है। इसके मुख पर उपास्थि का ढक्कन रहता है, जिसे उपजिह्वा अथवा कंठच्छद (Epiglottis) कहते हैं। यही हवा को भोजन व पेय से अलग करने में मदद करता है। स्वर यंत्र में नौ (9) उपास्थियाँ होती हैं। पहली तीन थोड़ी बड़ी व जोड़ों में नहीं होती हैं। सबसे पहले कंठच्छद उपास्थि होती है जो चम्मच के जैसी होती है। सबसे बड़ी उपास्थि थाइराइड उपास्थि होती है, जिसे एडम्स एप्पल (Adm's apple) भी कहते हैं। टेस्टोस्टेरोन हार्मोन इसकी वृद्धि में सहायक होता है इसलिए पुरुषों में यह भाग बड़ा होता है। इसके नीचे क्राइकोइड उपास्थि होती है जो स्वर-यंत्र को श्वास नली से जोड़ती है। बाकी की उपास्थियाँ छोटी होती हैं व तीन जोड़ों में पायी जाती हैं।

10.4.4 श्वास नली (Trachea)

यह एक पाइप जैसी संरचना होती है, जो 12cm लम्बी तथा 2.5cm व्यास की होती है। यह ग्रासनली के सामने स्थित होती है। श्वास नली 16 से 20 उपास्थियों से जो 'C' आकार की होती हैं, से मिलकर बनी होती है। पश्च भित्ति, जो तंतु-उत्तकों तथा श्लेष्मिक झिल्ली से बनी रहती है, ग्रासनली से सटी रहती है। इसके भीतरी स्तर का निर्माण रोमिकामयी स्तंभाकार उपकला से हुआ रहता है, जिसमें चषक कोशिकाएँ रहती हैं, जिससे श्लेष्मा का स्राव होता रहता है। ये श्लेष्मा धूल कणों को अंदर नहीं आने देती है और चिपके हुए कणों को बाहर धकेल देती है।

10.4.5 श्वसनी (The Bronchi)

श्वसनी स्टरनम के पीछे होती है, थोड़ी आगे जाकर यह दो भागों में विभाजित हो जाती है। 2-3 से.मी. चलकर ये प्रत्येक फुफ्फुस में चली जाती है। फुफ्फुसों में प्रवेश करके यह कई शाखाओं में विभक्त हो जाती है। दायीं श्वसनी लम्बी व पतली होती है जबकि बायीं छोटी तथा चौड़ी होती है। ये जैसे-जैसे आगे बढ़ती है, कई शाखाओं में विभक्त होती चली जाती है। मुख्य रूप से तीन स्तरों– प्राथमिक, द्वितीयक तथा तृतीयक स्तर में विभक्त होती है। तृतीयक स्तर पर श्वसनी अत्यन्त सूक्ष्म व्यास वाली श्वसनिकाओं में परिवर्तित हो जाती है। यह सब देखने

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

में वृक्ष की शाखाओं और प्रशाखाओं जैसा प्रतीत होता है। श्वसनी व श्वसनिकाओं में रोमिकामयी–स्तंभाकार उपकला से आच्छादित श्लेष्मिक झिल्ली का स्तर होता है। सभी चारों ओर से प्रत्यास्थ सूत्रों से लिपटी हुई रहती हैं। इस वजह से हवा के आने-जाने के समय यह आसानी से फूलती व सिकुड़ती रहती हैं। जब किसी कारण से इन पेशियों में जकड़न अथवा ऐंठन पैदा हो जाये तो वायु मार्ग अत्यन्त संकुचित हो जाता है व श्वास लेने में कठिनाई महसूस होती है। इस स्थिति को ही दमा रोग कहते हैं।

10.4.6 फुफ्फुस (Lungs)

फुफ्फुस एक तरह का शंकु आकार का अंग होता है। नीचे का हिस्सा आधार व ऊपर का शीर्ष भाग कहलाता है। आधार भाग तनुपट्ट पर टिका रहता है व शीर्ष भाग हंसली की अस्थि के कुछ ऊपर रहता है। फेफड़े पूरी

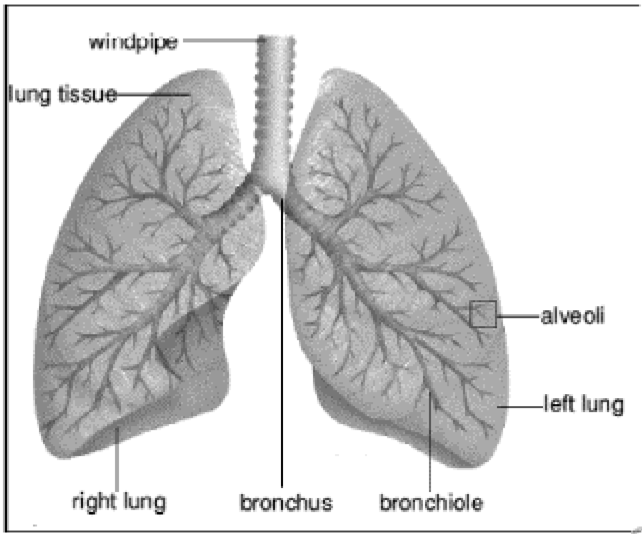

(Lungs)

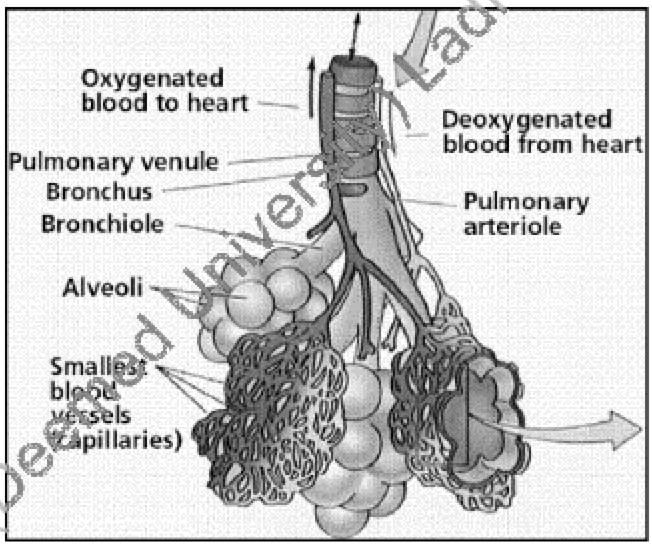

(Alveoli)

वक्षगुहा को नहीं घेरते हैं। इसमें ज्यादातर स्थान तो तनुपट्ट, लीवर, आमाशय व तिल्ली घेरते हैं। दायाँ फुफ्फुस थोड़ा बड़ा होता है। इसका वजन एक वयस्क व्यक्ति में 620 ग्राम तथा बायाँ फुफ्फुस छोटा होता है और इसका वजन 570 ग्राम होता है। बायीं ओर हृदय को स्थान देने के कारण फुफ्फुस छोटा होता है।

फुफ्फुस हाइलम (Hilum) भाग से श्वसनी, रक्त वाहिनियाँ तथा लसिका वाहिकाएँ प्राप्त करता है। बाएँ फुफ्फुस में सूपीरियर खण्ड व इनफीरियर खण्ड होते हैं जबकि दायाँ फुफ्फुस तीन खण्डों में विभक्त होता है। ऊपर से देखने में यह चिकना एवं चमकीला होता है। ऊपरी सतह सीरस-तरल से गीली रहती है। भीतर से फुफ्फुस कई खण्डों व उपखण्डों में विभक्त रहता है, जिनमें श्वसनी, श्वसनिकाएँ तथा वायुप्रकोष्ठ भरे रहते हैं। यह अंतराल उत्तकों से बना हुआ होता है, जिसमें से होकर रक्त वाहिनियाँ तथा लसिकाभ वाहिनियाँ अपना मार्ग बनाती हैं। फुफ्फुसों में बहुत-सी लसीका ग्रंथियाँ भी मौजूद रहती हैं। फुफ्फुसों में वायुकोष्ठिका कोष पाये जाते हैं। प्रत्येक कोष्ठ पर भी वायु मार्ग का अंत होता है। फूले रहने पर ये अंगुर के गुच्छों जैसे प्रतीत होते हैं। प्रत्येक वायु-कोष्ठिका कोष चारों ओर से सूक्ष्म रक्त केशिकाओं से घिरा होता है। रक्त केशिकाएँ भी श्वसनिकाओं जैसी ही सूक्ष्म होती हैं। इसी स्थान पर गैसों का आदान-प्रदान होता है। रक्त केशिकाएँ उत्तकों से लायी हुई कार्बन-डाई-ऑक्साइड (CO_2) को वायुकोषों में छोड़ देती हैं तथा वहाँ से ऑक्सीजन (O_2) को ग्रहण कर लेती हैं।

10.5 श्वसन क्रिया के प्रकार

एक वयस्क व्यक्ति आराम की स्थिति में प्रति मिनट 10 से 15 बार श्वास लेता है। इस प्रक्रिया में वह प्रत्येक बार लगभग 500 मि.ली. से 1 लीटर तक हवा भीतर लेता है तथा उतनी ही हवा बाहर निकालता है। इसी वायु में ऑक्सीजन भी उपस्थित होती है, जिसे प्राणवायु भी कहा जाता है। श्वसन क्रिया को मुख्य रूप से दो भागों

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

में बांटा जाता है। पहला बाह्य श्वसन (External Respiration or Pulmonary Ventilation) तथा दूसरा अंत: श्वसन (Internal Respiration)।

10.5.1 बाह्य श्वसन (Pulmonary Ventilation)

यह दो मुख्य क्रियाओं से मिलकर होता है– श्वास अंदर लेना प्रश्वास (Inspiration) व श्वास बाहर छोड़ना उच्छ्वास (Expiration)। यह प्रक्रिया मूलत: फुफ्फुसों में ही सम्पन्न हो जाती है। जब हम श्वास लेते हैं तब वायु में उपस्थित ऑक्सीजन को रक्त द्वारा शोषित कर लिया जाता है और रक्त में उपस्थित गैसों को फुफ्फुसों में छोड़ दिया जाता है, जो श्वास के साथ हमारे शरीर से बाहर निकाल दी जाती है।

10.5.1.1 श्वसन प्रक्रिया— श्वसन प्रक्रिया में मुख्य रूप से तीन प्रकार की पेशियाँ कार्य करती हैं–

(i) तनुपट (Diaphragm),

(ii) अन्त:पर्शुका पेशी (Intercostel Muscle),

(iii) हंसली (Clavicular Muscle)।

उपरोक्त पेशियों के संकुचित होने पर तनुपट नीचे खिसकता है, वक्षस्थल फैल जाता है तथा कंधे थोड़े ऊपर उठ जाते हैं, जिसके फलस्वरूप वक्षगुहा का आयतन बढ़ जाता है और फेफड़ों में वातावरण में उपस्थित वायु कम दबाव के कारण भर जाती है। इस क्रिया को प्रश्वास कहते हैं। इस प्रक्रिया में सर्वप्रथम वायु नाक के दोनों छिद्रों से लेकर गले तथा स्वरयंत्र में होती हुई श्वासनली में पहुंचती है। श्वासनली से श्वसनी, श्वसनिकाओं द्वारा फुफ्फुस में उपस्थित वायुकोषों में पहुंचती है। वहाँ रक्त तथा आई हुई वायु में गैसों का आदान-प्रदान होता है। कुछ समय पश्चात् जब ये तीनों पेशियाँ फैलती हैं तो वक्षगुहा पर दबाव डालती है व उसे सिकोड़ देती हैं। इसी दबाव से फेफड़ों में उपस्थित वायु नासागुहाओं के रास्ते बाहर आ जाती है। इस क्रिया को उच्छ्वास कहते हैं। सम्मिलित रूप से यह प्रक्रिया श्वासोच्छ्वास कहलाती है।

10.5.2 अन्त: श्वसन अथवा ऊतकीय श्वसन

यह प्रक्रिया ऊतकों के स्तर पर होती है। रक्त कोशिकाएँ वायु से अवशोषित ऑक्सीजन को सभी ऊतकों तक पहुंचाती हैं तथा ये उत्तक अपनी सभी विषाक्त गैसों को रक्त में छोड़ देते हैं।

10.5.2.1 गैसों का विनिमयन

बहुत कम ऑक्सीजन (O_2) और कार्बन-डाई-ऑक्साइड (CO_2) प्लाज्मा में घुलकर रक्त द्वारा कोशिकाओं तक पहुंचती है। ज्यादातर O_2 रक्त के RBC के साथ रासायनिक संघटक बनकर ही ऊतकों तक पहुंचती है। लगभग 4.6 ml O_2 प्रति 100 ml रक्त में फेफड़ों के भीतर मिलती है। O_2 लाल रक्त कणिकाओं के साथ विसरण क्रिया से मिलकर ऑक्सीहिमोग्लोबिन का रूप ले लेती है। यहाँ यह RBC में उपस्थित हिमोग्लोबिन के Fe^{2+} आयन के साथ जुड़ जाती है। एक Fe^{2+} के साथ एक O_2 का अणु जुड़ सकता है। इस प्रकार एक हिमोग्लोबिन में उपस्थित चार Fe^{2+} आयनों के साथ चार O_2 अणु जुड़ सकते हैं। इस प्रकार सामान्य अवस्था में 100ml रक्त 2.2ml O_2 ऑक्सीहिमोग्लोबिन क्रिया द्वारा तथा 0.17ml O_2 प्लाज्मा में घोलकर ऊतकों में छोड़ता है।

ऊतकों में उपस्थित कार्बन-डाई-ऑक्साइड (CO_2) भी लाल रक्त कणिकाओं में विसरण क्रिया द्वारा पहुंचती है। प्रत्येक 100ml लगभग 3.7ml CO_2 ऊतकों से लेता है। कुछ CO_2 प्लाज्मा में घुल जाती है। लगभग 70 प्रतिशत CO_2 RBC में जाकर पानी के साथ क्रिया करके कार्बोनिक अम्ल का निर्माण करती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

$$CO_2 + H_2O \rightleftharpoons H_2CO_3$$

इस क्रिया में कार्बोनिक एनहाईड्रेज एन्जाइम उत्प्रेरक का काम करता है। लाल रक्त कणिकाओं में कार्बोनिक अम्ल बाइकारबोनेट में परिवर्तित हो जाता है।

$$H_2 + CO_2 \rightleftharpoons H^+ + HCO_3$$

कुछ मात्रा में बाइकारबोनेट लाल रक्त कणिकाओं में रहता है। बाकी प्लाज्मा में रहता है और इसी में यह फेफड़ों तक पहुंचता है।

बचा हुआ 30 प्रतिशत CO_2 हिमोग्लोबिन के साथ जुड़ता है और कार्बोक्सिहिमोग्लोबिन का रूप ले लेता है।

ये पूरी प्रक्रिया चाहे O_2 का परिवहन हो, चाहे CO_2 का एक दाब पर निर्भर करता है, जिसे पार्सियल प्रेसर (Partial Pressure) कहते हैं। ये दो प्रकार का है– ऑक्सीजन को ले जाते समय जो दाब होता है, उसे PO_2 और कार्बन-डाई-ऑक्साइड को रक्त में मिलाने के समय PCO_2 कहलाते हैं। निम्न सारणी में विभिन्न स्थानों के दाबों को दर्शाया गया है, जिसके कारण O_2 और CO_2 रक्त में घुलते हैं।

श्वसन की गैसों के पार्सियल दाब (MMHg)

गैस	प्रश्वासित वायु	वायुकोष्ठिकीय वायु	उच्छवासित वायु	धमनीय रक्त	शिरा रक्त
ऑक्सीजन	158	100	116	95	40
कार्बन-डाई-ऑक्साइड	0.3	40	32	40	46
नाइट्रोजन	596	573	565	573	573

10.6 श्वसन तंत्र के कार्य

1. गैसों का विनिमय (Gaseous Exchange)।
2. उत्सर्जन (Excretion)।
3. अवशोषण (Absorption)।
4. स्रवण (Secretion)।
5. आवाज उत्पादन (Production of Voice)।
6. घ्राण केन्द्र (Centre of Smell)।
7. छींक व खांसना (Sneez & Cough)।
8. जल तथा अम्लक्षार संतुलन (Water and Acid-base Balance)।
9. रक्त परिसंचरण तथा लसिका तंत्र पर प्रभाव (Effect on Blood Circulation and Lymphetic System)।

10.7 श्वसन प्रक्रिया से ऊर्जा नियोजन में प्रेक्षाध्यान का योगदान

श्वसन क्रिया द्वारा शरीर को प्राणवायु के रूप में ऑक्सीजन उपलब्ध कराई जाती है जो रक्त प्रवाह के साथ शरीर की हर कोशिका को पहुंचाई जाती है। वहाँ इसकी मदद से पोषक तत्त्वों को विखण्डित करके ऊर्जा का उत्पादन होता है जो तमाम शारीरिक और मानसिक क्रियाओं में उपयोग में लाई जाती है। श्वास और प्रश्वास

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सम्पूर्ण श्वसन क्रिया के दो महत्त्वपूर्ण अंग होते हैं। श्वास के द्वारा जब वायु फेफड़ों में भरी जाती है उसकी दीवार में अनवरत प्रवाहित रक्त के अन्दर हीमोग्लोबिन के द्वारा ऑक्सीजन अवशोषित कर ली जाती है तथा रक्त के अन्दर से कार्बन-डाई-ऑक्साइड (जो समस्त कोशिकाओं से एकत्र करके लाई जाती है), बाहर निकाल दी जाती है। इसे ही गैसों का आदान-प्रदान कहा जाता है। इसके अतिरिक्त श्वास-प्रश्वास की प्रक्रिया को सम्पादित करने के लिए हंसली, पसली और तनुपट (डायाफ्राम) की पेशियों को काम करना (फैलना-सिकुड़ना) पड़ता है जिसमें ऊर्जा खर्च होती है।

प्रेक्षाध्यान की पद्धति में श्वास प्रेक्षा के अन्तर्गत दो क्रियाऐं की जाती हैं—दीर्घश्वास प्रेक्षा एवं समवृत्ति श्वास प्रेक्षा। दीर्घश्वास प्रेक्षा में श्वास को धीरे-धीरे लंबा करके लिया जाता है और यथा सम्भव वायु को फेफड़ों में रोका जाता है तत्पश्चात् उसी धीमी गति से श्वास को छोड़ा जाता है और फेफड़ों को पूरा खाली कर दिया जाता है। यह अभ्यास ऊर्जा नियोजन में तीन प्रकार से सहायक सिद्ध होता है। प्रथम—श्वसन क्रिया में संलग्न पेशियों को एक ही बार, धीरे-धीरे काम करके, अधिकतम मात्रा में ऑक्सीजन उपलब्ध हो जाती है। हमारे फेफड़ों की कुल क्षमता 5 से 6 लीटर होती है। सामान्यतया हम एक बार श्वास लेने में 2-3 लीटर ही वायु ग्रहण करते हैं। इस प्रकार दीर्घ श्वास के अभ्यास से कम ऊर्जा खर्च करके अधिक मात्रा में ऑक्सीजन मिलती है जो अन्ततोगत्वा ऊर्जा संरक्षण में सहायक होती है। दूसरा—जब हम वायु को फेफड़ों के अन्दर यथा सम्भव लम्बी अवधि के लिए रोकने का अभ्यास करते हैं तो गैसों के आदान-प्रदान के लिए अधिक समय मिलता है और पर्याप्त मात्रा में ऑक्सीजन रक्त में पहुंचती है। तीसरा—कार्बन-डाई-ऑक्साइड एक विषैली गैस है जिसे यथा शीघ्र शरीर से बाहर निकालना ही श्रेयस्कर होता है। गैसों के आदान-प्रदान के लिए जब पर्याप्त समय मिलता है तो रक्त के अन्दर से अधिक से अधिक मात्रा में कार्बन-डाई-ऑक्साइड बाहर आ जाती है। रक्त शुद्ध हो जाता है जो हमारे स्वास्थ्य सम्वर्द्धन में सहायक होता है। समवृत्ति श्वास प्रेक्षा के अन्तर्गत श्वास लेने और छोड़ने के क्रम को दोनों नथुनों से नियमित करते हैं। बायें नथुने से धीरे-धीरे श्वास लेते हैं, यथा सम्भव वायु को अन्दर रोकते हैं और फिर दायें नथुने से धीरे-धीरे श्वास को छोड़ते हैं। इसके बाद दायें नथुने से श्वास लेते हैं, रोकते हैं और फिर बायें नथुने से छोड़ते हैं। इस क्रम को निरन्तर चलाते हैं और इस बात का बराबर ध्यान रखा जाता है कि जितना समय श्वास लेने में लगे, उतना ही समय श्वास छोड़ने में लगे। समवृत्ति श्वास प्रेक्षा के अभ्यास से दो प्रमुख लाभ होते हैं। एक श्वास-प्रश्वास की लय-ताल बनी रहती है जिससे ईड़ा और पिंगला नाड़ियों के कार्यों में सन्तुलन बना रहता है; शरीर को उत्तेजनात्मक प्रतिक्रियाओं, जैसे—क्रोध, आवेग एवं आवेश से बचाने में सहायता मिलती है। ये सारी क्रियाऐं शरीर के विभिन्न अंगों एवं पेशियों को अधिक काम करने को बाध्य करती हैं जिससे ऊर्जा अनावश्यक रूप से व्यय होती है। समवृत्ति श्वास प्रेक्षा के अभ्यास के परिणाम स्वरूप ऊर्जा का अपव्यय रोकने में सहायता मिलती है। दूसरा एक समान गति से काम करने के कारण श्वसन पेशियों के बीच सामन्जस्य और सन्तुलन बना रहता है जिससे ऊर्जा व्यय का सन्तुलन तो रहता ही है साथ में उन पेशियों की क्षमता भी बनी रहती है और उनकी उम्र बढ़ती है। उनमें टूट-फूट की आशंका भी नहीं होती। इस प्रकार हम देखते हैं कि श्वास प्रेक्षा का प्रयोग शरीर में ऊर्जा नियोजन में सहायक होता है।

10.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

निबंधात्मक प्रश्न

1. श्वसन तंत्र की मूलभूत संरचना का वर्णन करें।
2. श्वसन प्रक्रिया एवं ऊर्जा नियोजन में प्रेक्षाध्यान के योगदान को स्पष्ट करें।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. अन्त:श्वसन एवं बाह्य श्वसन के अंतर को स्पष्ट करें।
2. श्वसन प्रक्रिया क्या है समझाइये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. फुफ्फुस के कार्यों का वर्णन करें।
2. श्वसनी एवं श्वसनिका में अंतर स्पष्ट करें।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. श्वसन के कितने भाग होते हैं?
   (क) एक (ख) दो
   (ग) तीन (घ) पांच ( )
2. स्वरयंत्र के बाद वाले वायु मार्ग को कहते हैं?
   (क) ग्रसनी (ख) श्वसनीका
   (ग) श्वासनली (घ) श्वसनी ( )
3. श्वासनली कहाँ पर द्विशाखित होती है?
   (क) दूसरे कशेरुक के बाद
   (ख) फुफ्फुस के समीप
   (ग) चौथे एवं पांचवें कशेरुक के समीप
   (घ) पांचवे कशेरुक के समीप ( )
4. श्वसनिका का प्रसारित भाग कहलाता है—
   (क) प्रकोष्ठ (ख) प्रघाण
   (ग) वायुकोष्ठिका कोष (घ) इनमें से कोई नहीं ( )
5. फुफ्फुसों का रंग होता है?
   (क) लाल (ख) पीला
   (ग) हल्का गुलाबी (घ) नीला ( )

सन्दर्भ पुस्तकें :

1. Principles of Anatomy and Physiology—G.J. Tortora & N.P. Anagnastakos
2. शरीर क्रियाविज्ञान—डॉ. प्रमिला वर्मा, डॉ. कान्ति पाण्डेय
3. मानव शरीर रचना एवं क्रियाविज्ञान—डॉ. राजेश दीक्षित
4. जीवन विज्ञान की रूपरेखा—मुनि धर्मेश
5. जन स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण—प्रो. सुधा नारायणन्

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–11 : पाचन तंत्र की मूलभूत संरचना, प्रमुख कार्य, पाचन प्रक्रिया एवं ऊर्जा नियोजन में प्रेक्षाध्यान का योगदान

संरचना

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 पोषण

11.3 पाचन तंत्र

11.3.1 पोषण नाल

11.3.1.1 मुख

11.3.1.2 ग्रसनी

11.3.1.3 ग्रासनली

11.3.1.4 आमाशय

11.3.1.5 क्षुद्रांत्र या छोटी आंत

11.3.1.6 वृहदांत्र

11.3.2 पाचन तंत्र के सहायक अंग

11.3.2.1 यकृत

11.3.2.1.1 आंतरिक रचना

11.3.2.1.2 यकृत के कार्य

11.3.2.2 अग्नाशय

11.3.2.3 पित्ताशय

11.3.2.4 प्लीहा

11.3.2.4.1 प्लीहा के कार्य

11.4 पाचन क्रिया

11.5 प्रेक्षाध्यान के द्वारा ऊर्जा नियोजन

11.6 अभ्यास प्रश्नावली

11.0 उद्देश्य

1. पोषण तथा पोषक तत्त्वों के बारे में आप समझ सकेंगे।
2. पाचन तंत्र के अवयवों को समझ सकेंगे।
3. विभिन्न पाचक रसों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगें।
4. भोजन का पाचन किस प्रकार होता है? समझ सकेंगे।
5. यकृत व अग्नाशय के कार्यों को समझ सकेंगे।
6. एन्जाइम क्या होते हैं?
7. प्रेक्षाध्यान द्वारा ऊर्जा का नियोजन कैसे हो सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

11.1 प्रस्तावना

मानव शरीर अनेक पदार्थों से बना है। अगर इन पदार्थों को तीन प्रकार का मानें तो एक प्रकार के पदार्थ से हमारी अस्थियाँ बनी हैं, दूसरे प्रकार के पदार्थ से पेशियाँ और तीसरे प्रकार के पदार्थ से त्वचा। मानव शरीर एक क्रियाशील यंत्र है। शरीर के भीतर निरंतर कुछ न कुछ होता ही रहता है। गतिशीलता के फलस्वरूप शरीर के भीतर कुछ न कुछ सदा घिसता, टूटता-फूटता तथा पुनः निर्मित होता रहता है। पुनः निर्माण कार्य के पदार्थ हमें भोजन से ही प्राप्त होते हैं। भोजन द्वारा ही शरीर में कुछ ऐसे पदार्थों की आवश्यकता की पूर्ति भी होती है जिनकी यद्यपि अत्यन्त अल्पमात्रा में आवश्यकता होती है तथापि वे भोजन को शरीर में स्वांगीकरण करने के लिए तथा शरीर के तंत्रों को सही हालत में और सक्षम बनाए रखने के लिए जरूरी होते हैं। भोजन से ही हमें वह शक्ति मिलती है, जिससे हमारे शरीर के विभिन्न अंग अपना-अपना कार्य सुचारू रूप से करते हैं। स्वस्थ एवं सशक्त शरीर का निर्माण उचित पोषण पर ही निर्भर करता है। इसलिए भोजन को जीवन की नितान्त आवश्यकताओं में प्रथम स्थान दिया गया है।

11.2 पोषण

डी.एफ. टर्नर महोदय ने पोषण का अर्थ इस रूप में रखा है–''पोषण उन प्रक्रियाओं का संयोजन है, जिनके द्वारा जीवित प्राणी अपनी क्रियाशीलता को बनाए रखने के लिए तथा अपने अंगों की वृद्धि एवं उनके पुनर्निर्माण हेतु आवश्यक पदार्थों को प्राप्त करता है और उनका उचित उपभोग करता है।'' इस तरह हम देखते हैं कि भोजन के विभिन्न कार्यो को करने की सामूहिक प्रक्रियाओं का नाम ही पोषण है।

मावन शरीर की सारी क्रियाएँ आत्मीकरण (स्वांगीकरण), असमानीकरण, उपचय और अपचय जैसी रासायनिक अभिक्रियाओं के द्वारा होती हैं, जो कि शरीर में निरंतर एक साथ होती रहती हैं। इन क्रियाओं के सम्पादन के लिए शक्ति या ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है। साधारणत: किसी वस्तु का निर्माण करने के लिए या किसी काम को पूरा करने के लिए किसी दूसरी चीज को तोड़ना-फोड़ना पड़ता है उसी तरह शरीर की इन क्रियाओं के फलस्वरूप ऊतकों तथा कार्यरत शरीर की कोशिकाओं में विघटन भी होता है तथा ऊर्जा की खपत भी होती है, जिसे पेशियों में होने वाली रासायनिक क्रिया से उष्मा या ताप के रूप में प्राप्त किया जाता है। भोजन में उपस्थित पोषक तत्त्वों– कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, खनिज लवण, विटामिन, जल एवं रेशे के द्वारा शरीर में ऊर्जा निर्माण, तापमान सन्तुलन, कोशिकाओं का पुन: निर्माण एवं वृद्धि आदि कार्य किये जाते हैं। पोषक तत्त्वों का अवशोषण, पोषक तत्त्वों के उपभोग के साथ जुड़ा होना चाहिए। यदा-कदा अवशोषण ज्यादा होने एवं उपभोग की मात्रा कम होने पर उसको संग्रहीत कर लिया जाता है। ऐसी स्थिति में परिणामत: भार में वृद्धि होती है। जब अवशोषण कम एवं उपभोग ज्यादा होता है तो परिणामत: भार में कमी आती है, क्योंकि जो संग्रहीत है वो भी उपयोग में ले लिया जाता है। अवशोषण एवं उपभोग दोनों की मापन इकाई जूल है। सामान्यत: एक व्यक्ति 24 घंटों में 12,500 K.C. (3000 कि. कैलोरी) खर्च करता है। हमारे भोजन में पोषक तत्त्व अपने मूल रूप में नहीं होते हैं, अत: हम जो भोजन ग्रहण करते हैं, उसे पाचन क्रिया के द्वारा शरीर के उपयोग में लाने के लिए विभिन्न यांत्रिक एवं रासायनिक क्रियाओं के द्वारा जल में घुलनशील सरल यौगिक रूप में बदला जाता है, जिससे कि उसमें उपस्थित पोषक तत्त्वों को रक्त द्वारा अवशोषित किया जा सके। रक्त के माध्यम से ही पोषक तत्त्वों की आपूर्ति प्रत्येक कोशिका को की जाती है तथा वहाँ पर निर्मित विभिन्न त्याज्य पदार्थों का उत्सर्जन भी रक्त की सहायता से ही किया जाता है।

पाचन क्रिया के दौरान होने वाली रासायनिक प्रक्रियाओं में विभिन्न पाचक रस एवं उनमें उपस्थित एन्जाइम अपना सहयोग देते हैं। इस प्रक्रम में खनिज लवण, विटामिन तथा जल में तो कोई रासायनिक परिवर्तन नहीं होता है अर्थात् इन्हें जिस रूप में ग्रहण किया जाता है, उसी रूप में अवशोषित कर लिया जाता है, किन्तु

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन एवं वसा को सरल रासायनिक रूप में परिवर्तित किया जाता है। जैसे— कार्बोहाइड्रेट को ग्लूकोज, फ्रक्टोज, शुक्रोज आदि में; प्रोटीन को अमीनो अम्ल में तथा वसा को वसीय अम्लों एवं ग्लिसरीन में। अन्त में अपचित अविलेय भोजन को मल के रूप में शरीर से उत्सर्जित कर दिया जाता है।

11.3 पाचन तंत्र (Digestive System)

पाचन क्रिया के सम्पादन में शरीर के जो अंग अपना सहयोग देते हैं, उन्हें सम्मिलित रूप से पाचन तंत्र कहा जाता है। पाचन तंत्र को सामान्यत: दो भागों में वर्गीकृत किया जाता है— पोषण नाल एवं सहायक अंग।

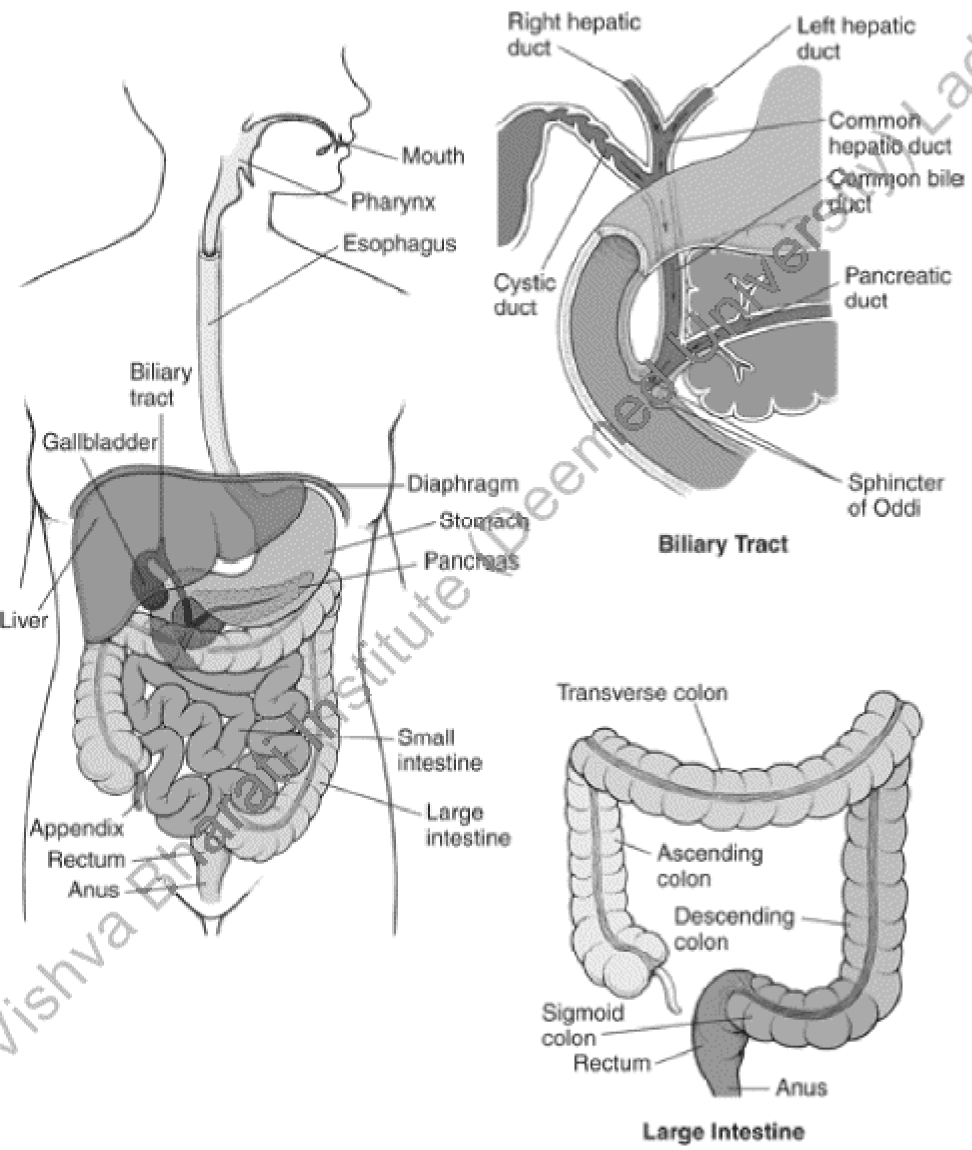

Digestive System

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

11.3.1 पोषण नाल (Alimentary Canal)

पोषण नाल जिसे पाचन नाल या आहार नाल भी कहते हैं, समग्र रूप से मुख से लेकर गुदा द्वार तक लगभग 9 से 10 मीटर लम्बी अनैच्छिक पेशियों से बनी होती है, जिसकी चौड़ाई अलग-अलग स्थान पर अलग-अलग होती है। यह संरचना एवं कार्य के आधार पर मुख, ग्रसनी, ग्रासनली, आमाशय, पक्वाशय, क्षुद्रांत्र, वृहद्रांत्र आदि में विभेदित रहती है तथा पाचक रसों को बनाने वाली विभिन्न ग्रंथियाँ भी इससे जुड़ी रहती हैं।

11.3.1.1 मुख

पोषण नाल के आरम्भिक भाग को मुख कहते हैं। इसे दो हिस्सों में विभेदित किया जा सकता है— मसूड़ों तथा दांतों एवं होंठ और गालों के बीच के स्थान को मुख प्रधाण (Vestibule) कहा जाता है तथा शेष मेक्सिलरी तथा दाँत से लेकर ग्रसनी तक के अण्डाकार भाग को मुख गुहा (Oral cavity) कहते हैं। मुख गुहा के ऊपरी भाग को तालु (Palate) कहते हैं। इसका अग्र भाग कठोर तालु (Hard Palate) तथा पिछला भाग कोमल तालु (Soft Palate) कहलाता है। कठोर तालु सामने की तरफ मैक्सिलरी अस्थि तथा पीछे की तरफ पैलेटाइन अस्थियों द्वारा बनता है। कोमल तालु तन्तु उत्तक तथा म्यूकस कला का बना होता है। इसके मध्य से एक कोमल मांसल भाग मुख गुहा में लटका रहता है जो काकलक या यूवुला (Uvula) कहलाता है। इसके समीप ही मुख गुहा की बगल की दीवारों में तने हुए दो चाप स्तम्भ होते हैं, जो गलतुंडिका स्तम्भ (Pillors of Fauces) कहलाते हैं। इनके मध्य दोनों ओर पेशी और म्यूकस कला के दोहरे स्तर में गलतुंडिका या टांसिल ग्रंथियाँ धसी रहती हैं। मुख गुहा के निचले तल में हायड अस्थि से जुड़ी हुई जिह्वा या जीभ (Tongue) होती है। मुख गुहा की दोनों बगल की दीवारें गालों से बनी होती हैं, जिसके भीतर की तरफ म्यूकस झिल्ली का स्तर होता है। मुख की भीतरी गुहा को नाल तोरणिका (Fauces) कहते हैं। दो ओष्ठ या होठ (Lips) इसका बाहरी द्वार या छिद्र बनाते हैं। होठ वक्त्र मंडलिका (Orbicularis Oris) पेशियों द्वारा नियंत्रित होते हैं।

दांत, जीभ तथा लार ग्रंथियाँ मुख के पाचन से संबंधित मुख्य अंग हैं—

(i) दांत (Teeth) : दाँत मुंह के भीतर ऊपरी एवं निचले जबड़ पर स्थित रहते हैं। हमारा ऊपरी जबड़ा स्थिर होता है किन्तु निचला जबड़ा चलायमान होता है। इसी वजह से भोजन को चबाने की क्रिया संभव हो

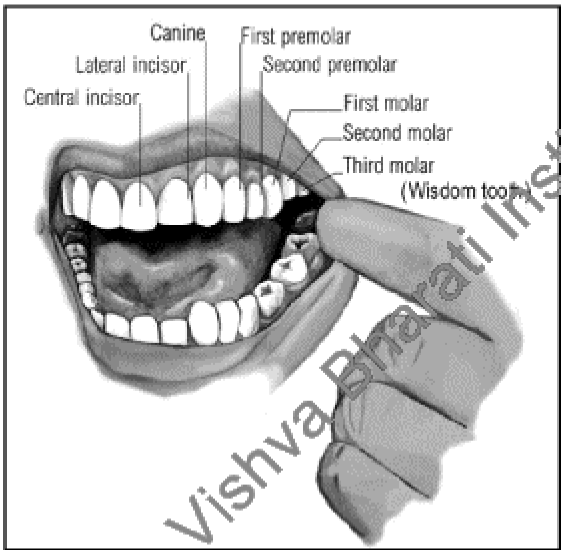

(Teeth)

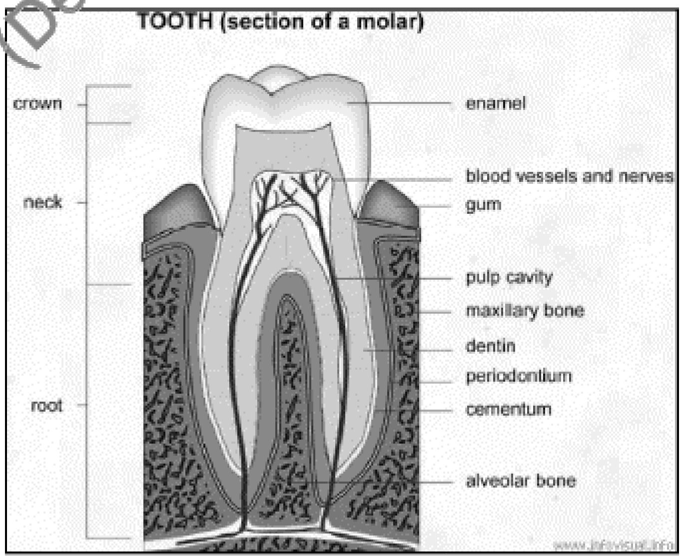

(Tooth)

पाती है। संरचना के आधार पर दाँत के तीन भाग होते हैं— शिखर (Crown), ग्रीवा (Neck) तथा मूल (Root)। मसूड़ों से बाहर निकले हुए हिस्से को शिखर कहते हैं जबकि एक या अधिक शाखाओं के रूप में जबड़े की एलविओलर प्रोसेस में धंसे हुए भाग को मूल कहते हैं, दोनों के बीच के हिस्से को जो मसूड़ों से ढका रहता है, ग्रीवा कहते हैं। दाँत का बाहरी कठोर पीला सफेद भाग डेन्टीन (Dentine) से बना होता है तथा इसके बीच के सजीव भाग मज्जा गुहा (Pulp Cavity) में संयोजी उत्तक, रक्त वाहिकाएँ तथा तंत्रिकाएँ रहती हैं। शिखर का भाग सफेद रंग की अत्यन्त कठोर परत (सबसे कड़ा प्राणी उत्तक) से ढका रहता है, जिसे इनेमल (Enamel) कहते हैं। मूल को ढकने वाली श्वेत पर्त सीमेण्ट (Cement) कहलाती है, जो कि अस्थि से मिली रहती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

कार्य के आधार पर दाँत चार प्रकार के होते हैं–

(1) कृत्तक या इन्साइजर्स (Incizors) : भोजन के टुकड़े करने वाले ये दाँत मुँह के अग्र भाग में स्थित होते हैं।

(2) रदनक या कैनाइनस (Canines) : वे दाँत जिनका शिखर नुकीला होता है, ये भोजन को फाड़ने में सहायक होते हैं।

(3) अग्र चर्वणक या प्रिमोलर्स (Premolars) : इन्हें बाइकस्पिड्स (Bicuspids) भी कहा जाता है, क्योंकि इनमें भोजन को चबाने के लिए दो हिस्से (cusps) होते हैं।

(4) चर्वणक या मोलर्स (Molars) : ये भोजन को चबाने के काम आते हैं। इनमें चार या पाँच हिस्से (Cusps) होते हैं।

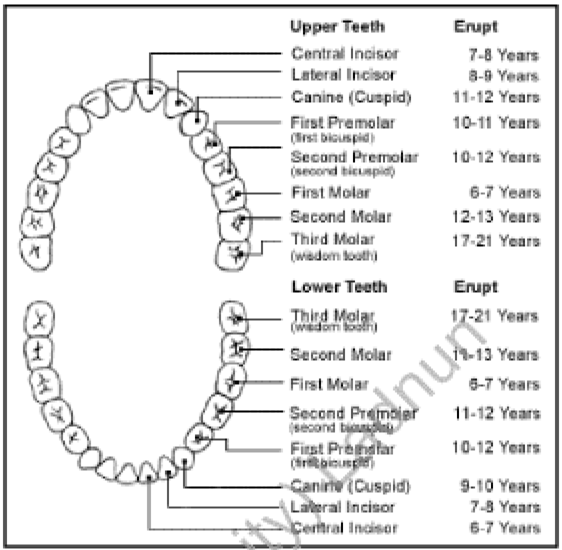

हमारे जीवन में दाँत दो बार निकलते हैं– एक बाल्यावस्था में जिन्हें दूध के दाँत (Deciduous), प्राथमिक दाँत (Primary Teeth) या अस्थाई दाँत (Temporary Teeth) कहते हैं। दूसरे स्थाई दाँत (Permanent Teeth)। अस्थाई दाँतों की कुल संख्या 20 होती है। सामान्यत: 6 साल की आयु में निचले जबड़े के मध्यवर्ती दो इन्साइजर्स सबसे पहले निकलते हैं तथा 2 वर्ष की आयु तक सभी 20 अस्थाई दाँत निकल आते हैं। 6 वर्ष की आयु के बाद सामान्यत: दूध के दाँत झड़ने लगते हैं और स्थाई दाँत निकलने लगते हैं, जिनकी कुल संख्या 32 होती है। सर्वप्रथम अस्थाई दाँत के पीछे एक मोलर निकलता है। इसके बाद 7-8वें वर्ष में इन्साइजर्स, 9-10वें वर्ष में प्रीमोलर अन्तिम मोलर, जिसे अक्कल दाढ़ (Wisdom Teeth) भी कहते हैं, 20 वर्ष की आयु के बाद विभिन्न चरणों में निकलता है और कभी-कभी नहीं भी निकलता।

दाँत भोजन को चबाने के साथ-साथ हमारी सुन्दरता एवं वाणी की स्पष्टता में भी सहायक होते हैं–

प्राथमिक दाँत (Deciduous Teeth)						स्थाई दाँत (Permanent Teeth)							
Left (Upper)			Right (Upper)			Left (Upper)				Right (Upper)			
2	1	2	2	1	2	3	2	1	2	2	1	2	3
(M)	(C)	(I)	(I)	(C)	(M)	(M)	(PM)	(C)	(I)	(I)	(C)	(PM)	(M)
2	1	2	2	1	2	3	2	1	2	2	1	2	3

(ii) जिह्वा (Tongue) : जिह्वा या जीभ एक पेशीय अंग है, जो स्वाद ज्ञानेन्द्रिय का कार्य करती है। साथ ही भोजन को चबाने एवं निगलने हेतु गति प्रदान करती है तथा वाणी की उत्पत्ति में सहायक होती है। यह मुख के तल में स्थित होती है तथा दो प्रकार की पेशियों– बहिरस्थ (Extrinsic) तथा अन्त:स्थ (Intrinsic) से मिलकर बनी होती है। यह हाइआइड अस्थि तथा मेंडिबल से जुड़ी रहती है। जीभ के नीचे की तरफ अर्द्धचन्द्राकार श्लेष्मिक झिल्ली फ्रेनुलम होती है, जो इसे मुख तल से जोड़े रखती है। सामान्य स्थिति में जीभ निचले दाँतों के सम्पर्क में रहती है तथा आगे से गोलाकार होती है किन्तु मुख से बाहर निकालने पर इसका अगला सिरा नुकीला हो जाता है। जीभ की निचली सतह चिकनी एवं ऊपरी सतह खुरदरी होती है तथा इसके ऊपर छोटे-छोटे उभार होते हैं, जिन्हें ग्रहांकुर या पैपिली (Papillae) कहते हैं। इनमें स्वाद कलियों (Taste buds) के अलग-अलग हिस्सों पर हमें अलग-अलग स्वाद का संज्ञान होता है। जैसे आगे– मीठा, किनारों पर– खट्टा, पीछे– कड़वा तथा नमकीन स्वाद का अनुभव पूरी जीभ पर।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(iii) लार ग्रंथियाँ (®livary Glands)— हमारे मुख में कुल 6 लार ग्रंथियाँ पाई जाती हैं, जो जोड़े के रूप में होती हैं तथा नलिका के माध्यम से अपने स्राव को मुँह में स्रावित करती हैं।

(a) कर्ण-पूर्व ग्रंथियाँ (Parotid) : ये ग्रंथियाँ सबसे बड़ी होती हैं तथा कान के नीचे की तरफ स्थित होती हैं। इन ग्रंथियों की नलिका ऊपरी जबड़े के द्वितीय मोलर दाँत के पास गाल में खुलती है।

(b) जिह्वाधर ग्रंथियाँ (Sublingual) : जीभ के तल में फ्रेनुलम के दोनों तरफ एक-एक जिह्वाधर ग्रंथि होती है। ये आकार में सबसे छोटी होती हैं तथा इनसे निकली अनेक वाहिकाएँ मुख के तल में लार स्रावित करती हैं।

(c) सब-अधोहनु ग्रंथियाँ (Submandibular) : ये ग्रंथियाँ निचले जबड़े के नीचे ग्रीवा में स्थित रहती हैं तथा अपने स्राव को मुख के तल में स्रावित करती हैं।

लार ग्रंथियों के स्राव को लार (®liva) कहते हैं, जिसका स्रवण प्रतिवर्ती क्रिया के रूप में होता है अर्थात् भोजन के मुंह में आने या उसको देखने या गंध लेने से तथा कभी-कभी उसके विचार मात्रा से होने वाली अनुभूति के फलस्वरूप लार ग्रंथियों द्वारा लार स्रावित की जाती है। लार एक क्षारीय तरल पदार्थ है, जिसमें काफी मात्रा में पानी होता है, साथ ही इसमें सोडियम, पोटेशियम एवं कैल्शियम बाईकार्बोनेट और टायलिन (Ptyalin) नामक एन्जाइम भी होता है जो कि पके हुए स्टार्च या कार्बोहाइड्रेट को माल्टोज और डेक्सट्रिन में परिवर्तित कर देता है।

लार भोजन को रासायनिक पाचन के साथ-साथ उसे नम, मुलायम तथा चिकना भी बनाती है, साथ ही मुँह और दाँतों को साफ रखने में भी सहयोग देती है।

11.3.1.2 ग्रसनी (Pharynx)

मुख के बाद भोजन ग्रसनी में प्रवेश करता है। ग्रसनी नाक तथा मुख के पीछे पाँच ईंच लम्बी पेशी निर्मित एक कीलनुमा संरचना होती है, जो तीन भागों में विभेदित होती है—

1. नासा ग्रसनी (Naso pharynx),
2. मुख ग्रसनी (Oral pharynx),
3. स्वर यंत्र ग्रसनी (Laryngeal pharynx)।

ग्रसनी का चौड़ा भाग ऊपर की ओर कपाल आधार से शुरू होता है तथा संकीर्ण भाग नीचे छठीं ग्रीवा, कशेरुका तक जाता है। इसके नीचे ग्रासनली (oesophagus) तथा श्वास प्रणाली (Trachea) का प्रारम्भ होता है। ग्रसनी में सात नलियों के द्वार (Opening) खुलते हैं— दो कर्ण कंठनली नासा ग्रसनी की दीवार में, दो पश्च नासा रंध्र (Posterior Nares) नासिका गुहा के पीछे खुलती हैं। इसके अलावा एक-एक द्वार मुख गुहा, स्वर यंत्र और ग्रासनली का होता है।

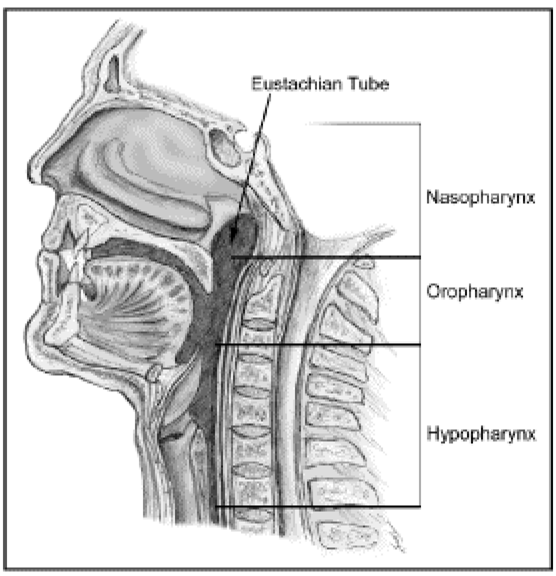

ग्रसनी की भित्ति तीन स्तरों— श्लेष्मा, तंतु तथा पेशी स्तर की बनी होती है। अंतस्थ श्लेष्मा स्तर नाक, मुंह तथा कर्ण कंठ की रेखा के साथ मिला रहता है। ग्रसनी में दो प्रकार की उपकला होती है। ऊपरी भाग में श्वसन उपकला,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

जो नाक के साथ संबंधित रहती है तथा ग्रसनी के निम्न भाग में स्तरित (Stratified) उपकला, जो मुंह की उपकला से मिली रहती है। तंतु स्तर श्लेष्मा तथा पेशीपटल के बीच में रहता है। ग्रसनी की प्रमुख पेशी संकोचनी पेशी (Constrictor Muscle) की होती है, जो भोजन के ग्रसनी में पहुंचने पर संकुचित होती है और चबाए हुए भोजन को ग्रासनली में धकेलती है। इस समय कोमल तालु ऊपर उठकर पश्च नासा गुहा को बन्द कर देता है।

11.3.1.3 ग्रासनली (Oesophagus)

ग्रासनली ग्रसनी से प्रारम्भ होती है तथा लगभग 25 से.मी. लंबी पेशीय नली होती है और ग्रीवा से होती हुई रीढ़ की दसवीं कशेरूका के पास स्थित मध्यच्छदा से होकर उदर गुहा में प्रवेश कर आमाशय में खुलती है। यह श्वास प्रणाली के पीछे तथा मेरुदण्ड के सामने स्थित होती है। इसमें तीन सतहें होती हैं। बाहरी परत मोटी तथा मांसपेशी की होती है। उसके भीतर की परत सौत्रिक तंतुओं से बनी होती है। सबसे भीतर वाली सतह श्लेष्मिक झिल्ली की होती है, यह अनैच्छिक पेशियों की होती है, जिससे निरंतर श्लेष्मा निकलती रहती है। उपरी सतह की पेशियों में दो प्रकार के सूत्र होते हैं। एक प्रकार का सूत्र नली की लम्बाई के साथ-साथ रहता है और दूसरा नली के चारों तरफ लिपटा रहता है। ग्रासनली का ऊपरी दो तिहाई भाग ऐच्छिक पेशियों का तथा निचला एक तिहाई भाग अनैच्छिक पेशियों का बना होता है तथा वेगस नर्व के द्वारा इसका तंत्रिकीय नियंत्रण रखा जाता है। ग्रास को ग्रासनली में जाने के लिए श्वासनाल को पार करना पड़ता है। श्वासनली के ऊपर वाले भाग में एक ढ़क्कन लगा रहता है, जिसे उपजिह्वा या कंठच्छद (Epiglottis) कहते हैं। भोजन निगलते समय यह श्वास नाल को बंद कर देता है। और भोजन को ग्रासनली में जाने देता है। ग्रासनली से भोजन क्रमानुकुंचन या लहरी गति (पेरिस्टॉल्टिक क्रिया) द्वारा नीचे भेजा जाता है। इससे करीब 9 सैकण्ड में भोजन ग्रसनी से आमाशय तक पहुंच जाता है। क्रमानुकुंचन एक प्रकार की गति है, जो पाचन क्षेत्र में होती रहती है। निगलने की हर क्रिया में क्रमानुकुंचन की एक प्रतिवर्ती तरंग उत्पन्न होती है। जो ग्रासनली की पूरी लंबाई में फैल जाती है। ग्रसनी की बाहरी भित्ति का उद्दीपन शीघ्र ही ऐसी तरंग पैदा कर देता है, जो मस्तिष्क को संवेदन भेजता है, जिससे प्रेरक तंत्रिकाओं द्वारा ग्रासनली की भित्ती की वृत्ताकार पेशियों को प्रेरणा मिलती है। क्रमानुकुंचन ग्रासनली की दीवार के फैलने से भी प्रतिवर्ती रूप से उत्पन्न होती है। हर क्रमिक तरंग द्वारा भोजन आमाशय के निकट पहुंचता है। ग्रासनली के ऊपरी दो-तिहाई भाग में क्रमानुकुंचन तंत्रिकाओं द्वारा होता है, जो उनकी भित्तियों की पेशियों को सक्रिय करती हैं। ग्रासनली के निचले एक-तिहाई भाग में चिकनी पेशियाँ होती हैं। जिनकी क्रिया भित्तियों में स्थित तंत्रिकाओं द्वारा नियंत्रित होती है। क्रमानुकुंचन तरंग ग्रासनली तथा आमाशय के मुहाने पर स्थित पेशीय-वलय संवरणी (Sphincter) तक निगले गए भोजन से पहले ही पहुंच जाती है। कुंचित संवरणी स्थिर हो जाती है, और भोजन आमाशय में चला जाता है। ग्रास संवरणी में एक सैकेण्ड से भी कम समय में चला जाता है, क्योंकि ग्रासनली में दाब के साथ भेजा जाता है और ग्रासनली में क्रमानुकुंचन क्रिया नहीं होकर ग्रास गुरूत्वाकर्षण क्रिया के प्रभाव से नीचे चला जाता है।

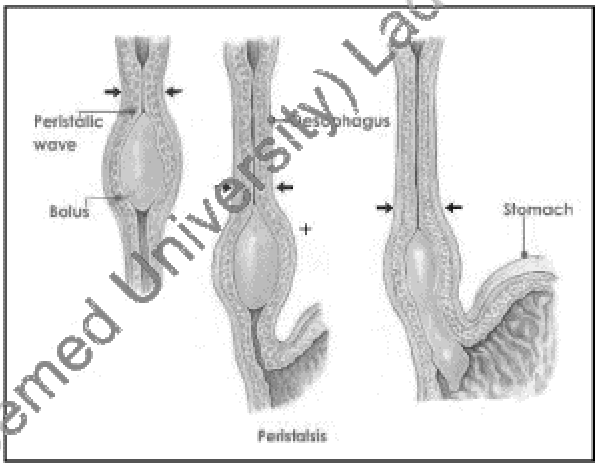

11.3.1.4 आमाशय (Stomach)

यह आहार नाल का सबसे चौड़ा एवं पाचन क्रिया का प्रमुख अंग है। ग्रासनली के बाद से शुरू होकर आमाशय छोटी आंत तक जाता है। ग्रासनली की तरफ के भाग को कार्डिएक ओपनिंग (Cardiac opening)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

तथा छोटी आंत की तरफ के भाग को पायलोरिक ओपनिंग (Pyloric opening) कहते हैं, इस द्वार पर एक वाल्व होता है, जो भोजन को आमाशय से छोटी आंत में तो जाने देता है किन्तु छोटी आंत से वापस आमाशय में नहीं आने देता। आमाशय उदर के सर्वोपरि भाग में मध्यच्छदा पेशी तथा हृदय के नीचे मध्य रेखा से कुछ बाएँ हटकर रहता है। इसकी आकृति इसके अंदर की वस्तुओं और इसकी भित्ति की पेशीय सक्रियता के अनुसार

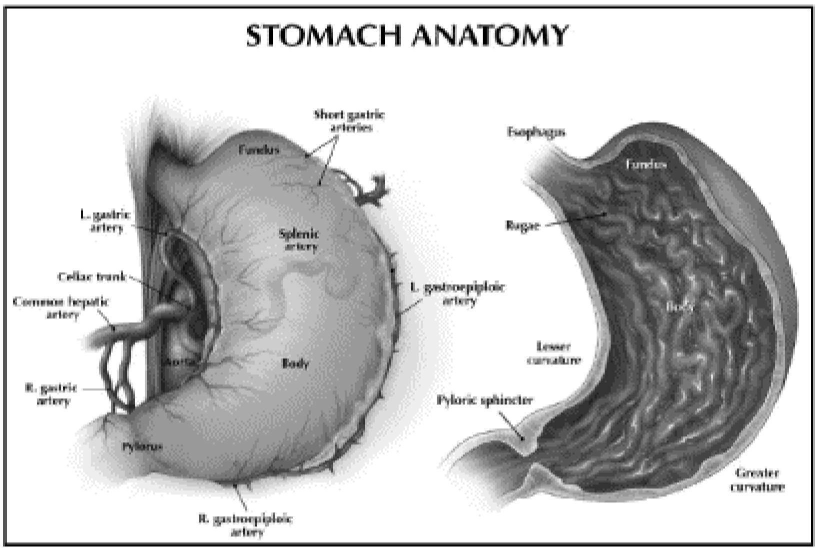

होती है। इसका आकार मशक के समान होता है। इसकी लम्बाई दाहिनी ओर से बांयी ओर लगभग 26 से.मी. तथा चौड़ाई 10 से.मी. होती है। इसका बायाँ भाग बड़ा मोड़ (Greatre Curvature) तथा दायाँ भाग छोटा मोड़ (Lesser Curvature) बनाता है। आमाशय के तीन भाग होते हैं— ऊपरी भाग फन्डस (Fundus), मध्य का भाग पिंड (Body) तथा निम्न भाग जठर निर्गम कोटर (Pyloric antrum) कहलाता है। आमाशय की दीवार तीन तहों से बनी रहती है। बाह्य स्तर बिल्कुल चिकना और चमकता हुआ लाल होता है। जो पर्युदर्या आवरण (Peritoneum) से ढ़का रहता है। भीतरी स्तर श्लेष्मिक कला (Mucous Membrane) का बना हुआ रहता है, जिसमें अनेक सिकुड़ने पड़ी रहती हैं। पृष्ठ भाग की तह चिकनी होती है, क्योंकि इस सतह से तरल पदार्थ निकलता रहता है। बीच वाली तह में अनेक स्वाधीन पेशियाँ रहती हैं। इसकी पेशीय भित्ति में पेशी तंतुओं के तीन स्तर होते हैं अर्थात् अनुदैर्ध्य (Longitudinal), वर्तुल (Circular) और तिर्यक् (Obdique) जो सूत्र लंबे रूप में फैले रहते हैं, वे हृदय-द्वार से पक्वाशय तक चले जाते हैं। आड़े सूत्र अधिकतर हृदय के पास रहते हैं। वृत्ताकार सूत्र आमाशय में वृत्त के रूप में फैले रहते हैं। ये पक्वाशयिक द्वार की ओर अधिक रहते हैं। आमाशय पेशियों की क्रिया से ही आमाशय अपनी अंतर्वस्तुओं को पचाता, पीसता एवं मथता है। भोजन के कण इस तरह और अधिक छोटी कणिकाओं में तोड़कर पाचक रसों के साथ अच्छी तरह से मिला दिये जाते हैं, इससे ग्रास अच्छी तरह उलट-पुलट जाता है। भोजन के प्रवेश से पहले आमाशय निष्क्रिय होता है। इसकी गुहा अस्तित्त्व हीन होती है, क्योंकि इसकी भित्तियाँ एक साथ सिकुड़ी हुई होती हैं। केवल बुहन ग्रथियाँ (Glands of fundus) गैस के कारण फैली हुई रहती है। भोजन के भीतर आने के फलस्वरूप भोजन के भार से भित्तियाँ अलग अलग हो जाती हैं। इसके बाद क्रमानुकुंचन तरंग आमाशय के आधे निचले भाग से प्रारंभ होती है और जठर-निर्गम-क्षेत्र की ओर चली जाती है। जठर-निर्गम क्षेत्र में क्रमानुकुंचन तरंग अधिक होती है। आमाशय के भीतर की श्लेष्मिक कला की सिलवटों में अत्यंत सूक्ष्म ग्रथियाँ होती हैं। उन ग्रथियों से जठर-रस बन कर नलिकाओं द्वारा आमाशय में आता रहता है। ग्रथियों की सूक्ष्म नलिकाओं के मुख श्लेष्मिक कला पर खुलते हैं। आमाशय में तीन प्रकार की ग्रथियाँ रहती हैं। जो निम्न हैं—

1 हार्दिकी ग्रथियाँ (Cardiac Glands)— ये हार्दिकी द्वार पर स्थित नलिकाकार ग्रंथियाँ क्षारीय प्रकृति के स्राव स्रावित करती हैं।

2 बुघ्न ग्रथियाँ (Fundus Glands)— आमाशय में इनकी प्रधानता होती है। इनमें तीन प्रकार की कोशिकाएँ होती हैं— पेप्टिक कोशिकाएँ पेप्सिन, ऑक्सिंटिक कोशिकाएँ अम्ल तथा अन्य कोशिकाएँ म्यूसिन का निर्माण करती हैं।

3. पक्वाशय ग्रथियाँ (Pyloric Glands)— ये क्षारीय म्यूकस उत्पन्न करती हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इन ग्रंथियों से निकलने वाले स्राव को जठर-रस कहते हैं। यह आम्लिक तरल रंगहीन पदार्थ है। इसमें दो विशेष घटक पाए जाते हैं। पेप्सिन नाम का प्रकिण्व और हाइड्रोक्लोरिक अम्ल। इसके अतिरिक्त रेनिन तथा गेस्ट्रिक लाइपेज नामक एन्जाइम भी पाये जाते हैं।

सामान्य वयस्क के आमाशय की क्षमता 1.5 कि.ग्रा. भोजन रखने की होती है। आमाशय में भोजन पहुंचने के 15-20 मिनट में जठर रस उत्पन्न हो अपना कार्य प्रारम्भ कर देता है तथा साधारण भोजन पूर्ण रूप से 5-6 घंटों में पच जाने के बाद धीरे-धीरे छोटी आंत में प्रवाहित कर दिया जाता है। आमाशय में पचित अम्लीय प्रकृति के तरल भोजन को काइम (Chyme) कहा जाता है।

11.3.1.5 क्षुद्रांत्र या छोटी आंत (Small Intestine)

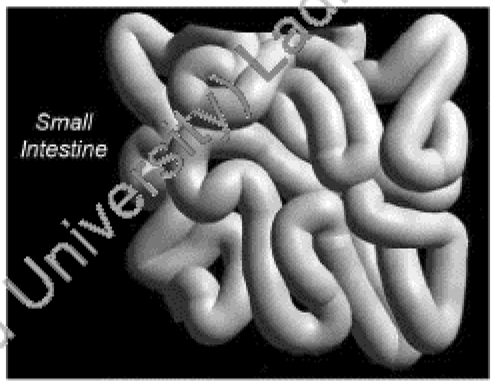

छोटी आंत एक कुण्डलित नली है, जो आमाशय के दाहिने छोर अर्थात् पक्वाशयिक द्वार से बड़ी आंत के प्रारंभिक भाग, जहाँ इलिओ-सीकल वाल्व होता है तक फैली रहती है। इसकी लम्बाई लगभग 6.5 मीटर और चौड़ाई 2.5 से.मी. होती है। छोटी आँत उदर (Abdomen) के नाभि प्रदेश (Umbeilical Region) में स्थित होती है तथा बड़ी आंत से घिरी रहती है। इसके तीन भाग हैं—

(i) पक्वाशय (Duodenum),
(ii) मध्यांत्र (Jejunum),
(iii) शेषांत्र (Ileum)।

(i) पक्वाशय या ग्रहणी (Duodenum)

आमाशय के दूसरे छोर से जो क्षुद्रांत्र प्रारंभ होती है। उसके प्रथम लगभग 25 से.मी. लंबे अर्ध चंद्र (C) के समान भाग को पक्वाशय या ग्रहणी कहते हैं। यह छोटी आंत का सबसे चौड़ा और स्थिर भाग होता है, जो अग्नाशय के शीर्ष को घेरे रहता है। पक्वाशय में दो विशेष पाचक रस— 1. यकृत रस- पित्त (Bile) और 2. अग्नाशय या क्लोम रस। क्लोम, पित्ताशय तथा यकृत वाहिनियों के संयुक्त छिद्र, जिसे हिपेटो-पैन्क्रिऐटिक एम्पुल कहते हैं, के द्वारा पक्वाशय में आकर मिल जाते हैं और अपनी क्रियाओं द्वारा भोजन को पचाने में सहायता देते हैं। ये रस अन्य रसों की अपेक्षा बहुत प्रबल होते हैं और कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन तथा वसा तीनों घटकों को पूर्ण रूप से पचाने में सहायक होते हैं। ये रस क्षारीय होते हैं। इनके प्रभाव से आमाशय से आया हुआ आम्लिक भोजन अपनी अम्लता समाप्त कर देता है। आमाशय से आया हुआ भोजन जब पक्वाशय में अम्ल विमुक्त हो जाता है, तो आमाशय से पक्वाशय में पुन: भोजन आने लगता है। इस प्रकार आमाशय से भोजन पक्वाशय में नियंत्रित रूप से आता है।

(ii, iii) मध्यांत्र एवं शेषान्त्र (Jejunum & Ileum)

छोटी आंत के बाकी बचे हुए ऊपरी 2/5 भाग को जेज्यूनम तथा शेष 3/5 भाग को इलियम कहते हैं। दोनों ही आमाशय की पिछली दीवार से पेरिटोनिअम की एक मुड़ी हुई तह, जिसे मेसेन्टरी कहते हैं, के द्वारा जुड़े रहते हैं।

11.3.1.6 वृहदांत्र

वृहदांत्र या बड़ी आंत पाचन-प्रणाली का अंतिम भाग है, जो इलियम के अंत से गुदा तक विस्तृत है। यह लगभग 1.5 मीटर लम्बी होती है तथा छोटी आंत से लगभग दुगुनी मोटी होती है और छोटी आंत को चारों तरफ से घेरे रहती है। छोटी आंत तथा बड़ी आंत के मध्य इलिओसीकल कपाट होता है, जो छोटी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

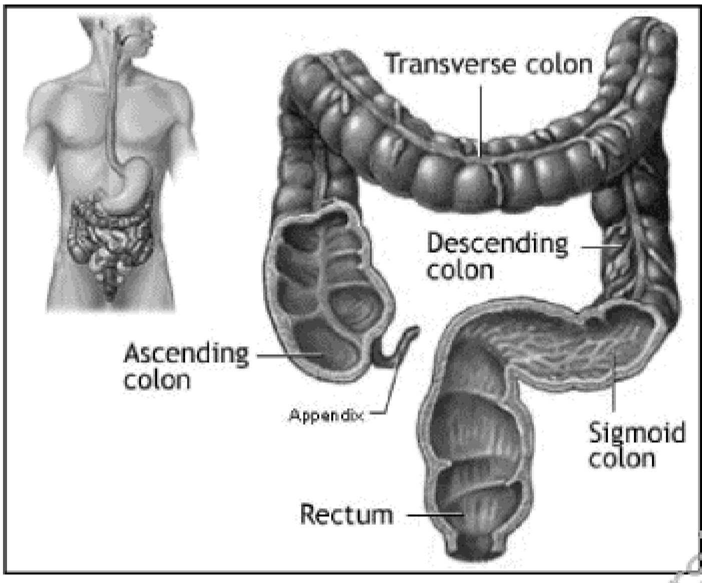

Large Intestine

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आंत से बड़ी आंत में भोजन को जाने देता है किन्तु वापस नहीं लौटने देता। यह उदर के दाहिने श्रोणि खोल (Iliac Fossa) से प्रारंभ होती है।

इस नलिका के बाहरी पृष्ठ पर फीते के समान तीन रचनाएँ होती हैं, जिनकी लंबाई आन्त्र की अपेक्षा कम होने के कारण आन्त्र स्थान-स्थान पर फूली रहती है। इन फूले हुए स्थानों के कारण भोजन के बचे हुए भाग को आगे बढ़ने में देर लगती है।

वृहदांत्र या बड़ी आंत को तीन भागों में बांटा जा सकता है—

(i) अंधांत्र (Caecum)

क्षुद्रांत्र और वृहदांत्र के संधिस्थल पर ठीक नीचे की ओर थोड़ा सा फूला भाग निकला हुआ होता है, जिसे 'अंधांत्र' कहते हैं। यह दाहीने इलिअक फोला में स्थित होता है। इसके नीचे के भीतरी कोने से एक उंगली के समान 2 से 20 से.मी. लम्बी बंद नली निकली रहती है, जिसे उंडुक या आंत्र पुच्छ (Vermiform Appendix) कहते हैं। भोजन के पाचन में इसका कोई योगदान नहीं होता किन्तु इसमें लसिका उत्तक अधिक संख्या में होते हैं। सड़े हुए भोजन के एकत्रित होने से यह पुच्छ संक्रमित, सूजा हुआ और बढ़ा हुआ हो सकता है। इस अवस्था को उन्डुक पुच्छ शोथ (Appendicitis) कहते हैं।

(ii) कोलन (Colon)

कोलन लगभग 1.5 मीटर लम्बा और 6 से.मी. चौड़ा होता हैं। उदर गुहा में अलग-अलग स्थान पर यह अलग-अलग नाम से जाना जाता है। यह अंधांत्र के ऊपर वाले छोर से प्रारंभ होकर ऊपर की ओर चढ़कर यकृत के नीचे तक पहुंचता है। यह उर्ध्वगामी या आरोही वृहदांत्र (Ascending Colon) कहलाता है। यह 15 से.मी. लम्बा तथा सीकम से संकरा होता है। यकृत पर पहुंच कर यह बांयी ओर घूम जाता है और सीधे आमाशय के नीचे उदर की बांयी तरफ प्लीहा के पास उसके नीचे तक पहुंचता है। यह भाग अनुप्रस्थ वृहदांत्र (Transverse Colon) कहलाता है। यह लगभग 50 से.मी. लम्बा होता है। जब यह नीचे की तरफ घूम जाता है तो इसे अधोगामी या अवरोही वृहदांत्र (Descending Colon) कहते हैं, जो लगभग 25 से.मी. लम्बा होता है। पेडु के बाएँ भाग में पहुंचने पर यह कुछ फैल जाता है। इस भाग को 'श्रोणिगत वृहदांत्र' (Pelvic Colon) या Sigmoid Colon कहते हैं।

(iii) रेक्टम या मलाशय (Rectum)

इसे 'सीधी आंत' भी कहते हैं। कोलन के छोर से प्रारंभ होकर गुदा नाल तक लगभग 13 से.मी. लम्बे भाग को मलाशय कहते हैं। यह बड़ी आंत का निम्नतम भाग होता है तथा मूत्रस्थली के पीछे रहता है। गुदा नाल लगभग 4 से.मी. लम्बी होती है तथा इसके अंत पर वृत्ताकार पेशी तंतुओं की संख्या बहुत अधिक हो जाती है जिससे ये एक संवरणी पेशी बना देते हैं, जो मल द्वार को बंद रखती हैं। इसे मल द्वार (Anus) कहते हैं। मल द्वार के बाहरी भाग को 'बाह्य संवरणी' (External Sphinctor) कहते हैं। यह ऐच्छिक पेशियों से बना है। इसलिए मल त्याग करने की इच्छा होने पर यह खुल जाता है। अन्यथा बंद रहता है। छोटी आंत के समान ही बड़ी आंत की भित्ति भी चार स्तरों की बनी होती है। बड़ी आंत की श्लेष्मिक कला छोटी आंत की तुलना में अधिक चिकनी होती है तथा इसके भीतर अंकुर नही होते लेकिन म्यूकस स्रावी ग्रंथियाँ तथा गोब्लेट कोशिकाएँ होती हैं। वृहदांत्र के भीतर अंकुर नहीं होते तथा श्लेष्मिक कला में सिलवटें बहुत कम होती हैं।

बड़ी आंत का कार्य पानी का अवशोषण करना और अर्धद्रवीय पदार्थों को कुछ अर्धठोस मल या विष्ठा में परिवर्तित करना होता है। खाद्य पदार्थों को बड़ी आंत से बाहर निकलने में प्रायः 12 से 20 घंटे लगते हैं।

11.4 पाचन तंत्र के सहायक अंग

पाचन क्रिया का सम्पादन यद्यपि पोषण नाल या आहार नाल में होता है किन्तु इसके रासायनिक पाचन के लिए कुछ स्राव अत्यन्त आवश्यक होते हैं, जिनका निर्माण पोषण नाल में नही होता। यद्यपि उपकला उत्तक से बनी हुई ग्रंथियों में होता है, जो पोषण नाल के बाहर किन्तु उदर गुहा में स्थित रहती हैं तथा नलिकाओं के माध्यम से अपने स्रावों को पोषण नाल के अन्दर स्रावित करती हैं।

11.4.1 यकृत (Liver)

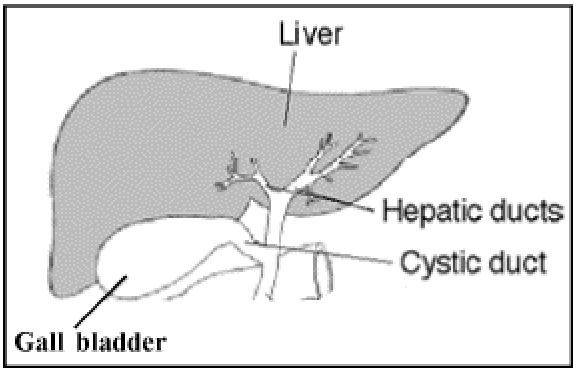

यकृत या जिगर शरीर की सबसे बड़ी ग्रंथि है। यह उदर गुहा के दाहिने ऊपरी भाग में मध्यच्छद पेशी (Diaphroagm) के नीचे स्थित होती है। इसका अधिकांश भाग पसलियों द्वारा सुरक्षित रहता है। कभी-कभी निचला किनारा पसलियों के नीचे महसूस किया जा सकता है। इसका भार लगभग 1.4 कि.ग्रा. होता है तथा करीब-करीब पूरे हाइपोकॉन्डियम को घेरे रहता है। यकृत लाल सा भूरे रंग का अवयव है। इसकी आकृति सामने से देखने पर त्रिकोणी (Triangular) होती है। साधारणतः यकृत बढ़ने पर नीचे की ओर विस्तार करता है, जिसका निचला किनारा अंतिम पर्शुका के नीचे त्वचा के ऊपर से ही अंगुली द्वारा दबाकर महसूस किया जा सकता है। इसमें दो खंड होते हैं। दाहिना भाग बाएँ की अपेक्षा अधिक बढ़ा होता है। दाहिना खण्ड दाहिने कोलिक फ्लेक्सर और दाहिने गुर्दे पर तथा बायाँ खण्ड आमाशय पर स्थित रहता है। यकृत में पित्त का निर्माण होता है, जिसे पित्ताशय में संग्रहीत किया जाता है तथा आवश्यकतानुसार ग्रहणी (Duodenum) में वाहिका के माध्यम से पहुंचाया जाता है।

11.4.1.1 आंतरिक रचना

यकृत की आंतरिक रचना बड़ी जटिल होती है। पूरा यकृत षट्कोणीय आकृति के अनेक खण्डों में विभक्त रहता है, जिन्हें हेपॅटिक लोब्यूल्स कहते हैं। इनका व्यास लगभग एक मिलीमीटर होता है। ये यकृत के अत्यन्त सूक्ष्म विभाग होते हैं। तथा यकृत कोशिकाओं द्वारा निर्मित होते हैं। यकृत का ऊपरी पृष्ठ उत्तल होता है जबकि निम्न पृष्ठ अनियमित होता है। मुख्य वाहिकाओं का प्रवेश तथा निकास निम्न पृष्ठ से ही होता है, जिनमें यकृत

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

धमनी (Hepatic Artory), प्रतिहारिणी शिरा (Portal vein), यकृत वाहिनी (Hepatic Duct) तथा यकृत शिराएं (Hepatic vein) प्रमुख हैं। इनमें यकृत धमनी और प्रतिहारिणी शिरा तो यकृत में रक्त को लाने का कार्य करती हैं तथा यकृत शिरा रक्त को यकृत से बाहर लाती है। तथा यकृत वाहिनी यकृत से पित्त को बाहर लाती है।

11.4.1.2 यकृत के कार्य

शरीर की सबसे बड़ी ग्रंथि यकृत शरीर का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग है। यह एक रासायनिक कारखाना है, जहाँ प्रतिहारिणी शिरा द्वारा लाये गए भोजन के पोषक तत्त्व अंतर्वर्ती चयापचय के द्वारा ऊतकों के उपयोग योग्य बनते हैं। यकृत का प्रमुख कार्य रक्त-पाचन, चयापचय आदि से संबंधित रहता है। यकृत के इसके अतिरिक्त और भी बहुत सारे कार्य हैं, जैसे—

1. पित्त स्राव,
2. यूरिया का निर्माण,
3. विषमारण-क्रिया,
4. ग्लायकोजिन बनाना तथा संग्रह करना,
5. यकृत में रासायनिक पदार्थ हिपारिन बनाना,
6. यकृत में फाइब्रिनोजन का बनाना,
7. अनेक पदार्थों का संग्रहालय,
8. मृत लाल रक्त कणिकाओं को रक्त से अलग करना,
9. शरीर के तापक्रम को बनाए रखना,
10. रक्त क्षीणता को दूर करना।

11.4.2 अग्नाशय

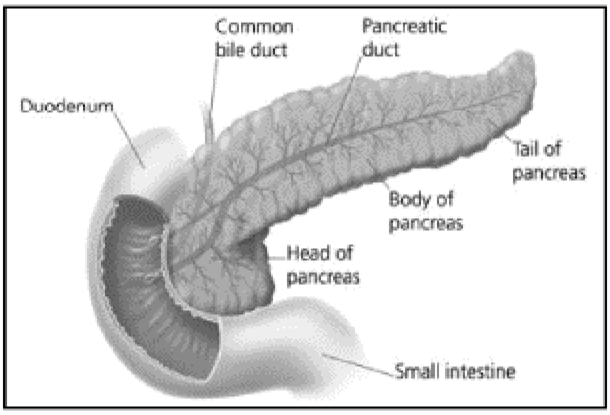

अग्नाशय एक लंबी तथा चपटी ग्रंथि है, जिसकी बनावट लार ग्रंथियों से मिलती जुलती है। इसकी लंबाई 12-15 से.मी. तथा चौड़ाई 4 से.मी. के लगभग है। इसका शीर्ष या अग्र भाग (Head) मोटा होता है तथा डयूऑडीनम के मोड़ में स्थित रहता है तथा पिछला संकरा भाग (Body) इन दोनों के बीच स्थित रहता है। उदर में यह आमाशय के पीछे की ओर स्थित है। इस तरह यह आमाशय से ढ़का रहता है। इसके ऊपर शहतूत की भांति छोटे-छोटे उभार रहते हैं। तथा इसका रंग मटमैला रहता है। अग्न्याशयी वाहिका (Pancreaticduct) संकरे भाग से शुरू होकर पूरे अग्नाशय में फैली रहती है तथा इसमें अनेक छोटी वाहिकाएँ आकर मिल जाती हैं। अग्नाशय के अग्र भाग पर अग्नाशयी वाहिका, पित्त वाहिका से जुड़ती है और प्राय: दोनों एक साथ हेपॅटोपेन्क्रिएँटिक एम्प्यूला के स्थान पर ड्यूऑडीनम में खुलती हैं। अग्नाशय लोब्यूल्स का बना होता है, जिनमें दो प्रकार की कोशिकाएँ– 1. कोष्ठिका कोशिकाएँ (Alveolar Cells), 2. द्विपक कोशिकाएँ (Islet Cells) पाई जाती हैं। अग्नाशय एक मिश्रित ग्रंथि है। बहिर्स्रावी ग्रंथि के रूप में इसकी कोष्ठिका कोशिकाओं के द्वारा पाचक रस अग्नाशयिक रस का निर्माण किया जाता है, जबकि प्रत्येक आइलेट दो प्रकार की कोशिकाओं एल्फा एवं बीटा से बना होता है तथा अन्त:स्रावी ग्रंथि के रूप में कार्य करती है। एल्फा-कोशिकाओं से ग्लूकागॉन (Glucagon) हार्मोन बनता है, जो ग्लाइकोजन को ग्लूकोज में परिवर्तित होने की प्रक्रिया को नियंत्रित करता है। बीटा कोशिकाएँ इन्सुलिन नामक हार्मोन का निर्माण करती हैं, जो ग्लूकोज को

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

ग्लाइकोजन में बदलने का कार्य करता है। इन्सुलिन की गुणवत्ता या मात्रा में कमी होने पर शरीर में शर्करा की मात्रा बढ़ जाती है और यह बढी हुई शर्करा मूत्र के माध्यम से बाहर आने लगती है। इस स्थिति को मधुमेह रोग कहते हैं।

अग्नाशय रस में भोजन के सभी अवयवों को पचाने की शक्ति होती है। इस रस में चार प्रकिण्व– ट्रिप्सिन, स्ट्रियाप्सिन, एमाइलेप्सिन तथा रेनिन होते हैं, जो आमाशयिक रस द्वारा नहीं पचे हुए कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा आदि पर अपना कार्य करते हैं।

11.4.3 पित्ताशय

पित्ताशय उल्टी नाशपाती के आकार वाला थैलीनुमा अंग है, जो यकृत के दाहिने खण्ड की निचली सतह से लटका रहता है तथा जिसमें यकृत से निकला पित्त एकत्रित रहता है। यह पित्त-भरी अवस्था में नीले रंग का दिखता है। यह औसतन 4 इंच लंबा होता है तथा इसमें 50 से 60 मि.ली. पित्त एकत्रित हो सकता है। इसे तीन भागों बुहन (Fundus), पिण्ड (Body) तथा ग्रीवा (Neck) में विभेदित किया जा सकता है। इसकी भित्ति तीन स्तरों की बनी होती है–

1. बाहरी पर्युदर्या परत (Outer Peritoneum Layer),
2. मध्य का आरेखित पेशीय उत्तक तथा
3. भीतरी श्लेष्मल कला (Mucos Membrane)।

यह श्लेष्मक कला स्तम्भाकार उपकला कोशिकाओं की बनी होती है, जो म्यूसिन उत्पन्न करती है तथा जल एवं इलेक्ट्रोलाइट्स को अवशोषित कर लेती हैं। पित्त लवणों तथा पित्त वर्णकों को ये कोशिकाएँ अवशोषित नहीं कर पाते। इस कारण पिताशय में पित्त सान्द्रित हो जाता है।

पित्ताशय से पित्तवाहिनी (Bile Duct) निकलती है। जो कि श्लेष्मक कला की बनी होती है। चुंकि पित्ताशय वाहिनी (Cystic Duct) औसतन 1½ इंच लंबी होती है और यह पित्ताशय की ग्रीवा से निकलकर यकृत वाहिनी में मिल जाती है और इस तरह पित्त वाहिनी बनाती है। पित्त वाहिनी पित्त को अपने में एकत्रित रखती है। भोजन करने के आधा घंटे के उपरांत पित्त ग्रहणी (Duodenum) में चला जाता है और पित्ताशय में संकुचन हो जाता है। इस तरह पित्त-प्रवाह निरंतर नही रहता। जब ग्रहणी में पाचन होना बंद हो जाता है, तब यकृत से पित्त नलिका से होकर पित्ताशय में पहुंचता है और वहाँ एकत्रित होता रहता है। भोजन करने के बाद ही वह ग्रहणी में जाता है। इसका स्वाद कड़वा होता है। यह एक क्षारीय तरल पदार्थ है और यकृत से स्रावित होता है। एक औसतन स्वस्थ मनुष्य में प्रतिदिन लगभग 500 से 1000 मि.ली. पित्त स्रावित होता है। पित्त में 86 प्रतिशत जल रहता है। इसके अतिरिक्त इसमें पित्त लवण, पित्त रंग, कोलेस्ट्रोल, श्लेष्मा, लेसिथिन, म्यूसिन, सोडियम बाइकार्बोनेट तथा अन्य पदार्थ रहते हैं। पित्त का स्राव निरंतर चलता रहता है परंतु मांस तथा वसा खाने के बाद यह अधिक स्रावित होता है।

पित्त में दो प्रकार के रंग होते हैं। एक को पित्तारूण (Bilru bin) और दूसरे को पित्तहरित (Biliverdin) कहते हैं। पित्तहरित पित्तारूण का ही ऑक्सीकृत रूप होता है। पित्त लवण पाचन में सहायता करता है। यह पची हुई वसा (ग्लिसरीन तथा वसीय अम्ल) को अवशोषित करने में सहायता करता है। पित्त में ग्लाइकोटिक और टारोकोलिक अम्लों के सोडियम और पोटेशियम लवण होते हैं।

11.4.4 प्लीहा (Spleen)

प्लीहा एक चपटी दीर्घायताकार (Oblong) बड़ी ग्रंथि है। यह वाहिनी हीन ग्रंथि होती है तथा उदर के ऊपरी बाएँ भाग के कोने में आमाशय और वक्षोदर-मध्यस्थ पेशी के बीच में ही इसकी ऊपरी सतह मध्यच्छद

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

पेशी (Diaphragm) से सटी रहती है। यह बाएँ वृक्क तथा अग्नाशय के पुच्छ को छूती रहती है। यह औसतन 5 इंच लंबी तथा 3 इंच चौड़ी होती है। यह नीलापन लिए लाल रंग की होती है। इसका ऊपरी तल चिकना होता है। तथा भीतरी भाग स्पंज जैसा होता है। स्पंज में रक्त भरा होता है। इस तरह यह रक्त के भंडार का काम करती है। प्लीहा में संयोजक (Connective Tissue) तथा लसीकाभ उत्तक (Lymphoid Tissue) का जाल बिछा रहता है और इसमें अनेक रक्त कोशिकाएँ होती हैं। यह एक संपुटिका (Capsules) से ढ़की रहती है, जो रेशेदार तथा साधारण पेशीय तंतु की बनी होती है। इस पेशीय तंतु में कुछ समय का मध्यान्तर देकर सिकुड़न होती रहती है। जिससे रक्त प्लीहा से बाहर निकलता रहता है और यकृत की ओर जाता है। प्लीहा के नीचे प्लीहा धमनी (Spleen Artery) और प्लीहा शिरा (Spleen Vein) होती है जो अशुद्ध रक्त को क्रमश: ले आती और ले जाती है।

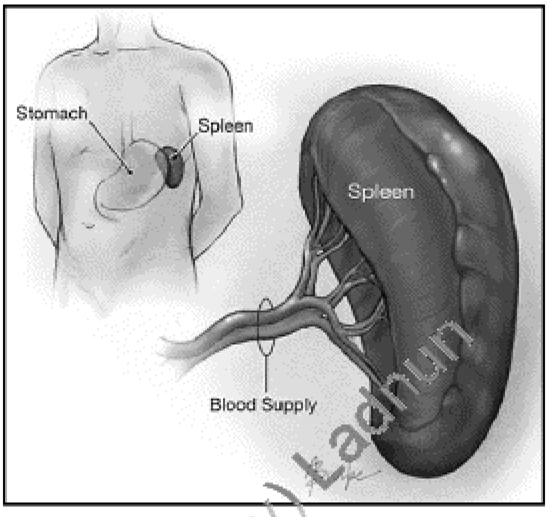

11.4.4.1 प्लीहा के कार्य

प्लीहा में श्वेत रक्त-कणिकाओं का निर्माण होता है और क्षय प्राप्त लाल रक्त कणिकाओं का विनाश होता है यह शरीर की आवश्यकतानुसार रक्त परिसंचरण में रक्त के परिमाण को नियंत्रित करती है। प्लीहा लसीका कोशिकाओं (Lymphocytes) का निर्माण करती है। प्लीहा से एक प्रकार का अंत: स्राव निकलता है। अत: इसे अंत: स्रावी ग्रंथि में सम्मिलित किया जाता है।

11.5 पाचन प्रक्रिया

भोजन हम प्रतिदिन करते हैं। हममें से कुछ लोग शायद केवल दो बार तो कुछ चार या पांच बार। जब हमारे सामने भोजन आता है तो हमारा ध्यान सिर्फ उसी पर केन्द्रित होता है, हम उसको कैसे खा रहे हैं यह हमें नहीं पता रहता, उसको चबाया या नहीं, बस अंदर डाल लिया पर इसके बाद क्या होता है, आंतरिक अवयवों को कितना क्या परिश्रम करना पड़ता है, इस पर हम कभी गौर नहीं करते, अन्यथा हमारे शरीर में होने वाली पाचन क्रिया सुचारू एवं व्यवस्थित ढ़ंग से चल सकती है। हमारे भोजन में काम आने वाले खाद्य-पदार्थ कई प्रकार के पाच्य और अपाच्य पदार्थों के सम्मिश्रण से बने होते हैं और उनसे प्राप्त होने वाले पोषक तत्त्व भी आपस में या अन्य तत्त्वों के साथ मिले जुले रहते हैं। अनेक प्रकार के बन्धक तत्त्व उन्हें इस प्रकार बाधें रखते हैं कि जब तक इनका पृथक्करण न हो जाये यह पोषण प्राप्त कराने में असमर्थ ही रहते हैं। अत: सर्वप्रथम इनका खण्डित होना आवश्यक हो जाता है। खण्डित होने पर यह आर्गेनिक (Organic) पदार्थ अपने सरल स्वरूप में प्रकट हो पाते हैं और तब इन पर पाचक रसों और उनमें होने वाले एन्जाइम्स का असर हो पाता है। तब यह सूक्ष्मतम अंतिम अंशों में विभक्त हो पाते हैं और आंतों की झिल्लियों में प्रविष्ट हो पाते हैं, जहाँ से रक्त धमनियाँ और लसीका वाहक नलिकाएँ इन्हें अपने अंदर लेकर कोशिकाओं तक पहुंचाती हैं।

पोषक तत्त्वों को उनके अंतिम अंशों में विभक्त करने और अवशोषण योग्य बनाने के लिए पाचक अवयवों को दो प्रकार की क्रियाएँ करनी होती हैं— 1. भौतिक और 2. रासायनिक। भौतिक क्रिया में सर्वप्रथम तो पाक क्रिया ही है जिससे खाद्य पदार्थों को विधिवत् पकाने से उनकी सख्ती में नमी और उनके बन्धक तत्त्वों व रेशों की जटिलता में ढ़िलाई लायी जाती है, उनकी कोशिकाएँ फूल जाती हैं, कोशिका भित्ति फट जाती है, स्टार्च आदि भीतरी पदार्थ मुलायम हो जाते हैं और यह आसानी से चबाने योग्य हो जाते हैं। चबाने की दूसरी क्रिया होती है, जिसमें खाद्य पदार्थ अत्यन्त ही छोटे-छोटे कणों में विभक्त हो जाते हैं, और आसानी से निगले जा सकते

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

हैं। निगलने पर जब यह आमाशय में पहुंचते हैं तो तीसरी क्रिया प्रारंभ होती है, जिसमें इनका सम्यक् मन्थन होता है। जिससे यह और छोटे-छोटे कणों में विभक्त होते हैं। मन्थन क्रिया में आमाशय कोशिकाओं से निकला हाइड्रोक्लोरिक एसिड (HCL) विशेष सहयोग प्रदान करता है। जिससे यह और भी सूक्ष्म रूप में विभाजित हो सकें। आमाशय की ही कोशिकाओं से निकला द्रव पदार्थ मन्थन क्रिया में इन भोजन कणों को घोल के रूप में परिवर्तित करता है जिसे 'काइम' कहते हैं। यदि भोजन ठीक से चबाया न जाय तो आमाशय को मन्थन में विशेष परिश्रम करना पड़ता है। मन्थन के समय आमाशय के दोनों ऊपर नीचे के सिरे बंद हो जाते हैं और अच्छा खासा बिलौना लगभग 2-3 घंटे तक होता रहता है।

रासायनिक क्रियाओं में पाचक रस पैदा करने वाली ग्रंथियाँ सक्रिय होकर अपना-अपना रस पैदा करने लगती हैं, जिसे वह मुंह, आमाशय और आंतों में स्रावित करती हैं। इन रसों में अलग-अलग एन्जाइम्स होते हैं जो अलग-अलग पोषक तत्त्वों को उनके अंतिम अंशों में विभक्त कर अवशोषण योग्य बनाते हैं। इन एन्जाइम्स के साथ अलग-अलग विटामिन सहायक एन्जाइम्स का कार्य कर इनकी कार्य क्षमता को बढ़ाते हैं।

पाचक रस ग्रंथियाँ कहाँ-कहाँ स्थित हैं उनमें से कौन-कौन से पाचक रस निकलते हैं, कौन-कौन से एन्जाइम्स होते हैं, और वह किन-किन पोषक तत्त्वों पर अपना प्रभाव डालते हैं यह तालिका नं.-1 से अधिक स्पष्ट हो जायेगा।

मुंह की ग्रंथियों (®livary Glands) से लार निकलती है जिसमें टाइलिन नामक एन्जाइम होता है जिसे सेलीवरी एमाइलेज एन्जाइम भी कहते हैं। यह केवल स्टार्च, कार्बोहाइड्रेट के सम्मिश्रित रूप पर अपना प्रभाव डालता है जिससे यह कुछ अंशों में विभक्त होकर डेक्स्ट्रीन या माल्टोस जैसी डाईसेकराइड शर्करा में परिवर्तित हो जाते हैं पर शायद पूर्ण रूप से नहीं क्योंकि मुंह में इस एन्जाइम को अधिक समय नहीं मिलता। भोजन जल्दी ही आमाशय में निगल लिया जाता है। यदि हम खाली चावल या आलू कुछ देर तक मुँह में चबाते रहें तो हमें मिठास का आभास होता है, जो इस एन्जाइम के प्रभाव के कारण ही स्टार्च से शर्करा बनने से होता है।

आमाशय में मन्थित भोजन पर HCL व गेस्ट्रिक रस का प्रभाव पड़ना प्रारंभ होता है। HCL मंथन में तो सहायक होता ही है पर साथ ही साथ काइम (Chyme) को अम्ल प्रतिक्रिया प्रदान करता है, जिससे गेस्ट्रिक रस का उस पर अच्छा प्रभाव पड़ सके। यह ऐसिड कार्बोहाइड्रेट के कणों को भी अग्रिम विभक्त करता है। जिससे आंतों में पाचक रसों का असर हो सके। इसके अनन्तर यह कृमिनाशक का काम भी करता है। जिससे रोग उत्पन्न करने वाले कीटाणु यदि असावधानी के कारण आमाशय में पहुंच जाय, तो उनका नाश हो सके। कीटाणु यदि अत्यधिक संख्या में हो तो शायद यह उनका संपूर्ण नाश करने में समर्थ न हो पाये। HCL के अनन्तर आमाशय में गेस्ट्रिक रस पेप्सिन व रेनिन एन्जाइम प्राप्त कराता है जो प्रोटीन तत्त्वों को कुछ हद तक विभाजित करते हैं। प्रोटीन प्रोटियोस, पेप्टीन व पेप्टाइड में परिवर्तित होते हैं। रेनिन दूध के प्रोटीन को फाड़कर छेना के रूप में परिवर्तित करता है।

लाइपिड पर आमाशय में कोई विशेष रासायनिक प्रभाव नही पड़ता। मंथन के कारण वह केवल छोटे-छोटे कणों में ही विभक्त हो पाता है। आमाशय में सामान्य मिश्रित भोजन लगभग 3 या 4 घंटे तक रह पाता है। उसके बाद आमाशय का निचला सिरा (Pyloric end) खुल जाता है और भोजन छोटी आंत में उतर जाता है। तरल पेय पदार्थ– जल, शरबत, फलों का रस आदि 15 से 30 मिनट के अन्दर ही आंतों में उतर आते हैं।

छोटी आंत की लम्बाई लगभग 20 फुट की होने से भोजन के घोल काइम को फैलने का अच्छा क्षेत्र मिल जाता है। जिससे यहाँ पाचक रसों को और एन्जाइम्स को अपना पूरा प्रभाव डालने का अच्छा अवसर मिल जाता है। इसके फैलाव में पित्त का बड़ा सहयोग होता है। पित्त अपनी थैली से निकल कर विशेष नलिका द्वारा छोटी आंत के प्रारंभिक भाग में गिरता है। यही पर पेन्क्रियाज रस भी गिरता है। ये दोनों रस क्षार प्रकृति के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

होने के कारण भोजन घोल को क्षारीय (Alkaline) प्रतिक्रिया प्रदान करते हैं जिससे आंतों में इस प्रतिक्रिया की प्रधानता में विभिन्न एन्जाइम्स अच्छा असर पैदा कर सकें। पेन्क्रियाज रस में ट्रिप्सिन, एमाइलेज व लाइपेज नामक एन्जाइम्स होते हैं और आंतों की कोशिकाओं में पैदा होने वाले रसों में एन्टेरोकाइनेस, कार्बोक्सीपेप्टीडेस, एमाइनोपेप्टीडेस व न्यूक्लियेस एन्जाइम्स होते हैं जो प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट व लाइपिड्स का पूर्ण पाचन कर उन्हें अपने-अपने अंतिम सूक्ष्मतम अंशों में विभक्त कर पाते हैं जिससे वह अवशोषण योग्य हो जाते हैं।

इस तालिका से हम यह स्पष्टतया बोध कर पाते हैं कि प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट व लाइपिड्स छोटी आंतों में विभक्त हो पाते हैं, अर्थात् प्रोटीन → प्रोटियोस → पेप्टोन → पेप्टाइड → पोलीपेप्टाइड → डाइपेप्टाइड और एमाइनो एसिड जो प्रोटीन के अंतिम सूक्ष्मतम अंश है।

तालिका नं. 1

एन्जाइम का नाम	स्रोत	खाद्य पदार्थ	खाद्य पदार्थ का परिवर्तित रूप (पचने के बाद)
1. सेलाइवरी एमाइलेज	लार ग्रंथियाँ	स्टार्च	माल्टोज
2. पेप्सीन	आमाशय	प्रोटीन	पेप्टाइड्स
3. एमाइलेज	क्लोम ग्रंथि (पेन्क्रियाज)	स्टार्च	माल्टोज
4. ट्रिप्सिन	क्लोम ग्रंथि (पेन्क्रियाज)	प्रोटीन	पेप्टाइड
5. काइमोट्रिप्सिन	क्लोम ग्रंथि (पेन्क्रियाज)	प्रोटीन	पेप्टाइड
6. कार्बोक्सी पेप्टीडेज	क्लोम ग्रंथि (पेन्क्रियाज)	पेप्टाइड्स के टर्मिनल अमिनो अम्ल	पेप्टाइड्स
7. लाइपेज	क्लोम ग्रंथि (पेन्क्रियाज)	उदासीन वसा	वसा अम्ल, मोनोग्लिसराइड्स
8. माल्टेज	छोटी आंत	माल्टोज	ग्लुकोज
9. सुक्रेज	छोटी आंत	सुक्रोज	ग्लुकोज, फ्रक्टोज
10. लेक्टेज	छोटी आंत	लेक्टोज	ग्लुकोज, गैलेक्टोज
11. पेप्टीडेजेज	छोटी आंत	अमिलो अम्ल, डाइ पेप्टाइड्स	अमिनो अम्ल
12. न्यूक्लियेजेज	क्लोम ग्रंथि, छोटी आंत	आर.एन.ए., डी.एन.ए.	पेन्टोजेज, नाइट्रोजन क्षार

कार्बोहाइड्रेट भांति-भांति के मोनो सेकेराइड्स जैसे ग्लूकोस, फ्रक्टोज, गेलेक्टोज आदि जो कार्बोहाइड्रेट के अंतिम अंश है।

लाइपिड्स → इमल्सीकरण → ग्लिसरोल → फैटीएसिड जो लाइपिड्स के अंतिम अंश हैं।

आंत में यह पाचक क्रिया लगभग 2 से 5 घंटे में पूरी हो जाती है। पोषक तत्त्वों के अंतिम सूक्ष्मतम अंश आंत की झिल्लियों में प्रवेश कर रक्त और लसीका वाहक नलिकाओं में प्रवाहित होते हैं और कोशिकाओं में पहुंचते हैं। अपाच्य अंश बड़ी आंत में प्रवेश कर जाते हैं। बड़ी आंत में कोई एन्जाइम नहीं होते पर वहाँ बहुत से जीवाणु (Bacteria) अवश्य होते हैं, जो अपाच्य सेलूलोज पर अपना प्रभाव डालते हैं और विटामिन 'के' व कुछ 'बी' ग्रुप के विटामिन उत्पन्न करते हैं। सेलूलोज बड़ी आंतों में रूक्षांश (Roughage) बन पुनःसरण पैदा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

करता है। जिससे इनमें वांछित गति होती है और मल त्याग आसानी से हो पाता है। यदि सेलूलोज या प्रोटीन का अपाच्य भाग अधिक देर तक बड़ी आंतों में रहता है तो जीवाणु इनमें किण्वन (Fermentation) पैदा करते हैं। जिससे आंतों में वायु पैदा होती है और साथ ही जल अधिकता से अवशोषित हो जाता है जिससे मल सूख-सा जाता है।

11.6 प्रेक्षाध्यान के द्वारा ऊर्जा नियोजन

मानव शरीर में ऊर्जा प्राप्ति के लिए पोषक तत्त्वों का उपयोग किया जाता है। शरीर की प्रत्येक कोशिका में रक्त के द्वारा पहुंचाये गये पोषक तत्त्वों का आक्सीजन की उपस्थिति में विघटन और विखण्डन किया जाता है जिससे ऊष्मा के रूप में ऊर्जा उत्पन्न होती है। यह ऊर्जा ए.टी.पी. के रूप में सुरक्षित कर ली जाती है और यथावश्यक समय पर उपयोग में लाई जाती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि ऊर्जा उत्पादन की प्रक्रिया में पोषक तत्त्वों की भूमिका अति महत्त्वपूर्ण है। इस अध्याय के पूर्व में ही इन पोषक तत्त्वों का विवरण दिया जा चुका है। प्रेक्षाध्यान पद्धति में जिस 'आहार विवेक' की अवधारणा का उल्लेख किया जाता है और उस पर विशेष बल भी दिया जाता है, मूल रूप से उसका संबंध इन पोषक तत्त्वों के विवेकपूर्ण चयन से ही है। शरीर के अंदर चयापचय की क्रिया के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होने वाले विभिन्न प्रकार के जैव-रसायनों के स्रोत ये पोषक तत्त्व ही होते हैं। जब हम आहार विवेक की बात करते हैं तो उसका अर्थ होता है सन्तुलित रूप में और आवश्यकतानुसार तथा समयानुसार ऐसे खाद्य पदार्थों को ग्रहण करना (भोजन के रूप में) जिनसे हमें उन तत्त्वों की प्राप्ति हो सके जो शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिए जरूरी हों और जिनसे न केवल उपयोगी जैव रसायनिक पदार्थो का संश्लेषण हो बल्कि पर्याप्त मात्रा में ऊर्जा का उत्पादन भी हो सके।

ऊर्जा के शारीरिक उत्पादन एवं विविध शारीरिक क्रियाओं में उसके व्यय के बीच सन्तुलन होना अनिवार्य है। इस समीकरण के असन्तुलित होते ही अनेक प्रकार की शारीरिक और मानसिक व्याधियां उत्पन्न होने लगती हैं। इन परिस्थितियों में आध्यात्मिक स्वास्थ्य में ह्रास अपरिहार्य होता है। इस सन्तुलन को बनाये रखने के लिए हमें आहार विवेक से जुड़ी कतिपय विशेष बातों का ध्यान रखना होगा। निश्चित समय पर भोजन करना, भोजन में संयम बरतना, भोजन करते समय भाव क्रिया का पालन करना, ऋतु काल के अनुसार खाद्य पदार्थों का चयन करना, शारीरिक स्वास्थ्य, दैनिक चर्या और उम्र के अनुसार खाद्य पदार्थों को भोजन में सम्मिलित करना एवं दो भोजन के बीच पर्याप्त अन्तराल रखना, ये कुछ ऐसी महत्त्वपूर्ण बाते हैं जिनका कोई विकल्प नहीं है। यदि कोई इनका पालन करे तो शरीर के अंदर ऊर्जा सन्तुलन बना रहेगा और व्यक्ति तन से तथा मन से पूरी तरह स्वस्थ रहेगा। प्रेक्षाध्यान पद्धति में इस बात का स्पष्ट निर्देश है कि आहार विवेक के बिना हम शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक तथा आध्यात्मिक स्वास्थ्य से सदैव वंचित रहेंगे। स्वास्थ संतुलन की अनुपस्थिति में चाहे साधना का लक्ष्य हो या फिर जीवन के कार्यक्षेत्र का कोई भौतिक लक्ष्य, सभी कुछ दिवास्वप्न ही होगा।

11.7 अभ्यास प्रश्नावली

निबंधात्मक प्रश्न

1. पाचन तंत्र के सहायक अंगों का सचित्र वर्णन करें।
2. पाचन तंत्र के कार्यों को स्पष्ट करते हुए उसकी प्रक्रिया को समझायें।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. ऊर्जा नियोजन में पाचन तंत्र एवं प्रेक्षाध्यान की भूमिका को स्पष्ट करें।
2. भोजन के अवशोषण को स्पष्ट करें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. शरीर के आवश्यक पोषक तत्त्व क्या हैं?
2. पाचन तंत्र में सहायक रसों का नामोल्लेख करें।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. पेप्सिन का प्रभाव किस पर पड़ता है?
   (क) विटामिन (ख) वसा
   (ग) प्रोटीन (घ) खनिज लवण ( )
2. ग्रसनी के कितने भाग होते हैं?
   (क) दो (ख) चार
   (ग) तीन (घ) एक ( )
3. उदर के निचले भाग को कहते हैं?
   (क) आमाशय (ख) क्षुद्रांत्र
   (ग) अग्नाशय (घ) श्रोणि तलपट्टल ( )
4. क्लोम रस की प्रकृति है?
   (क) अम्लीय (ख) क्षारीय
   (ग) दोनों ही (घ) दोनों ही नहीं ( )
5. लार में पाये जाने वाले एन्जाइम का नाम क्या है?
   (क) ट्रिप्सिन (ख) टायलिन
   (ग) लाइपेज (घ) रेनिन ( )

सन्दर्भ पुस्तकें :

1. Principles of Anatomy and Physiology—G.J. Tortora & N.P. Anagnastakos
2. Nutrition – Chaney and Ross
3. शरीर क्रियाविज्ञान– डॉ. प्रमिला वर्मा, डॉ. कान्ति पाण्डेय
4. मानव शरीर रचना एवं क्रियाविज्ञान– डॉ. राजेश दीक्षित
5. आहार एवं पोषाहार– प्रो. सत्यदेव आर्य
6. स्वास्थ्य के साझीदार– ह्यूहार्ज और क्रिस्टीन स्कोयमर
7. जन स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण– प्रो. सुधा नारायणन्

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–12 : रक्त परिवहन तंत्र : रक्त एवं हृदय की संरचना एवं कार्य; हृदय कार्यों एवं रक्तचाप पर प्रेक्षाध्यान का प्रभाव

संरचना

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 रक्त

12.2.1 रक्त का संघटन

12.2.1.1 प्लाविका

12.2.2 रक्त कोशिका

12.2.2.1 लाल रक्त कण

12.2.2.2 श्वेत रक्त कण

12.2.2.3 बिम्बाणु

12.2.3 रक्त के कार्य

12.3 हृदय (Heart)

12.3.1 हृदय की स्थिति

12.3.2 हृदय के प्रकोष्ठ या कक्ष

12.3.3 हृदय के कपाट

12.3.4 हृदय के कार्य

12.4 रक्त चाप

12.5 हृदय के कार्यों एवं रक्त चाप पर प्रेक्षाध्यान का प्रभाव

12.6 अभ्यास प्रश्नावली

12.0 उद्देश्य

1. रक्त क्या है?
2. रक्त कोशिका के कितने प्रकार हैं?
3. शरीर की रोगों से रक्षा किन कणिकाओं द्वारा होती है?
4. शरीर में रक्त के कार्य को जान सकेंगे?
5. हृदय की संरचना के बारे में पढ़ सकेंगे?
6. हृदय कपाट क्या होते हैं?
7. पेस-मेकर का क्या काम है?
8. रक्त चाप को समझ सकेंगे।
9. हृदय घात क्या होता है?
10. हृदय व रक्त चाप पर प्रेक्षाध्यान के प्रभाव को समझ सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना

वैज्ञानिक युग में मानव ने बहुत विकास किया है लेकिन उसके विकास की प्रतीक मशीनों को अभी भी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

निर्भरता की आवश्यकता है। उसी तरह आज मेडिकल सांइस ने काफी खोज कर ली है, लेकिन फिर भी इस शरीर को चलाने के लिए जो ऊर्जा काम में आती है उसका अभी तक पता नहीं चला है, जिसके समाप्त होते ही व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है। यह ऊर्जा तो अदृश्य है लेकिन अपने शरीर के भरण-पोषण के लिए जिन तत्त्वों की आवश्यकता होती है उनको मानव ने खोज निकाला है। शरीर के प्रत्येक उत्तक तथा अंगों को, अपने कार्यों को संपादित करने के लिए समुचित एवं पर्याप्त मात्रा में पोषक तत्त्वों तथा ऑक्सीजन के संभरण (Supply) की आवश्यकता होती है इसके अलावा शरीर में होने वाली विभिन्न क्रियाओं के फलस्वरूप जो विकार उत्पन्न हो जाते हैं, उनका निष्कासन भी अनिवार्य होता है तो इस तरह से आपूर्ति एवं निष्कासन दोनों ही कार्य इस जीव-शरीर में रक्त के द्वारा किए जाते हैं। रक्त ही एक ऐसा पदार्थ है जो हमारे पूरे शरीर में गतिशील रहता है या सहज में बहता रहता है। फिर भी यह ह्रदय के नियंत्रण में रहता है। वस्तुतः ह्रदय रक्त का स्थायी संग्रहालय अथवा आगार है। ह्रदय एक पम्प है। जो कि रक्त को पूरे शरीर में भेजता है। इस क्रिया को संपादित होने में कई अंगों की शिराओं, वाहिकाओं इत्यादि की आवश्यकता होती है। इन सब सहायक अंगों को मिलाकर एक नाम दिया गया है जिसे रक्त परिसंचरण तंत्र कहते हैं। रक्त परिसंचरण तंत्र शरीर की समस्थिति को प्राप्त करने के लिए एक अत्यावश्यक भूमिका निभाता है।

12.2 रक्त (Blood)

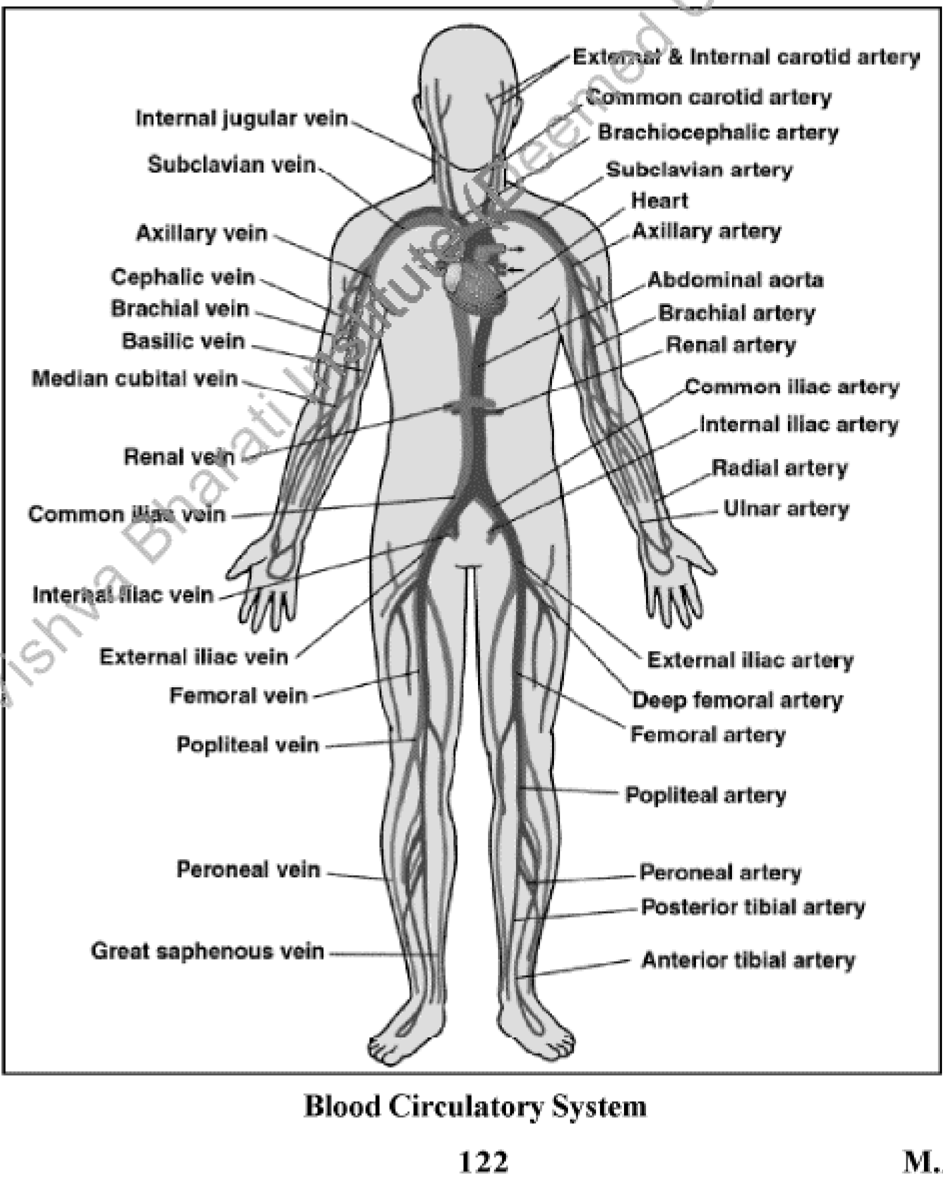

Blood Circulatory System

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

रक्त एक द्रव्य उत्तक है। इसकी मध्यस्थता के गुण के कारण इसको संयोजी उत्तक के रूप में वर्गीकृत किया गया है। यह आंतरिक एवं बाह्य वातावरण के बीच का सेतु है। रक्त शरीर के अंदर किसी भी तत्त्व को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने की क्रिया का माध्यम है। जो कि ऑक्सीजन, ऊर्जा के तत्त्व, वर्जित पदार्थ, $C0_2$, उत्तेजक पदार्थ, इत्यादि को साथ में लेकर चलता है। रक्त, जल से मोटा एवं भारी होता है।

सामान्यत: पुरुष में इसकी मात्रा शरीर के भार की 8 प्रतिशत और स्त्री में 7 प्रतिशत होती है। लगभग क्रमश: 5 से 6 लीटर और 4 से 5 लीटर के बराबर। इस भिन्नता का कारण स्त्री में पाई जाने वाली ज्यादा मात्रा में वसा की उपस्थिति है। रक्त की श्यानता (चिपचिपाहट) की मात्रा 4.5-5.5 होती है। रक्त का तापमान 38^0C (100.4^0F) होता है और pH की मात्रा 7.35-7.45 होती है, यह हल्का क्षारीय प्रकृति का होता है। रक्त अपारदर्शी एवं नमकीन होता है। इसमें NaCl (नमक) की सांद्रता 0.90 प्रतिशत पाई जाती है। पोषक पदार्थों की आपूर्ति का माध्यम होने के कारण प्राणियों का संपूर्ण जीवन एवं शरीर के सभी कार्य रक्त पर निर्भर हैं। रक्त शरीर में हृदय के नियंत्रण में एक स्थान से दूसरे स्थान तक धारा-प्रवाह बहता रहता है। ताजा रक्त एक विशेष प्रकार की गंध से युक्त होता है। रक्त गाढ़ा, लाल द्रव्य है। धमनियों में O_2 की अधिक मात्रा के कारण यह चमकीला लाल रंग का तथा शिराओं में Co_2 की मात्रा अधिक होने के कारण गहरा बैंगनी-लाल रंग का दिखाई देता है।

12.2.1 रक्त का संघटन (Composition of the Blood)

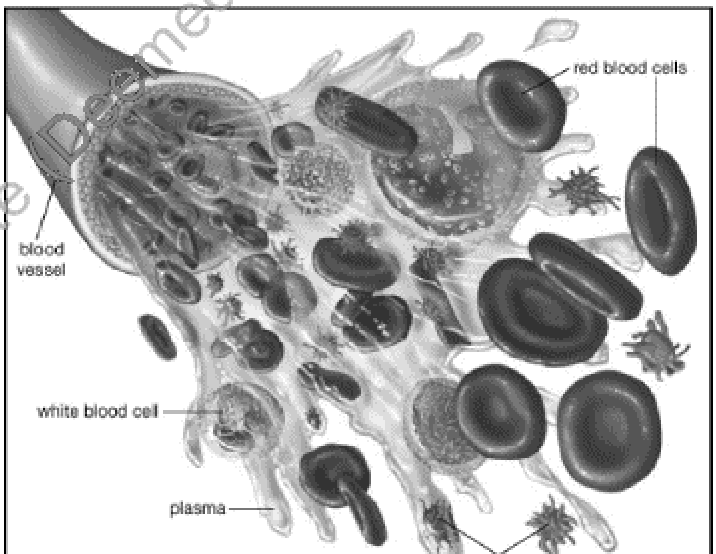

रक्त द्रव रूप में दिखाई देता है तथापि इसमें कुछ भाग ठोस भी होता है। यदि रक्त को एक परखनली में डालकर उसको अपकेंद्रित (Centrifuged) किया जाए तो हमें रक्त द्रव (प्लाज्मा) और ठोस पदार्थ (कोशिकाओं) के मध्य संबंध को बताएगा। रक्त में प्लाज्मा की मात्रा 55 प्रतिशत एवं कोशिका की 45 प्रतिशत पाई जाती है। प्लाज्मा का रंग हल्का पीला होता है। जिसमें कोशिका (रक्त कण) तैरते रहती हैं। इस प्रकार ये रक्त कण एक अर्द्ध तरल सजीव पदार्थ हैं। रक्त कण तीन प्रकार के होते हैं—

I. लाल रक्त कण (Red Blood Corpuscles or Erythorocytes),

II. श्वेत रक्त कण (White Blood Corpuscles or Leucocytes),

III. बिम्बाणु रक्त कण (Platelets or Thrombocytes)।

इनमें भी श्वेत रक्त कण 5 प्रकार के होते हैं— न्यूट्रोफिल्स, ईस्नोफिल्स, बेसोफिल्स, लिम्फोसाइटस एवं मोनोसाइटस। रक्त के प्लाज्मा भाग में प्रोटीन, पानी, इलैक्ट्रोलाइटस, रक्त गैसें आदि पाये जाते हैं।

12.2.1.1 रक्त प्लाविका (Plasma)

रक्त का द्रव भाग प्लाज्मा क्षारीय प्रकृति का, हल्के पीले रंग का होता है, जो निम्नलिखित पदार्थों से मिलकर बनता है—

जल — 91 प्रतिशत,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रोटीन	–	8.0 प्रतिशत (एल्बुमिन, ग्लोबुलिन, प्रोथ्रोम्बिन तथा फाइब्रिनोजन),
लवण	–	0.9 प्रतिशत (सोडियम क्लोराइड, सोडियम बाइकार्बोनेट तथा कैल्शियम, फास्फोरस, मैग्नीशियम, लौह आदि)।

रक्त का शेष भाग अनेक कार्बनिक यौगिकों यथा—ग्लूकोज, वसा, यूरिया, यूरिक एसिड, क्रिएटिनिन, कॉलेस्ट्राल तथा एमिनो एसिड की अल्प मात्रा से बनता है। इनके अतिरिक्त अत्यन्त अल्प मात्रा में O_2, CO_2 एवं N तथा हार्मोन, एन्जाइम एवं एन्टीजन आदि भी प्लाज्मा में घुले रहते हैं।

रक्त में पानी, जो हम भोजन ग्रहण करते हैं उससे अवशोषित किया जाता है। यह जल शरीर से बाहर वृक्क द्वारा, त्वचा के द्वारा एवं श्वसन के द्वारा निकाल दिया जाता है। यह जल आसानी से ऊर्जा को संग्रहित करके अपेक्षित स्थान पर पहुंचा देता है। यह रक्त में उपस्थित इलैक्ट्रोलाइट्स को भी घोलने का माध्यम है। इलैक्ट्रोलाइटस् एक प्रकार के लवण हैं, जो भिन्न-भिन्न रूप के धनात्मक और ऋणात्मक आयन में उपस्थित रहते हैं। जैसे कि, सोडियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम, फोस्फेट इत्यादि। प्रोटीन की उपस्थिति के कारण ही यह चिपचिपा सा होता है। रक्त जब क्षति ग्रस्त उत्तक के संपर्क में आता है तो रक्त प्लाविका में स्थित फाइब्रिनोजन ही जम कर रक्त का थक्का बनाने में मदद करता है, जैसा कि रक्त जमने की अवस्था में होता है। जब रक्त थक्के में बदल जाता है तब उसमें पानी जैसा द्रव चूकर अलग हो जाता है, इस जल सदृश पदार्थ को सीरम कहते हैं। अर्थात् बिना फाइब्रिनोजन के प्लाज्मा को सीरम कहते हैं।

12.2.2 रक्त कोशिका

रक्त कोशिका के तीन प्रकार होते हैं—1. लाल रक्त कण (एरिथ्रोसाइटस्), 2. श्वेत रक्त कण (ल्यूकोसाइटस्) एवं 3. बिम्बाणु (थ्रोम्बोसाइटस्)। ये तीनों मिलकर रक्त में 45 प्रतिशत भाग में विद्यमान रहती हैं।

12.2.2.1 लाल रक्त कण (एरिथ्रोसाइटस्)

जब रक्त का परीक्षण माइक्रोस्कोप के द्वारा किया जाता है तो यह ज्ञात होता है, कि एक ही तरह की कोशिकाओं का एक बहुत बड़ा समुदाय है। ये कोशिकाएँ लाल रक्त कण या इरिथ्रोसाइट कहलाती हैं। यह समुदाय रक्त के 95 प्रतिशत भाग को घेरे रहता है। इनकी आकृति छोटी, उभयावतल चक्रिकाओं के समान होती है अर्थात् दोनों पृष्ठ कुछ दबे से होते हैं। इनका व्यास सिर्फ 7.2 माइक्रोन (1 माइक्रोन = 1 माइक्रोमीटर = 1/1000 मि.मी.; इसे μ या μm लिखा जाता है) होता है। लाल रक्त कणों की संख्या प्रति घन मिलिमीटर रक्त में लगभग पचास लाख होती है। इनका जीवन काल लगभग 120 दिनों का होता है इसका मतलब है कि यह बहुत ही आवश्यक है कि एक बड़ी मात्रा में लाल रक्त कणों की उत्पत्ति होती रहनी चाहिए। गर्भावस्था में इनका निर्माण यकृत और प्लीहा में होता है, साथ ही जन्म के बाद ये अस्थि मज्जा में भी बनने लगते हैं। इनका विघटन प्लीहा में होता है, जहाँ नवीन हिमोग्लोबिन के निर्माण के लिए इनमें से निकले आयरन को बचाकर रख लिया जाता है। प्रत्येक लाल रक्त कण फीके पीले रंग का होता है तथापि समूह में ये चमकदार गहरी लाल रंग की दिखाई देती हैं। ये कण एक लचीली, रंगहीन, पारदर्शी झिल्ली से आवृत्त रहते हैं।

लाल रक्त कण में केन्द्रक एवं माइट्रोकॉन्ड्रिया नहीं होते हैं, जिस वजह से इनके पास सिर्फ चयापचय की क्रिया का काम रह जाता है। इनका यह कार्य इनमें उपस्थित हिमोग्लोबिन की मात्रा के द्वारा होता है। हिमोग्लोबिन एक जटील एवं संश्लिष्ट प्रोटीन है जो हल्के लाल-पीले रंग का होता है तथा ऑक्सीजन और कार्बन-डाई-ऑक्साइड को लाने ले जाने का काम करता है। हिमोग्लोबिन का निर्माण ग्लोबिन, प्रोटीन तथा हिमेटिन नामक लौह-रंजित कणों से होता है। रक्त में हिमोग्लोबिन की मात्रा स्त्रियों में लगभग 10-12 ग्राम प्रति 100ml रक्त तथा पुरुषों में 12-14 ग्राम प्रति 100ml रक्त रहती है। श्वास से ग्रहण की गई वायु में से फेफड़ों में स्थित रक्त वाहिकाओं में बहते रक्त में स्थित हिमोग्लोबिन ऑक्सीजन को प्राप्त कर चमकीले लाल रंग का

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

ऑक्सी-हिमोग्लोबिन नामक अस्थायी यौगिक बनाते हैं। यह अस्थायी यौगिक रक्त के साथ शरीर की समस्त कोशिकाओं में आवश्यकतानुसार पहुंचकर उन्हें O_2 दे देता है। इस क्रिया के दौरान इसमें CO_2 एवं अन्य विकार मिल जाते हैं और यह बैंगनी लाल रंग का हो जाता है। हिमोग्लोबिन की कमी से व्यक्ति एनिमिया से ग्रस्त हो जाता है। ऐसे व्यक्ति का दम फूलने लगता है। इसके निराकरण के लिए चिकित्सा के साथ-साथ रोगी को लौह युक्त आहार दिया जाना आवश्यक होता है। सामान्य स्थिति में पुरुष को 10 mg. तथा स्त्री को 15 mg. आयरन की आवश्यकता होती है। शरीर में रक्त भिन्न-भिन्न आकार की रक्त वाहिकाओं में विचरण करता है। ऐसी स्थिति में लाल रक्त कण अपने प्रत्यास्थता गुण के कारण उन सूक्ष्म से सूक्ष्मतर वाहिकाओं के अनुरूप आकार ग्रहण कर लेती हैं और पर्याप्त स्थान मिलने पर पुनः अपने सामान्य आकार में आ जाती हैं।

12.2.2.2 श्वेत रक्त कण (ल्यूकोसाइटस्)

श्वेत रक्त कण जल के समान विवर्ण अर्थात् रंगहीन एवं पारदर्शी होते हैं तथा आकृति में गोल होते हैं किन्तु लाल रक्त कणों की अपेक्षा इनका आकार बड़ा (10 μm) होता है पर इनकी संख्या उनके मुकाबले काफी कम होती है। प्रति घन मिलिमीटर रक्त में इनकी संख्या लगभग 6000-10000 (औसतन 8000) होती है। रोग ग्रसित होने पर यह संख्या बढ़कर 30,000 तक हो जाती है। श्वेत रक्त कणों की आकृति अमीबा की तरह परिवर्तनशील होती है। इनकी उत्पत्ति मुख्यतः अस्थि मज्जा और प्लीहा में स्थित लसीका ग्रंथियों में होती है। श्वेत रक्त कणों में एक या एक से अधिक केन्द्रक हो सकते हैं। श्वेत रक्त कणों का प्रमुख काम सुरक्षात्मक होता है अर्थात् ये विजातीय पदार्थों और रोगजनक जीवों को नष्ट करने का कार्य करती हैं। इसके लिए ये प्रतिपिंड या प्रतिविष का निर्माण करती हैं। अपनी स्वाद की शक्ति के कारण ये कण शत्रु का पता लगने पर उसके पास आकृष्ट हो जाते हैं। विजातीय पदार्थों को स्वादिष्ट बनाने वाली वस्तुओं को ऑप्सोनिन कहते हैं, इन्हीं के आधार पर जीवाणुओं के भक्षण की मात्रा का निर्धारण होता है। श्वेत रक्त कणों अर्थात् ल्यूकोसाइट्स का जीवन काल कुछ दिनों से लेकर कुछ हफ्तों तक का होता है।

श्वेत रक्त कणों के प्रकार

मानव रक्त में, प्रमुख रूप से दो प्रकार के श्वेत रक्त कण पाये जाते हैं—

अ. दानेदार श्वेत रक्त कण (Granular Leucocytes),

ब. दाने रहित श्वेत रक्त कण (Agranular / Non-Granular Leucocytes)।

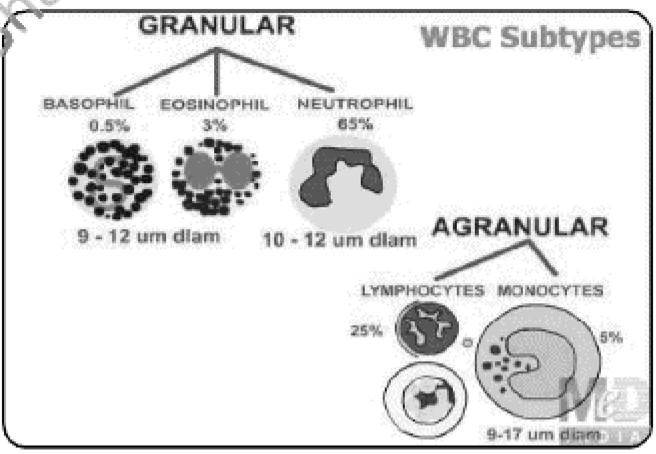

अ. दानेदार श्वेत रक्त कण (Granular Leucocytes)

कोशिका द्रव्य (Cytoplasm) के दानेदार दिखाई देने के कारण इन्हें दानेदार श्वेत कण (Granular Leucocytes) कहा जाता है। केन्द्रक में दो या दो से अधिक खंड होने के कारण इन्हें पॉलिमॉर्फोन्यूक्लिअस

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(पॉलि-कई, मॉरफ-प्रकार, न्यूक्लिअस-केन्द्रक) ल्यूकोसाइट्स (बहु आकृतीय-नाभिकीय-श्वेत-कण) भी कहा जाता है। श्वेत रक्त कणों की कुल मात्रा का 75 प्रतिशत हिस्सा इन्हीं का होता है। इनकी उत्पत्ति अस्थि मज्जा के विशिष्ट सेल मज्जानु-प्रसू (Myeloblasts) से होती है। इनका जीवनकाल 21 दिन तक हो सकता है। अपनी रंग सोखने की क्षमता (रजकता—Staining) के आधार पर ये तीन प्रकार के होते हैं—

i. उदासीन रागी (Neutrophil) श्वेत रक्त कणों में इनकी प्रधानता होती है। ये कुल मात्रा का 60% से 70% के बीच पाए जाते हैं। ये क्षारीय तथा अम्लीय दोनों ही प्रकार के रंजकों को अवशोषित कर सकती है तथा बैंगनी रंग की दिखाई देती हैं। दानों के अतिसूक्ष्म होने के कारण इनका कोशिका द्रव्य पारदर्शक होता है। केन्द्रक के खंडों की संख्या 2 से 5 तक होती है। इनमें बेक्टीरिया आदि की भक्षण की क्षमता (Phagocytosis) होती है।

ii. इओसिन रागी (Eosinophil)— ये 3-5% तक पाये जाते हैं। इनके दाने खुरदरे एवं मोटे होते हैं तथा केन्द्रक के खंडों की संख्या दो होती है। ये लाल रंग के दिखाई देते हैं तथा सिर्फ अम्लीय प्रकृति के रंजकों को ही अवशोषित कर सकते हैं। अस्थमा या अन्य संक्रमण के दौरान इनकी संख्या बढ़ जाती है।

iii. क्षार रागी (Basophil)— ये 0-1% तक पाये जाते हैं। इनके दाने भी मोटे होते हैं और सिर्फ क्षारीय प्रकृति के रंजकों को अवशोषित कर पाने की क्षमता के कारण इनका रंग नीला होता है। केन्द्रक के खंडों की संख्या 2-3 होती है। इनमें हेपॅरिन और हिस्टैमिन नामक पदार्थ पाए जाते हैं।

ब. दाने रहित श्वेत रक्त कण (Non-Granular Leucocytes)

दाने रहित कणों में कोशिका सार में दाने नहीं होते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं—

i. लसीका-कणिका (Lymphocytes)— लिम्फोसाइट्स श्वेत रक्त कणों की कुल संख्या का 20-30% तक भाग बनाते हैं। इनमें एक ही बड़ा और गोलाकार केंन्द्रक होता है। कोशिका सार बहुत कम और वह भी किनारे पर होता है। इनकी व्युत्पति लसीका ग्रंथि, थाइमस एवं प्लीहा में तथा विनाश भी लसीका ग्रंथियों में होता है। ये प्रतिपिंड का निर्माण करती है, जिसके द्वारा वे शरीर की रक्षा करती है। इनमें भक्षण क्षमता नहीं होती है।

ii. मोनो साइट (Monocytes)— ये 3-5% तक पाई जाती हैं। इनका आकार बड़ा होता है और ये दाने रहित होते हैं। इनमें एक ही केन्द्रक होता है, जो वृक्काकार सा होता है। इनकी व्युत्पत्ति अस्थिमज्जा, लसीका ग्रंथि तथा प्लीहा में होती है। इनमें भक्षण क्षमता पाई जाती है। जिसके कारण ये बैक्टीरिया, बाह्य पदार्थों एवं क्षतिग्रस्त ऊतकों को निष्कासित कर देती हैं।

12.2.2.3 बिंबाणु (Thrombocytes)

बिंबाणु प्लेट्लेट्स या थ्रोम्बोसाइट्स सूक्ष्म-गोलिका आकार के होते हैं। लाल रक्त कणों की अपेक्षा आकार एवं संख्या में छोटे एवं कम होते हैं किन्तु श्वेत कणों की संख्या में पचास गुना अधिक बिंबाणुओं की संख्या रहती है। प्रति घन मिलिमीटर रक्त में इनकी संख्या 250,000 होती है। बिंबाणु का औसत जीवन काल 5 से 9 दिन है। बिंबाणु का निर्माण अस्थि-मज्जा एवं विनाश प्लीहा में होता है इनकी भित्ति स्थाई नहीं होती है, इसी वजह से जब कुछ क्षति होती है तो इसके तत्त्व आसानी से निकल जाते हैं। रक्त का थक्का बनाने के लिए जो आवश्यक होते हैं। जैसे ही कटे स्थान से रक्त निकलता है बिंबाणुओं में विघटन हो जाता है और वे प्रो-थ्रोम्बिन एवं फाइब्रिनोजन के साथ मिलकर थ्रोम्बोप्लास्टीन नामक सर्वथा नवीन पदार्थ का निर्माण करती हैं, जो रक्त का थक्का बनाने की क्रिया को प्रेरित करता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

12.2.3 रक्त के कार्य

1. रक्त भोजन से प्राप्त पोषक तत्त्वों को अपने परिवहन के समय समस्त ऊतकों में वितरित करता है और आवश्यकता पड़ने पर संग्राही स्थान से पुनः लेकर अपेक्षित स्थान पर पहुंचाता है।
2. फेफड़ों में ग्रहण की गई वायु में से हिमोग्लोबिन की सहायता से O_2 को ग्रहण कर शरीर की प्रत्येक कोशिका को उपलब्ध कराता है, कोशिका में विभिन्न चयापचयी क्रियाओं के दौरान उत्पन्न विषैले तत्त्वों को संबंधी उत्सर्जी अंग तक पहुंचाकर शरीर से विसर्जित करवाता है, जैसे— वृक्क के द्वारा यूरिया; वृक्क, फुफ्फुस तथा त्वचा के द्वारा अनावश्यक जल; फुफ्फुस के द्वारा कार्बन-डाई-ऑक्साइड आदि।
4. रक्त अन्तःस्रावी ग्रंथियों के स्राव हार्मोन्स को अपेक्षित अंग विशेष तक पहुंचाता है, साथ ही हार्मोन्स एवं अन्य स्रावों के निर्माण के लिए आवश्यक पदार्थों को ग्रंथियों को उपलब्ध कराता है।
5. रक्त अपने प्लाविका स्थित प्रोटीन के द्वारा शरीरांतर्गत तरलों के विनिमय में सहायता प्रदान करता है।
6. रक्त शरीर के तापमान को नियंत्रित करता है।
7. रक्त फैगोसाइटोसिस क्रिया एवं प्रतिपिण्ड तथा प्रतिविष का निर्माण कर शरीर की रक्षा करता है।
8. रक्त थक्का (Clotting) बनाकर शरीर से रक्त स्राव को रोकता है।
9. रक्त अपने आयतन तथा श्यानता में परिवर्तन लाकर रक्त-दाब पर नियंत्रण रखता है।

12.3 हृदय (Heart)

हृदय विशिष्ट प्रकार की पेशियों— हार्दिकी पेशियों से बना रक्त परिसंचरण तंत्र का प्रमुख एवं विशिष्ट अंग है। हृदय की धड़कन ही इस जीवन की विशेष पहचान है। प्रतिदिन जीवन भर हृदय हर धड़कन के साथ रक्त की प्रचुर मात्रा को धमनियों में, केशिकाओं के जाल में और शिराओं में पम्प करता है तथा अपने रक्त के माध्यम से ऑक्सीजन तथा अन्य पोषक तत्त्वों की आपूर्ति शरीर की कोशिकाओं को करता है तथा वहाँ निर्मित विकारों को उत्सर्जी अंगों तक पहुंचाकर शरीर को स्वस्थ बनाए रखने में अपना योगदान देता है। रक्त के शुद्धिकरण की प्रक्रिया का प्रारंभ यहीं से होता है। यहीं से रक्त शुद्ध होने के लिए फेफड़ों में पहुंचाया जाता है। फेफड़ों में श्वास वायु से प्राप्त ऑक्सीजन को हिमोग्लोबिन के द्वारा ग्रहण करने पर यह शुद्ध रक्त कहलाता है और वापस लौटकर हृदय में ही आ जाता है। यहाँ आने के बाद शरीर के ऊतकों को पोषक तत्त्वों तथा ऑक्सीजन की आपूर्ति करने हेतु रक्त को पुनः हृदय के द्वारा पम्प कर रक्त वाहिनियों में भेज दिया जाता है। हृदय जीवन पर्यन्त इस कार्य को बिना रूके करता है और जब हृदय अपना कार्य करना बंद कर देता है तब हमारा जीवन भी सम्पन्न हो जाता है। हृदय की ओर अशुद्ध रक्त लाने वाली वाहिनियों या नलिकाओं को शिराएँ एवं हृदय से शुद्ध रक्त को पूरे शरीर में वितरण के लिए ले जाने वाली वाहिनियों या नलियों को धमनियाँ कहते हैं। आराम की स्थिति में हृदय के द्वारा प्रति मिनट महाधमनी में 5 लीटर रक्त पम्प किया जाता है, अर्थात् 7200 लीटर प्रत्येक 24 घंटे में। लेकिन जब ऑक्सीजन की आवश्यकता अधिक होती है, तब इस रक्त की मात्रा प्रति मिनट बढ़ती जाती है।

क्रियात्मक रूप से हृदय के दो भाग होते हैं— बायाँ हृदय एवं दायाँ हृदय। दायाँ हृदय फेफड़ों को रक्त वितरण के लिए जिम्मेदार होता है। जबकि बायाँ हृदय संपूर्ण शरीर को रक्त वितरण के लिए जिम्मेदार होता है।

12.3.1 हृदय की स्थिति

हृदय फुफ्फुस के मध्य, स्टर्नम के पीछे, वक्ष भाग में स्थित होता है। यह फेफड़ों के मध्य गुहा का काम करता है। हृदय बंद मुट्ठी के आकार का शंकु के समान होता है। इसका वजन लगभग 300 ग्राम होता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

है। यह 120 मिली ग्राम या 4 ओंस के भार को वहन कर सकता है। हृदय के ऊपरी भाग को हृदयाधार (Base) तथा निचले भाग को हृदयाग्र (Apex) कहते हैं। हृदयाधार चौड़ा होता है तथा दाहिनी तरफ झुका रहता है जबकि हृदयाग्र संकरा होता है तथा बाईं तरफ पांचवी-छठी पसली तक होता है, जहाँ पर हृदय-स्पन्दन का अनुभव सहज ही किया जा सकता है। हृदयाधार ही वह स्थान है, जहाँ से धमनियाँ एवं शिराएँ हृदय में प्रवेश करती हैं। हृदय भित्ति का निर्माण निम्नलिखित तीन स्तरों से होता है–

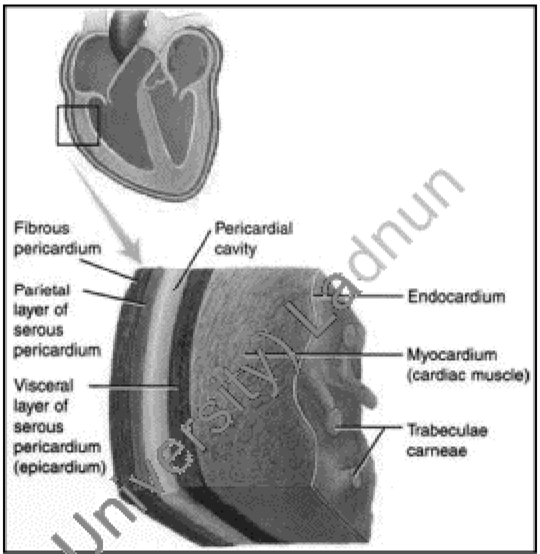

i. परिहृदय स्तर (Pericardium),

ii. हृदपेशी स्तर (Myocardium),

iii. अंतर्हृद स्तर (Endocardium)।

(i) परिहृदय स्तर (Pericardium)

यह तंतुमय थैली जैसा दोहरे सीरस-स्तर का बना हुआ एक आवरण है जो हृदय को ढ़के हुए रहता है। यह दोहरा स्तर पार्श्विक पृष्ठ (Parietal Layer) एवं आंतरांग पृष्ठ (Visceral Layer) से मिलकर बना है। इन दोनों पृष्ठों के मध्य एक सीरस द्रव भरा रहता है, जो इनके स्नेहन का काम करता है, और इन्हें सदैव चिकना रखता है। इसी सीरस द्रव के कारण जब हृदय फैलता और सिकुड़ता है तब इन दोनों स्तरों में परस्पर घर्षण नहीं होता तथा हृदय मुक्त रूप से गतिशील बना रहता है। प्रत्यास्थ विहीन होने के कारण यह स्तर हृदय के अत्यधिक फैलाव को रोकता है।

(ii) हृदपेशी स्तर (Myocardium)

विशेष प्रकार की हृदपेशी से हृदय का निर्माण होता है। इसमें विशेष प्रकार के तंतु रहते हैं। जो धुंधले, रेखांकित एवं अनैच्छिक वर्ग के होते हैं। हृदय के कपाट भी इसी स्तर के स्थूलीकृत भाग होते हैं। इस पेशी स्तर में तालबद्ध संकुचन की उत्पत्ति एक विशेष स्थान से होती है। जिसको शिरानाल-आलिन्द पर्व (Sino Auricular Node) के नाम से जाना जाता है। इसे पेस-मेकर के नाम से भी जाना जाता है, क्योंकि इसी से हृदयस्पंद उत्पन्न होता है। यह दाहिनी आलिन्द में महाशिरा के उद्‌गम स्थान पर स्थित रहता है। इस स्थान से उत्तेजना निकलकर क्रमशः आलिन्द-निलय पर्व (Auricular-Ventricular Node) में जाती है। यह हृदय के दाहिने भाग में आलिन्द एवं निलय को विभक्त करने वाली भित्ति पर अवस्थित होता है। यहाँ से यह Bundle of His में जाती है तथा अंत में कुछ विशेष तंतुओं के माध्यम से हृदय के अन्य भागों को संकुचन के लिए प्रेरित करती है और अंत में यह उत्तेजना स्वयं समाप्त भी हो जाती है। इसी के फलस्वरूप हृत्स्पन्द (Heart beat) उत्पन्न होता है और यह क्रिया जीवन पर्यन्त निरन्तर दोहराई जाती है। हृदपेशी के आंकुचन एवं संकुचन से ही रक्त का आगमन और निर्गमन होता है। यह फैलने-सिकुड़ने की क्रिया एक मिनट में 70-75 बार होती है, यद्यपि हृदय के दाएँ एवं बाएँ भाग में कोई संबंध नहीं रहता है, फिर भी हृदपेशी के कुछ सूत्रों के ऊपर वाले भाग में एवं कुछ सूत्रों के नीचे वाले भाग में स्थित रहने के कारण ऊपर के दोनों कक्षों में तथा नीचे के दोनों कक्षों में संकुचन एवं शिथिलन की क्रियाएँ एक ही समय पर सम्पन्न होती हैं। हृदपेशी स्तर को अपने कार्यों को सम्पादित करने के लिए आवश्यक पोषक तत्त्वों तथा ऑक्सीजन की आपूर्ति हार्दिकी ध ामनी (Coronary) द्वारा की जाती है। मायोकार्डियम स्तर की मोटाई असमान होती है।

(iii) अंतर्हृद स्तर (Endocardium)

हृदय भीतर से चिकनी और चमकदार झिल्ली से स्तरित रहता है, जो चपटी अंत: कला कोशिकाओं से

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

निर्मित होती है तथा एण्डोकॉर्डियम कहलाती है। यह स्तर ही रक्त-नलिकाओं एवं कपाटों के आन्तरिक स्तर का निर्माण भी करती है।

12.3.2 हृदय के प्रकोष्ठ या कक्ष

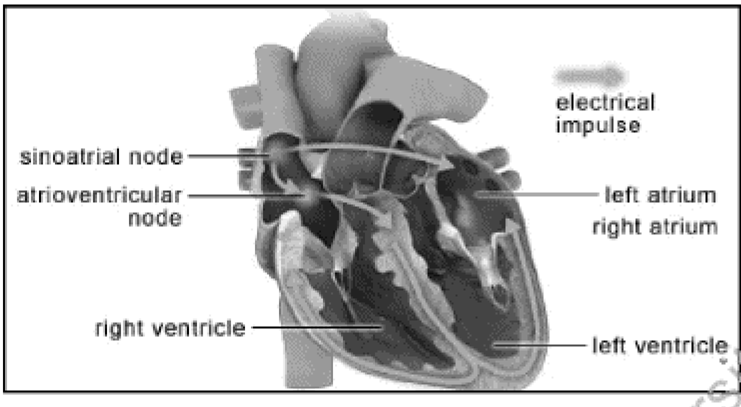

त्रिस्तरीय भित्तियों से निर्मित हृदय भीतर से खोखला होता है तथा हृदयाधार से हृदयाग्र तक एक अनुदैर्ध्य विभाजक भित्ति (Langitudinal Septum) के द्वारा दाहिने और बाएँ दो भागों में बंट जाता है, जिनका आपस में कोई संबंध नहीं होता है। ये स्वतंत्र कक्ष के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। इनके स्वतंत्र होने से रक्त के संचरण में सहायता मिलती है। स्वतंत्र बाएँ कक्ष में शुद्ध और दाहिने कक्ष में अशुद्ध रक्त बहता है। रक्त की मात्रा सीमित रहे इसके लिए भी हृदय में एक अलग व्यवस्था है। ये स्वतंत्र कक्ष एक अनुप्रस्थ-विभाजक भित्ति द्वारा दो-दो उप भागों में बंट जाते हैं। इस प्रकार हृदय परिणामतः चार भागों में बंट जाता है, ऊपर के दोनों कक्ष दायाँ एवं बायाँ आलिन्द (Atrium) तथा नीचे के दोनों कक्ष क्रमशः दायाँ एवं बायाँ निलय (ventricle) कहलाते हैं। आलिन्द आकार में निलयों से छोटे होते हैं तथा इनमें शिराओं के माध्यम से रक्त लाकर संग्रह किया जाता है जबकि निलय आकार में बड़े होते हैं तथा इनके द्वारा रक्त को धमनियों के माध्यम से शरीर में भेजा जाता है। हृदय के दायें भाग में अशुद्ध तथा बाएँ भाग में शुद्ध रक्त रहता है।

12.3.3 हृदय के कपाट (Valves of Heart)

रक्त परिसंचरण तंत्र में रक्त के प्रवाह को नियंत्रित रखने के लिए हृदय तथा वाहिनियों में कपाटों की व्यवस्था रहती है। ये कपाट हृदय के प्रकोष्ठों अर्थात् दायें आलिन्द एवं दायें निलय तथा बाएँ आलिन्द एवं बायें निलय के मध्य में रहते हैं। हृदय से निकलने वाली धमनियों के सिरे पर एवं साथ ही रक्त वाहिकाओं के भीतर भी कपाट होते हैं। कपाट, वास्तव में एक विशिष्ट प्रकार के द्वार हैं जिनसे रक्त वापिस पीछे नहीं जा सकता, जिस स्थान से वह आया है। इन कपाटों की रचना बड़ी विचित्र होती है। इनमें पल्ले अथवा कपर्दिकाएँ (Cupps) लगी रहती हैं। जो कपाटों को खोलने एवं बंद करने में सहायता करती हैं। ये कपर्दिकाएँ त्रिकोणाकार होती हैं और इनका भीतरी तल चिकना रहता है। इन कपर्दिकाओं को कंडरा-रज्जु के द्वारा नियंत्रित रखा जाता है। कुछ रोगों में ये कपाट क्षतिग्रस्त हो जाते हैं फलतः हृदय अपना कार्य ठीक से नहीं कर पाता है। हृदय के सभी कपाटों में कपर्दिकाओं की संख्या समान नहीं होती है। हृदय कक्षों के दरवाजे कहीं दो तो कहीं तीन पल्लों से निर्मित हैं। दाएँ आलिन्द के निलय के मध्य का कपाट तीन पल्लों से निर्मित होने के कारण त्रिकपर्दिक कपाट (Tri-Curpid Valve) कहलाता है जबकि बाएँ आलिन्द एवं निलय के मध्य द्विकपर्दिक कपाट (Bi-curpid Valve) होता है जो दो पल्लों से निर्मित होता है। धमनियों के कपाट में लगी कर्पदिकाएँ अर्द्धचन्द्राकार होती हैं इसलिए इन्हें अर्द्धचन्द्र-कपाट (Semi Lunar Valve) कहते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

12.3.4 हृदय के कार्य

हृदय का कार्य शरीर में रक्त की आपूर्ति करना है। इस कार्य के सम्पादन में शिरा और धमनी विशिष्ट अंग है। इन दोनों के माध्यम से हृदय में रक्त का आगमन और बहिर्गमन होता है। शरीर के समस्त अंगों एवं पूरे भाग से उर्ध्व महाशिरा (Superior Vena Cava), निम्न महाशिरा (Inferior Vena Cava) और हृदय शिराएँ (Coronary Veins) मिलकर अशुद्ध रक्त को लाती हैं और हृदय के दाएँ आलिन्द (Right Atrium) में संग्रहित करती है। दाएँ आलिन्द में आने के बाद रक्त का हृदय और फुफ्फुस के मध्य का क्रम चलता है जिसमें सर्वप्रथम दाएँ आलिन्द का संकुचन होता है और शिथिल अवस्था में पड़े दाएँ निलय का प्रसरण होता है। दोनों के मध्य का त्रिकपर्दिक कपाट (Tri-curpid Valve) खुल जाता है, जिससे रक्त दाएँ निलय में आ जाता है। कुछ देर बाद जब दायाँ निलय (Right Ventricle) संकुचित होता है तो रक्त फुफ्फुसीय धमनी (Pulmonary Artery) के द्वारा कक्ष से बाहर निकल जाता है और जो आगे चलकर दो भागों में विभक्त होकर दोनों फेफड़ों में रक्त को पहुंचाती हैं, जहाँ इसका शुद्धिकरण होता है। फुफ्फुस से शुद्ध रक्त चार फुफ्फुस शिराओं (Pulmonary Veins) के द्वारा हृदय के बाएँ आलिंद में आ जाता है, बायाँ आलिंद जैसे ही भर जाता है तब बाएँ आलिंद एवं बाएँ निलय के मध्य का द्विकपर्दिक कपाट (Bi-Curpid Valve) खुल जाता है तथा रक्त बाएँ निलय में भर जाता है। फिर यह द्विकपर्दिक कपाट बंद हो जाता है, अब बायाँ निलय संकुचित होता है और यहाँ से रक्त महाधमनी (Aorta) के द्वारा समस्त शरीर में वितरित होता है। इस प्रकार मूलत: हृदय का एक ही काम है रक्त को पम्प करना। इसमें एक ओर से रक्त आता है, तो दूसरी ओर से पम्प करके बाहर निकाल दिया जाता है।

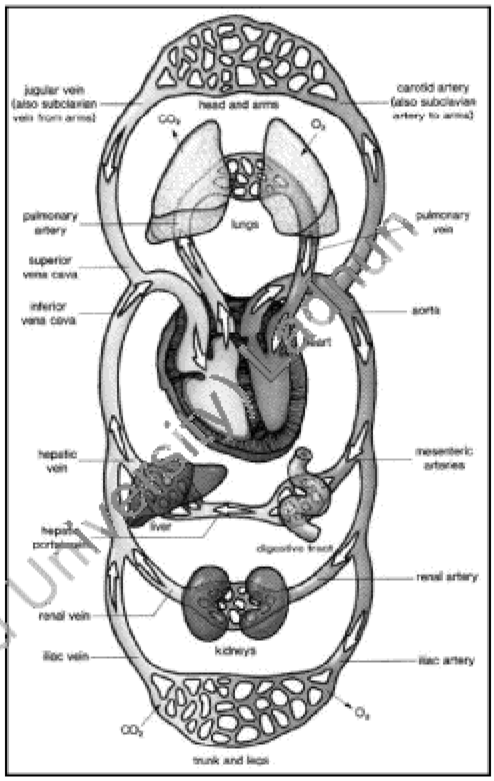

अर्थात् लाल रक्त कणों में स्थित हिमोग्लोबिन अपने भीतर की CO_2 को फेफड़ों में छोड़ देता है तथा वहाँ से O_2 को ग्रहण कर लेता है।

12.4 रक्त-चाप

रक्त-परिसंचरण का अर्थ है—रक्त का बहाव। जिस तरह समुद्र में पानी का बहाव एक निश्चित वेग से होता है, अगर निश्चित न हो तो वह पानी की प्रचुर मात्रा कैसे भी नुकसान पहुंचा सकती है उसी तरह इस शरीर रूपी समुद्र में भी रक्त रूपी पानी बहता है, तो इसका भी एक निश्चित वेग होता है, या शरीर विज्ञान की भाषा में कहें कि उचित दाब से ही रक्त रक्त-वाहिकाओं में बहता है। अर्थात् रक्त के द्वारा रक्त वाहिकाओं की भित्तियों पर पड़ने वाले दबाव को रक्त दाब या चाप कहते हैं। यह रक्त दाब विभिन्न रक्त वाहिकाओं में भिन्न-भिन्न होता है। महाधमनी में यह दबाव सर्वाधिक होता है। जैसे-जैसे रक्त आगे बढ़ता जाता है, यह दबाव कम होता जाता है। शिराओं में तो अत्यन्त कम हो जाता है। रक्त वाहिकाओं में रक्त सदैव भरा रहता है, वे कभी खाली नहीं होती। यद्यपि प्रत्येक हृदय-स्पंदन के साथ इनमें रक्त की और मात्रा धकेल दी जाती है। धमनियों की भित्तियाँ प्रत्यास्थ-उत्तक से बनी होती हैं। इस कारण ये उस धक्के को फैलकर सहन कर लेती हैं, और रक्त को अपने में समाहित कर लेती हैं। अगले ही क्षण धमनी के उसी भाग में संकुचन होने

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

से वह भाग तो पूर्ववत् दशा में आ जाता है, परन्तु धमनी के आगे वाला भाग जो अभी शिथिल था, वो फैलकर रक्त को ग्रहण करता है। इसी तरह रक्त आगे बहता रहता है। यह सारी क्रिया एक निश्चित दाब के अंतर्गत होती है। निलयों के संकुचन की अवस्था में दाब सर्वाधिक होता है, क्योंकि संकुचन के द्वारा धमनियों में जो रक्त पहले से रहता है, उसके अतिरिक्त और रक्त धकेल दिया जाता है, जिससे उनमें दाब अधिक हो जाता है। इस दाब को प्रकुंचन दाब (Systolic Pressure) कहते हैं। निलयों के शिथिलन से यह दाब कम हो जाता है। इस दाब को अनुशिथिलन दाब (Diastolic Pressure) कहते हैं। रक्त दाब कई बातों पर निर्भर करता है, जैसे— 1. निलय से धकेली गई रक्त की मात्रा, जिसे कार्डिअक आऊटपुट कहते हैं। 2. धमनिकाओं में रक्त-प्रवाह के प्रतिरोध की मात्रा कितनी है? 3. धमनिकाओं की दीवारों की प्रत्यास्थता कैसी है? 4. धमनियों में रक्त का कुल आयतन कितना है? 5. रक्त की श्यानता कितनी है? आदि। रक्त दाब को रक्त दाब मापी यंत्र (Sphygmomanometer) से नापा जाता है, एवं इसकी इकाई मिलीमीटर पारे (MMHg) में होती है। एक वयस्क व्यक्ति में प्रकुंचन-दाब, सामान्यत: 110 से 130 मिलिमीटर पारे के बीच तथा अनुशिथिलन दाब 70-90 मिलिमीटर पारे के बीच रहता है। उच्च रक्तचाप की स्थिति में इनमें से एक या दोनों ही बढ़ जाते हैं जबकि निम्न रक्त चाप की स्थिति में घट जाते हैं। रक्तचाप के बढ़ने या घटने में कई परिस्थितियाँ सहायक होती हैं, जैसे— वृक्क एवं हृदय संबंधी रोग, मानसिक स्तब्धता, उत्तेजना, चिंता, शारीरिक रोग, तनाव, दु:ख-सुख, शारीरिक श्रम इत्यादि। सामान्य जीवन में व्यक्ति का रक्त-दाब कम या ज्यादा होते रहना सामान्य बात है। लेकिन जब यही क्रम प्रतिदिन चले तो रोग का रूप ले लेता है। अत्यधिक उच्च रक्तचाप की स्थिति में मस्तिष्क की धमनियों के फट जाने का डर रहता है। उच्च रक्त-दाब से कभी-कभी रक्त-संचरण, श्वसन आदि जीवन संबंधी क्रियाओं का नियंत्रण रखने वाले केन्द्र निष्क्रिय हो जाते हैं, जिनसे हमारे जीवन पर संकट भी आ जाता है और कई बार मृत्यु भी हो जाती है।

12.5 हृदय के कार्यों एवं रक्तचाप पर प्रेक्षाध्यान का प्रभाव

रक्त प्रवाह को निरन्तर और निर्बाध बनाये रखने के लिए हृदय एक निश्चित गति से बिना रूके धड़कता रहता है। जैसे पूर्व में बताया जा चुका है कि निलयों के सिकुड़ने से रक्त धमनियों में प्रवाहित हो जाता है जो धमनी की दीवारों पर एक निश्चित दबाव डालता है। यही दबाव रक्तचाप कहलाता है। दाहिने आलिन्द की दीवार में स्थित गांठ जिसे एस. ए. नोड अथवा पेसमेकर कहा जाता है, के द्वारा ही हृदय के फैलने और सिकुड़ने का चक्र प्रारम्भ किया जाता है और एक बार जो गति स्थापित हो जाती है, वह आजीवन बनी रहती है। पेसमेकर ही हृदय की धड़कन के लय और ताल का जिम्मेदार है। ऐसा देखा गया है कि पेसमेकर द्वारा नियन्त्रित एवं संचालित हृदय गति में परिवर्तन तभी होता है, जब स्वायत्तशासी तन्त्रिका तंत्र से किसी प्रकार का तंत्रिकीय उद्दीपन हृदय की पेशियों को प्राप्त होता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि स्वायत्तशासी तंन्त्रिका तंत्र के अनुकम्पी (सिम्पैथेटिक) भाग के सक्रिय होने से हृदय गति बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त रक्त प्रवाह के द्वारा लाये गये कतिपय हॉर्मोन जैसे एड्रीनल ग्रंन्थि से एपीनेफ्रीन हॉर्मोन और थायरॉइड ग्रंन्थि से टी-3 और टी-4 हॉर्मोन भी हृदय गति को बढ़ाते हैं। कुछ वैज्ञानिकों ने यह भी देखा है कि शरीर का तापमान, भावावेश की अवस्था तथा बढ़ती उम्र में भी हृदय गति बढ़ जाती है। इन सभी परिस्थितियों के विश्लेषण से एक बात स्पष्ट होती है कि हृदय गति में परिवर्तन एवं उसका बढ़ना सिम्पैथेटिक तंत्रिकाओं और हार्मोनों के कारण ही होता है। यह भी निश्चित है कि हृदय गति के बढ़ते ही धमनियों में प्रवाहित होने वाला रक्त चाप भी बढ़ जाता है। यह स्थिति सुखद नहीं कही जा सकती क्योंकि रक्त की मात्रा बढ़ जाती है, जिसके परिणाम स्वरूप रक्तचाप बढ़ने से शरीर के सभी तंत्रों, ऊतकों एवं इकाई कोशिकाओं में चयापचय की दर सामान्य से बहुत अधिक हो जाती है जो निश्चित रूप से घातक सिद्ध हो सकती है। सबसे गम्भीर खतरा स्वयं हृदय को ही होता है। हृदयाघात एवं किसी भी धमनी या शिरा के फट जाने से जान लेवा रक्त स्राव (हेमरेज) की पूरी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

आंशका बनी रहती है। प्रेक्षाध्यान के अभ्यास क्रम में जब हम चैतन्य केन्द्रों की प्रेक्षा करते हैं तो न केवल तंत्रिका तंत्र के ऊर्जा जंक्शन (पलेक्सस) केन्द्रों की क्रियाओं को नियोजित करते हैं बल्कि अन्त: स्रावी ग्रंथियों के कार्यों को भी नियन्त्रित कर सकते हैं। इस प्रकार इस अभ्यास से स्वायत्तशासी तंत्रिका तंत्र के अनुकम्पी भाग को आवश्यकतानुसार कार्य करने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। इसके नकारात्मक प्रभावों को कम करने के लिए परानुकम्पी भाग को सक्रिय कर सकते हैं। हृदय की पेशियों को उत्तेजित करने वाले एड्रीनल ग्रंथि के हॉर्मोन के स्राव को नियन्त्रित करने में भी सफलता मिलती है। अनुप्रेक्षा के प्रयोग से मस्तिष्क में स्थित पियूष ग्रंथि का स्राव नियोजित होता है। चूंकि पियूष ग्रंथि ही अन्य अन्त: स्रावी ग्रंन्थियों को सक्रिय बनाती है अत: दूसरी ग्रंन्थियाँ (विशेष रूप से एड्रीनल ग्रंन्थि) और उनका स्राव स्वत: ही नियन्त्रण में आ जाते हैं। इस प्रकार चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा एवं अनुप्रेक्षा के प्रयोगों से हम हृदय गति को नियन्त्रित करने में सफल हो सकते हैं। एक बार हृदय गति के नियमित होते ही रक्त चाप स्वयं स्थिर हो जाता है।

12.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

निबंधात्मक प्रश्न

1. रक्त की संरचना एवं कार्यों को स्पष्ट करें।
2. हृदय की संरचना एवं कार्यों को स्पष्ट करते हुए उसके कार्यों पर प्रेक्षाध्यान के प्रभाव को विश्लेषित करें।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. रक्त परिवहन तंत्र के प्रमुख अंगों का वर्णन करें।
2. हृदय की संरचना का वर्णन करें।

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. रक्तचाप क्या है?
2. रक्तचाप पर प्रेक्षाध्यान के प्रभाव को स्पष्ट करें।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. रक्त प्लाविका किस रंग की होती है?
   (क) पीला (ख) सफेद
   (ग) हल्का पीला (घ) लाल ( )

2. मानव रक्त में पाए जाने वाले श्वेत रक्त कण कितने प्रकार के होते हैं?
   (क) दो (ख) चार
   (ग) पांच (घ) सात ( )

3. एक वयस्क व्यक्ति में प्रकुंचन दाब कितना रहता है?
   (क) 110 से 130 मिमी. (ख) 110 से 120 मिमी.
   (ग) 70 से 80 मिमी. (घ) 80 से 100 मिमी. ( )

4. रक्त की यात्रा के मुख्यत: दो वर्गों के नाम हैं?
   (क) हार्दिकी एवं फुफ्फुसीय परिसंचरण प्रणाली
   (ख) हार्दिकी एवं वृक्कीय परिसंचरण प्रणाली
   (ग) प्रतिहारिणी एवं फुफ्फुसीय परिसंचरण प्रणाली
   (घ) वृक्कीय एवं फुफ्फुसीय परिसंचरण प्रणाली ( )

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5. कौन से रक्त कण केन्द्रक विहीन होते हैं?

(क) लाल रक्त कण (ख) लसीका कणिका

(ग) मोनोसाइट (घ) श्वेत रक्त कण ( )

सनदर्भ पुस्तकें

1. Principles of Anatomy and Physiology–G.J. Tortora & N.P. Anagnastakos
2. शरीर क्रियाविज्ञान—डॉ. प्रमिला वर्मा, डॉ. कान्ति पाण्डेय
3. मानव शरीर रचना एवं क्रियाविज्ञान—डॉ. राजेश दीक्षित
4. जीवन विज्ञान की रूपरेखा—मुनि धर्मेश

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–13 : ऊर्जा की आवश्यकता— पोषक तत्त्व, शाकाहार एवं संतुलित आहार, उपवास एवं स्वास्थ्य

संरचना

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 स्वास्थ्य और आहार

13.2.1 प्रोटीन

13.2.2 विटामिन

13.2.3 कार्बोहाइड्रेट

13.2.4 वसा

13.2.5 खनिज लवण

13.2.6 जल

13.2.7 रेशेदार पदार्थ

13.3 शाकाहार

13.4 संतुलित आहार

13.5 उपवास और स्वास्थ

13.5.1 आहार और अनाहार

13.5.2 उपवास का आध्यात्मिक आधार

13.5.3 उपवास का वैज्ञानिक आधार

13.5.4 उपवास शरीर में क्या करता है?

13.5.5 विभिन्न रोग और उपवास

13.5.6 उपवास की अवधि

13.5.7 उपवास में सावधानियाँ

13.6 प्रश्नावली

13.0 उद्देश्य

1. स्वास्थ्य किसे कहते हैं?
2. स्वास्थ्य और आहार का क्या सम्बन्ध है?
3. विभिन्न पोषक तत्त्वों को समझ सकेंगे।
4. जीवन में शाकाहार की क्या उपयोगिता है?
5. मांसाहार से शरीर पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों को समझ सकेंगे।
6. आप जान पायेंगे कि किस तरह आहार हमारे मन व भावों को प्रभावित करता है?
7. संतुलित आहार क्या है?
8. उपवास की महत्ता को समझ सकेंगे।
9. उपवास से स्वास्थ को समझ सकेंगे।
10. उपवास के आध्यात्मिक आधार को समझ सकेंगे।
11. उपवास के वैज्ञानिक आधार को समझ सकेंगे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

13.1 प्रस्तावना

आहार हमारे शरीर का अभिन्न अंग है। आहार के अभाव में हम जीवन-यापन नहीं कर पाते। सृष्टि के आदि से ही प्राणी मात्र आहार प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहा है और सदा ही रहेगा। पशु, पक्षी, कीट, पतंगे सभी आहार के लिए निरन्तर दौड़-धूप करते हैं और जो कुछ भी प्राप्त कर पाते हैं उसी से अपने पेट की भूख मिटा कर संतोष कर लेते हैं, पर मनुष्य जो सभी प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ प्राणी है और जिसे प्रभु ने विवेक व बुद्धि दी है, उसे केवल पेट की भूख मिटाने से ही तो संतोष नहीं मिल जाता। उसे तो यह देखना पड़ता है कि उसका आहार सभी अवयवों या अंगों की भूख मिटाने में समर्थ है या नहीं। उस व्यक्ति को यह भी निरीक्षण करना होता है कि उसका आहार सही मायने में उपयुक्त, संतुलित और पौष्टिक है या नहीं। लेकिन इन सबकी जानकारी या मूल्यांकन करने के लिए व्यक्ति को चाहिए कि वह भोजन से प्राप्त होने वाले या उसमें पाये जाने वाले सभी तत्त्वों की सम्पूर्ण जानकारी कर लें। ताकि वह अपने भोजन को आवश्यकतानुसार नियमित व संतुलित बना सके।

13.2 स्वास्थ्य और आहार

संतुलित आहार ही हमें वांछित पोषण प्राप्त करा पाता है। संतुलित पोषण से ही हमारे सभी अंग-प्रत्यंग यथार्थ रूप में पनप पाते हैं, परिपक्व हो पाते हैं, सुगठित व सुडौल बन पाते हैं, तभी हममें शारीरिक शक्ति, स्फूर्ति और कार्य क्षमता का संचार हो पाता है और तभी हम सुस्वास्थ्य का लाभ प्राप्त कर पाते हैं। विश्व स्वास्थ्य-संघ (W.H.O.) ने भी सुस्वास्थ्य की ऐसी ही परिभाषा निर्धारित की है कि—"Health is the state of Complete Physical, Mental and Social well-being and not only the absence of disease or infirmity." अर्थात् केवल बीमारियों और व्याधियों से छुटकारा ही नहीं वरन् पूर्ण शारीरिक व मानसिक शक्तियों का विकास और सांसर्गिक कुशल व्यवहार की क्षमता का आविर्भाव ही सुस्वास्थ्य है।

चूंकि सुस्वास्थ्य अधिकांशतः समुचित आहार पर निर्भर करता है और आहार की यथोचित उपयुक्तता उससे संबंधित वैज्ञानिक जानकारी पर, अतः यह आधारभूत जानकारी प्राप्त करना अत्यावश्यक है। दवाइयों को छोड़कर वे सभी खाद्य पदार्थ जो हम खाते या पीते हैं और जिनसे हमारा शरीर बनता है, पनपता है, परिपक्व होता है, परिवर्धित होता है, सुडौल व सुगठित होता है, और जिससे स्वास्थ्य बनता है व जीवनयापन होता है, वही हमारा 'आहार' या 'भोजन' है। साथ ही भोजन हमारे शरीर में ऊर्जा, स्फूर्ति, गति, कार्य-क्षमता, उष्णता की उत्पत्ति और गति से होने वाली क्षति की पूर्ति करता है।

शारीरिक वृद्धि, विकास, परिवर्धन और शारीरिक अवयवों की क्षतिपूर्ति के लिए अर्थात् उन कोशिकाओं की क्षतिपूर्ति के लिए जिनमें सभी अवयव बनते हैं, यह आवश्यक है कि हमारे भोजन में वे सभी तत्त्व हों जिनसे हमारे शरीर की कोशिकाएँ बनी हैं, अतः पहले हमें यह जान लेना आवश्यक है कि हमारे शरीर की कोशिकाओं को किन-किन तत्त्वों से ऊर्जा प्राप्त होती है।

शरीर की बनावट में अर्थात् कोशिकाओं की बनावट में मुख्यतया प्रोटीन, लाइपिड्स या वसा, कार्बोहाइड्रेटस, खनिज पदार्थ व जल काम में आते हैं। लाइपिड्स व कार्बोहाइड्रेटस अधिकांश ऊर्जा उत्पन्न करते हैं। एक 55 किलोग्राम वजन के भारतीय व्यक्ति में इनका परिणाम और प्रतिशत अनुपात लगभग निम्न रूप से होता है:—

पोषक तत्त्व	किलोग्राम	प्रतिशत
प्रोटीन	8.8	16
कार्बोहाइड्रेटस	0.55	1
लाइपिड्स	6.60	12
खनिज पदार्थ	3.30	6
जल	33.75	65
कुल योग	**55.00**	**100**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

13.2.1 प्रोटीन

प्रोटीन नाइट्रोजनीय आर्गेनिक पदार्थ है। सन् 1838 ई. में डेनमार्क निवासी मल्डर नामक रसायन शास्त्री ने नाइट्रोजनयुक्त पदार्थों को पृथक् कर यह प्रमाणित कर दिया कि ऊतकों के आधारभूत घटक नाइट्रोजन ही हैं। उन्होंने उसे प्रोटीन कह कर पुकारा। 'प्रोटीन' शब्द ग्रीक शब्द 'प्रोटीऑस' से लिया गया है, जिसका तात्पर्य पहले आना होता है। शरीर के पोषण में इसका प्रमुख हाथ रहता है, इसलिए इसका नाम प्रोटीन पड़ा। प्रोटीन हमारे शरीर के प्रत्येक अंग-प्रत्यंगों को बनाने, उनकी वृद्धि करने, परिपक्व करने, सुडौल व सुगठित करने और क्षतिग्रस्त कोशिकाओं का पुनरावर्तन करने में सक्षम होते हैं, अत: यह हमारे आहार का मुख्य अंग बनते हैं। आहार से प्राप्त प्रोटीन, कोशिकाओं के प्रोटीन से भिन्न होने के कारण उनके अनुरूप बनने के लिए इनकी मेटाबालिज्म की प्रक्रियाओं से कोशिका प्रोटीन में परिवर्तित होना पड़ता है। हमारे शरीर की प्रत्येक कोशिका में प्रोटीन का मौलिक अंश होता है। कुल शारीरिक प्रोटीन का 1/3 भाग मांसपेशियों में होता है। 1/5 भाग अस्थियों, उपास्थियों, दांतों व त्वचा में होता है और शेष भाग अन्य ऊतकों व शरीर के तरल द्रवों में होता है, जैसे रक्त हीमोग्लोबिन, लसीका ग्रंथि स्राव, मस्तिष्क मेरूतरल, श्लेष्मक तरल आदि। सभी एन्जाइम्स व हॉर्मोन में भी प्रोटीन ही अधिकता से होता है। कोशिकाओं के केंद्रक में भी प्रोटीन की न्यूक्लियो-प्रोटीन के रूप में विद्यमानता होती है। तात्पर्य यह है कि शरीर के सभी ऊतकों में प्रोटीन होता है। प्रोटीन विहीन यदि कोई तरल है तो वह है पित्त या मूत्र। मूत्र में केवल प्रोटीन के चयापचय से उत्पन्न उच्छिष्ट पदार्थ (Waste Matter) ही होते हैं, जैसे- क्रियेटिनिन और यूरिया।

यह प्रोटीन कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, गंधक, फास्फोरस से बने हुए 22 प्रकार के यौगिक का सम्मिश्रण है। इन यौगिकों को अमीनो अम्ल कहते हैं। इनमें से 10 अमीनो अम्ल ऐसे हैं, जो उचित पोषण के लिए नितांत अनिवार्य होते हैं और किसी भी आहार में उनकी व्यवस्था पर्याप्त तथा उचित अनुपात में होना चाहिए। अमीनो अम्ल भी भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं और प्रोटीन में भिन्न-भिन्न मात्रा में पाये जाते हैं। इस तरह भिन्न-भिन्न प्रकार एवं भिन्न-भिन्न मात्रा वाले अमीनो अम्लों के योग से असंख्य प्रकार के प्रोटीन बन जाते हैं।

आवश्यक प्रोटीन	**अनावश्यक प्रोटीन**
1. ल्यूसिन	1. हिस्टिडीन
2. आइसोल्यूसिन	2. ग्लाइसिन
3. लाइसिन	3. ग्लूटामिक एसिड
4. मिथियोनिन	4. आर्जिनिन
5. फेनिल-एलेनिन	5. प्रोलिन
6. थ्रीयोनिन	6. एलानिन
7. वैलिन	7. एस्पारटिक एसिड
8. ट्रिप्टोफेन	8. सिरिन
	9. टाइरोसिन
	10. सिस्टिन
	11. एस्पारजिन
	12. ग्लूटामिन

13.2.1.1 प्रोटीन का रासायनिक स्वरूप

प्रोटीन का अंतिम अंश अमीनो अम्ल होता है। अमीनो अम्ल के एक अणु में एक कार्बन परमाणु C होता है। जिसके साथ एक हाइड्रोजन परमाणु H, एक कार्बोक्सिल ग्रुप- COOH, एक एमाइनो ग्रुप- NH_2 व एक रेडिकल ग्रुप R होता है। जहाँ एमाइनो एसिड का अन्य अणु जुड़ा रहता है। अत: इसका स्वरूप है-

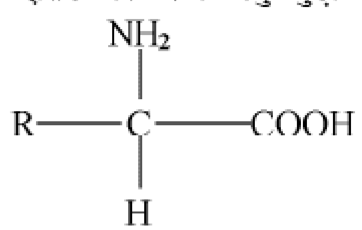

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

13.2.1.2 प्रोटीन की उपयोगिता

मानव शरीर बहुत ही सूक्ष्म कोशिकाओं से बना है। गर्भाधान के बाद सूक्ष्म कोशिकाएँ संख्या में बढने लगती हैं— एक से दो, फिर चार, आठ और सोलह। इस तरह इनकी संख्या असंख्य हो जाती है। इनका कार्य तथा ढांचा भी विभिन्न प्रकार का होता है। नौ महीनों के बाद उनकी संख्या करोडों में हो जाती है जो मानव-शरीर क्रिया को सुचारू रखती है। शरीर में उपस्थित तत्त्वों में से प्रोटीन एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है।

प्रोटीन में परिवर्तन क्रिया को उत्तेजित करने की शक्ति रहती है। भोजन के अवशोषण के उपरान्त शरीर में गर्मी उत्पन्न होती है। इसे भोजन की 'विशिष्ट गतिक क्रिया' कहते हैं। इस क्रिया में प्रोटीन युक्त भोजन अधिक प्रभावकारी होता है।

भोज्य पदार्थों से जो प्रोटीन हमारे शरीर में आता है, वह आमाशय तथा आंत्रों में एन्जाइमों की सहायता से अमीनो अम्ल में परिवर्तित हो जाता है। रक्त नलिकाओं द्वारा ये अमीनो अम्ल अवशोषित हो जाते हैं, जहाँ से उत्तक अपने आवश्यकतानुसार स्वयं निर्मित प्रोटीन बनाने के लिए आवश्यक पदार्थ ले जाते हैं। इस क्रिया में जो अमीनो अम्ल अवशोषित नहीं हो पाता है, वह यकृत में चला जाता है, जहाँ वह ईंधन पदार्थ का काम करता है और ऊर्जा तथा उष्मा प्रदान करता है। एक ग्राम प्रोटीन से 4 कैलारी ऊर्जा मिलती है। सारांशत: प्रोटीन के उपयोग:—

I. कोशिकाओं का निर्माण, वर्द्धन, गठन, परिवर्द्धन और उनकी क्षतिपूर्ति। फलस्वरूप अंग प्रत्यंगों का वर्द्धन, गठन और विकास। गर्भ में बच्चों के शरीर का गठन और शिशुओं की शारीरिक वृद्धि। युवावस्था तक शारीरिक परिवर्द्धन व गठन।
II. सभी एन्जाइम्स का मौलिक अंश बन उनका निर्माण करते हैं।
III. आंतरिक ग्रंथियों के स्राव व हॉर्मोन्स की बनावट में भाग लेते हैं। इन्सूलिन, थाइरॉक्सिन, एड्रिनलिन व अन्य हॉर्मोन्स में विद्यमान रहते हैं।
IV. ऐण्टिबॉडीज जो अधिकांश रक्त के ग्लोब्युलिन अंश में बनते हैं, का निर्माण करते हैं जो संक्रमण से रक्षा करते हैं।
V. शारीरिक द्रव वितरण व्यवस्था को नियमित करते हैं। रक्त में विद्यमान प्रोटीन कण— एल्ब्यूमिन अन्तरा कोशिका द्रव को रक्त धमनियों में सोखते हैं जिससे जल-जमाव या शोफ (Oedema) की स्थिति पैदा न हो पाये।

13.2.1.3 प्रोटीन का अभाव (आहार एवं पोषक)

I. उम्र के अनुपात में शारीरिक गठन, वृद्धि, विकास व परिवर्द्धन में कमी।
II. मांसपेशियों की शिथिलता।
III. निस्तेजता।
IV. त्वचा का सूखापन-झुर्रियाँ पड़ना और स्थान-स्थान पर चकते पड़ना।
V. रक्त-हीनता।
VI. मानसिक विकास में कमी— मेधा व बुद्धि की मन्दता विशेषकर उन बच्चों में जिन्हें शैषव-काल में उत्तम प्रोटीन न मिला हो।
VII. चिड़चिड़ापन, क्रोध, भावुकता आदि।
VIII. बालों का सूखापन और कंघी करने पर अधिक टूटना।
IX. नाखून का सूखापन और उन पर सफेद दागों का उभरना।
X. पेट फूलना और यकृत का बढना।
XI. एण्टिबॉडी की कमी व रोगों से बचाव की शक्ति में कमी।
XII. हॉर्मोन्स की कमी और आंतरिक शक्ति की क्षमता में कमी।
XIII. जल-जमाव।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

13.2.2 विटामिन

केवल प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, जल और लवण से ही शरीर स्वस्थ नहीं रह सकता। इनको शरीरोपयोगी बनाने के लिये कुछ अन्य पोषक तत्त्वों की भी आवश्यकता होती है। जो हमें शाक-भाजी, ताजे फल, दूध-दही आदि से प्राप्त होते हैं। ऐसे रासायनिक पदार्थ को 'विटामिन' कहते हैं। यह शरीर की अनेक क्रियाओं के संपादन के लिए नितांत आवश्यक है। विटामिन कोई भोजन नहीं है। केवल विटामिन खाकर मनुष्य जीवित नहीं रह सकता। इससे टूटे-फूटे उत्तक नहीं बन सकते। फिर भी, विटामिन के अभाव में उन सब क्रियाओं का होना संभव नहीं है, जिन पर हमारा जीवन निर्भर करता है। इनसे कोई कैलोरी प्राप्त नहीं होती, किन्तु ये शरीर के चयापचय में रासायनिक प्रक्रियाओं के नियमन के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

किसी भी प्राणी में असंख्य जीवित कोशिकाएँ रहती हैं। प्रत्येक कोशिका अपनी बाह्यकला द्वारा अपनी आवश्यकता के पदार्थ ग्रहण करती है। कोशिकाओं की यह क्रिया एंजाइम द्वारा होती है। एंजाइम के अभाव में हम भोजन उचित रूप से पचा नहीं सकते। शरीर की और भी क्रियाएँ इसी पर निर्भर करती हैं। शरीर में रासायनिक प्रक्रियाएं एंजाइम द्वारा होती रहती हैं। 'एंजाइम' में विभिन्न प्रकार के विटामिन रहते हैं। विटामिन की कमी से एंजाइम नहीं बन पाता और शरीर में विकार पैदा होने लगता है तथा कई प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। शरीर की वृद्धि रूक जाती है। जीवों पर परीक्षण कर यह देखा गया कि उनके भोजन में विटामिन की कमी होने से उनकी हालत खराब होने लगी, उसे 'विटामिन न्यूनता' रोग कहा गया। उसी तरह मनुष्य के भोजन में प्राकृतिक भोजन की कमी होने से विटामिनों की हीनता का रोग होने लगा। ऐसे रोग का उपचार उन्हीं विशिष्ट विटामिनों को देने से हो जाता है। शरीर स्वयं एन्जाइम उत्पन्न करता है, परन्तु यह आवश्यकतानुसार स्वयं विटामिन उत्पन्न नहीं कर पाता। इसलिए हम भोजन द्वारा विटामिन शरीर में पहुंचाते हैं। क्योंकि शरीर में विटामिन की अल्प मात्रा की आवश्यकता रहती है।

विटामिन का आविष्कार क्रिशियोर फंक ने 1912 ई. में किया। विटामिन ''जीवनदाता'' या जीवनीय तत्त्व के रूप में जाना जाता है। विटामिन विभिन्न प्रकार के होते हैं जो हमारे शरीर के लिए अति आवश्यक होते हैं। इन्हें हम भोजन से प्राप्त करते हैं। हमारा शरीर भी किंचित् मात्रा में विटामिन स्वयं भी उत्पन्न करता है, जैसे— ई, के, सी, बी कॉम्प्लेक्स की कुछ मात्रा।

मुख्यतया दो श्रेणी के विटामिन्स होते हैं—

1. वसा में घुलनशील (Fat Soluble),
2. जल में घुलनशील (Water Soluble)।

1. वसा में घुलनशील विटामिन्स—

   इस श्रेणी में आने वाले विटामिन्स निम्नलिखित हैं—

   (i) विटामिन 'ए'।

   (ii) विटामिन 'बी'।

   (iii) विटामिन 'डी'।

   (iv) विटामिन 'ई'।

   (v) विटामिन 'के'।

2. जल में घुलनशील विटामिन्स—

   इस श्रेणी में दो विटामिन्स मुख्य हैं—

   (i) विटामिन 'बी' कॉम्पलेक्स।

   इसमें भी भिन्न-भिन्न विटामिन्स आते हैं—

   बी$_1$—थायमिन।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

बी$_2$—राइबोफ्लेविन।

बी$_6$—नियासीन।

बी$_{12}$—कोबालामिन।

फोलिक अम्ल या फोलाजीन।

(ii) विटामिन 'सी'।

वसा में घुलनशील और जल में घुलनशील विटामिन्स में अन्तर—

वसा में घुलनशील	पानी में घुलनशील,
1. भोजन में अधिक मात्रा होने पर यकृत में संचय।	अतिरिक्त मात्रा का मूत्र द्वारा उत्सर्जन,
2. कमी के लक्षण देरी से प्रकट होते हैं।	कमी के लक्षण तुरन्त प्रकट होते हैं,
3. इसमें केवल कार्बन, हाइड्रोजन व ऑक्सीजन के अणु होते हैं।	इनमें कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन के अलावा नाइट्रोजन आदि के अणु भी होते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

विटामिन्स की मात्रा के अंकन का आधार इण्टरनेशनल यूनिट्स या मिलीग्राम होती है। अधिक छोटे माप के लिए माइक्रोग्राम का प्रयोग होता है। एक-एक विटामिन का विस्तृत विवरण इस प्रकार है—

1. विटामिन 'ए' : यह वसा में आसानी से घुलने वाला विटामिन है। यह हमारे शरीर के लिए वृद्धिकारक है। रोग-प्रतिरोधक क्षमता को यह बहुत प्रभावित करता है। इसकी कमी के परिणामस्वरूप रोग-प्रतिरोधक क्षमता क्षीण होने लगती है। यह नाक, कण्ठ, श्वसन-तंत्र की श्लेष्मिक झिल्ली व आँखों को स्वस्थ रखता है तथा त्वचा को साफ व चिकना बनाए रखता है। यह मूत्रनली, गुर्दे व पाचन क्रिया के लिए लाभदायक है और दान्त व हड्डियों के विकास में सहायक बनता है। इस विटामिन की कमी शरीर की त्वचा को रुक्ष एवं कड़ा बना देती है और मनुष्य को रतौन्धी (Night Blindness) रोग से ग्रस्त कर देती है।

2. विटामिन 'बी' : यह विटामिन जल में घुलनशील विटामिन है। यह विटामिन-समूह है, जो 'विटामिन बी समग्र' (Vitamin B Complex) के नाम से जाना जाता है। 'विटामिन बी कॉम्प्लेक्स' के हरेक विटामिन का प्रभाव भी शरीर पर भिन्न-भिन्न होता है। ये विटामिन्स प्राय: सभी प्रकार की खाद्य वस्तुओं में मौजूद होते हैं लेकिन भिन्न-भिन्न मात्राओं में। मौसम्मी, अंगूर, टमाटर, सन्तरा, हरे फल, बादाम, गेहूँ, चावल आदि के छिल्के, हरी पत्तेदार सब्जियाँ, अण्डे, दूध आदि इस विटामिन के मुख्य स्रोत हैं।

(i) विटामिन 'बी'$_1$ (Thaimin) : विटामिन बी$_1$ शरीर की तंत्रिका एवं मांसपेशियाँ के लिए बहुत जरूरी है। बिना विटामिन बी$_1$ के इन अंगों का कार्य सुचारू रूप से नहीं चल सकता। इस विटामिन के द्वारा ही कोशिकाओं में कार्बोज का समुचित उपयोग हो पाता है। इस विटामिन की कमी शरीर में अनेक समस्याओं को उत्पन्न कर देती है, जैसे— श्वसन क्रिया का बढ़ना, हाथ-पैरों में सूजन तथा रक्तहीनता आदि। विटामिन बी$_1$ के बिना बेरी-बेरी नामक रोग हो जाता है।

(ii) विटामिन 'बी'$_2$ (Ribo Flavin) : यह विटामिन भी जल में घुलनशील है। यह विटामिन कार्बोज के चयापचय में एन्जाइम का मददगार बनता है। इस विटामिन की कमी शरीर में निम्न लक्षण प्रकट करती है—

1. बाल झड़ना,
2. पाचन क्रिया का गड़बड़ाना,
3. त्वचा पर चकते,
4. जीभ पर छाले,

5. आँखों में जलन,

6. होट फटना,

7. नेत्र दौर्बल्य आदि।

(iii) विटामिन 'बी'$_6$ (Nicotinic Acid) : विटामिन बी$_6$ की कमी पेलेग्रा रोग उत्पन्न कर देती है। यह विटामिन दूध, खमीर, यकृत, वृक्क, अण्डे, मांस, मूंगफली व छिलके सहित अनाज में अधिक पाया जाता है। इस विटामिन की कमी से शरीर में निम्न लक्षण दिखाई देते हैं—

1. होट व जीभ का फटना,
2. रक्ताल्पता,
3. स्नायुरोग,
4. आन्तों में सूजन,
5. मल के साथ खून का स्राव,
6. त्वचा पर चकते पड़ना,
7. घबराहट,
8. चिड़चिड़ापन आदि।

(iv) विटामिन 'बी'$_{12}$— विटामिन बी$_{12}$ वनस्पतियों में नहीं पाया जाता है। यह यकृत में पाया जाता है। शरीर को जितनी मात्रा चाहिए, उतना विटामिन बी$_{12}$ शरीर की आंतों में बनता रहता है। सूई या सिरिंज से भी इसकी पूर्ति की जा सकती है।

(v) फोलिक अम्ल— पालक, हरी सब्जियां, खमीर तथा यकृत फोलिक अम्ल के मुख्य स्रोत हैं। इसकी कमी शरीर में वृहत् लोहित कोशिका नामक रोग को उत्पन्न कर देती है।

3. विटामिन 'डी'— यह विटामिन भी वसा में घुलने वाला है। यह भी उन सभी खाद्य पदार्थों में पाया जाता है, जिनमें विटामिन 'ए' उपस्थित होता है। अस्थि विकृति नाशक के रूप में यही विटामिन जाना जाता है। मक्खन, दूध, मछली, अण्डे आदि में इसकी प्रचुर मात्रा होती है। सूर्य का प्रकाश इस विटामिन का बहुत अच्छा स्रोत है, अत: धूप-स्नान का विशेष महत्त्व है। कैल्शियम के चयापचय में विटामिन 'डी' की भूमिका रहती है। इसकी कमी से शरीर की हड्डियाँ अधिक कोमल होकर मुड़ने लगती हैं, जिसे 'अस्थि मृदुता' नामक रोग कहा जाता है। इसकी कमी से पाचन संबंधी विकार उत्पन्न होने लगते हैं।

4. विटामिन 'ई'— यह विटामिन भी वसा में घुलने वाला विटामिन है। यह प्रजनन प्रक्रिया के लिए आवश्यक विटामिन है। यदि इस विटामिन की शरीर में कमी हो जाए तो पुरुष नपुंसक व स्त्री बंध्या हो जाती है। यह बंध्यता को दूर कर पुरुषत्व शक्ति की वृद्धि करता है। अंकुरित अनाज, दूध, मक्खन, मांस, हरी सब्जियाँ, मेवा आदि इसके प्रमुख स्रोत हैं। अंकुरित गेहूँ इसका सबसे बड़ा स्रोत है। इसका अभाव शरीर व हृदय की मांसपेशियों को क्षीण कर देता है।

5. विटामिन 'के'— शरीर की आन्तों में जीवाणु इस विटामिन का उत्पादन करते रहते हैं और यह रक्त द्वारा अवशोषित होता रहता है। इसी की सहायता से यकृत प्रोथ्रोम्बिन बनाता है, जिससे रक्त का थक्का (Clot) बनता है और रक्त स्राव रुकता है। इस प्रकार इस विटामिन की कमी से रक्त का थक्का नहीं बन पाता है और रक्त स्राव नहीं रुकता है। अत: यह रक्तस्राव अवरोधक विटामिन कहा जाता है। स्नायु तंत्र और पाचन तंत्र के अनेक रोगों का कारण इस विटामिन की कमी को माना जाता है। इसके प्रमुख स्रोत हैं— सोयाबीन, हरी सब्जियाँ, टमाटर आदि।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6. विटामिन 'पी'— यह विटामिन कोशिकीय प्रतिरोध शक्ति बनाए रखने में मददगार है। हरी पत्तेदार सब्जियाँ, मुनक्के, रसदार फल आदि इसके प्रमुख स्रोत हैं। अधस्त्वक ऊतकों में रक्तस्राव इसके अभाव से होता है।

7. विटामिन 'सी'— यह विटामिन जल में घुलनशील है। आँवला, नीम्बू, सन्तरा, अमरूद, टमाटर, हरी सब्जियाँ, रसदार फल, गाजर, प्याज आदि इसके मुख्य स्रोत हैं। यह विटामिन ज्यादा ताप सहन नहीं कर सकता और वायु के समागम से नष्ट हो जाता है। हड्डियों व दान्तों को मजबूत करता है। इसके अभाव में स्कर्वी रोग हो जाता है अर्थात् इसके सेवन से स्कर्वी रोग ठीक हो जाता है। इसकी कमी शरीर की रोग-प्रतिरोधक क्षमता को क्षीण कर देती है, घाव नहीं भरते, अस्थि मृदुता, संधिशोथ, रक्त स्राव इसकी कमी से होने वाले रोग हैं।

13.2.3 कार्बोहाइड्रेटस

भोजन का ज्यादातर हिस्सा कार्बोहाइड्रेट्स ही होता है। यह ऊर्जा निर्माण में काम आता है। यह सरलता से पैदा किया जा सकता है तथा इसका लम्बे समय तक भण्डारण किया जा सकता है। प्रोटीन एवं वसा के खाद्य पदार्थ से अधिक सस्ता होने के कारण आम व्यक्ति के भोजन में यही उपयोग किया जाता है। कार्बोहाइड्रेटस हमारे भोज्य पदार्थों में शर्करा के रूप में उपस्थित रहता है।

रासायनिक स्वरूप

कार्बन, ऑक्सीजन एवं हाइड्रोजन के परमाणुओं के मिलने से कार्बोहाइड्रेट का निर्माण होता है। सरल शर्कराओं में जो मोनोसैकराइड्स कहे जाते हैं, उनमें 6 कार्बन, 12 हाइड्रोजन, 6 ऑक्सीजन परमाणु सम्मिलित होते हैं, जिनका सूत्र है— $C_6H_{12}O_6$। स्टार्च का विभाजन होने पर सबसे पहले डेक्स्ट्रीन बनता है, जिनमें कई शर्कराएँ सम्मिश्रित रहती हैं, जो पोली सैकराइड्स कही जाती हैं। इसके बाद डेक्सट्रिन-डाई-सैकराइड्स में बदलता है तथा फिर ट्राई-सैकराड्स में।

शर्करा खाद्य पदार्थों की स्वाभाविक मिठास होती है। यह मिठास कन्दमूल, अनाज एवं बीजों में अधिक होती है। अनाज के बीज पककर स्टार्च में परिवर्तित हो जाते हैं। केले व अमरूद जैसे कुछ फलों की कच्ची अवस्थाओं में स्टार्च अधिक होती है लेकिन जब वे पक जाते हैं, तो स्टार्च शर्करा में परिवर्तित हो जाती है। नीम्बू, अंगूर, मौसम्मी जैसे रसदार फलों में साइट्रिक एसीड अधिक होता है, जो पकने पर ग्लूकोज, फ्रुक्टोज आदि शर्करा में बदल जाते हैं। गाजर, शकरकन्द, शलजम, चुकन्दर, दूध, खजूर, गन्ना ऐसे खाद्य-पदार्थ हैं, जिनमें शर्करा पर्याप्त रहती है। शर्करा गन्ने में सुक्रोज के रूप में रहती है, अंगूर में ग्लूकोज के रूप में, फलों में फ्रुक्टोज के रूप में और दूध में लेक्टोज के रूप में रहती है। गेहूँ, चावल, मकई, ज्वार, आलू, बाजरा, साबूदाना, अखरोट आदि से प्राप्त होने वाला श्वेतसार शर्करा के रूप में ही हमारे काम आता है। शरीर में जाकर श्वेतसार पाचक रसों से क्रिया करता है और शर्करा का रूप ले लेता है। इस श्वेतसार को चार भागों में विभाजित किया गया है—

(i) मोनोसैकेराइड्स ($C_6H_{12}O_6$) : मोनोसैकराइड्स कार्बोज के अणु में शर्करा की एक इकाई को कहते हैं। ग्लूकोज, फ्रुक्टोज, गेलेक्टोज, मेनोज आदि मोनोसैकराइड्स के अंग हैं।

(ii) डाई-सैकराइड्स ($C_{12}H_{22}O_{11}$) : डाईसैकराइड्स वह शर्करा है, जो मोनोसैकराइड्स के दो परमाणुओं के मिलने से बनती है। यह द्विशर्करा के नाम से भी जानी जाती है। सुक्रोज, माल्टोज, लेक्टोज आदि इसी के उदाहरण हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(iii) ट्राई सैकराइड्स : वह शर्करा जो मोनोसैकराइड्स के तीन परमाणुओं के मिश्रण से बनती है, उदाहरणार्थ— रेफिनोज।

(iv) पॉली सैकराइड्स ($C_6H_{12}O_6$) : वह शर्करा जो मोनोसैकराइड्स के तीन या तीन से अधिक परमाणुओं के मिश्रण से बनती है। पॉलीसैकराइड्स के नाम से जानी जाती है। उदाहरण के लिए ग्लाइकोजन, सेलुकोज, अनाज का माण्ड आदि।

13.2.4 वसा

वसा चिकने पदार्थों के सभी रूपों में होती है। इसमें वसीय अम्ल अधिक होता है लेकिन ऑक्सीजन की मात्रा अधिक होती है। यह कार्बन, हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन का संयोग है। घी, तेल, मक्खन आदि जैसे वे सभी खाद्य पदार्थ जो चिकनाई युक्त होते हैं, वसा कहलाते हैं। चिकनाईयुक्त दिखने वाले ये सभी खाद्य-पदार्थ हमारी भोज्य वसा की मात्रा का 40 प्रतिशत भाग बनाते हैं और अनाज, अखरोट, सोयाबीन, दूध, मेवे, पनीर जैसे परोक्ष वसीय पदार्थ भोज्य वसा का 60 प्रतिशत भाग बनाते हैं।

वसा कार्बन, हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन के मिश्रण से बनी हाती है। कार्बन व हाइड्रोजन की अधिक मात्रा समाहित रहने के कारण वसा कार्बोहाइड्रेट से दोगुनी ऊर्जा बनाती है। लाइपिड (वसा) दीर्घावधि के लिए ऊर्जा बनाने में सक्षम हैं जबकि कार्बोहाइड्रेट से लवण ऊर्जा बनती है जो दीर्घावधि के लिए सक्षम नहीं होती है। शरीर में ऊर्जा व उष्मा उत्पादन करने में वसा की अहम भूमिका होती है। एक ग्राम वसा नौ कैलोरी ऊर्जा बनाती है। एक वयस्क व्यक्ति के लिए प्रतिदिन 35-60 ग्राम वसा पर्याप्त है। जरूरत से अधिक वसा चर्बी के रूप में शरीर के विभिन्न भागों में जमा हो जाती है। वसा के पाचन हेतु कार्बोहाइड्रेट की जरूरत होती है। इसके बिना वसा अधपची रह जाती है जो कई रोगों को पैदा कर सकती है।

13.2.5 खनिज लवण

मनुष्य शरीर के कुल भार का 25वां हिस्सा खनिज लवण से ही बना होता है। शरीर में तकरीबन 20 प्रकार के खनिज तत्त्व मौजूद होते हैं जो अनेक प्रकार के खनिज लवणों का निर्माण करते हैं। नमक, पोटैशियम, कैल्शियम, फॉस्फोरस, आयोडीन, लोहा, ताम्बा, जस्ता, मैग्नेशियम, क्लोरिन आदि मुख्य खनिज लवण हैं। केवल नमक अलग से लेना पड़ता है, शेष सभी प्रकार के खनिज लवण हमारे भोज्य पदार्थों में मौजूद रहते हैं। कैल्शियम दांतों व अस्थियों के लिए पौष्टिक है। यह हृदय की क्रिया को संतुलित करता है, कोशिकाओं की मरम्मत व रक्त के थक्का बनाने में सहायक है। लोहे की कमी शरीर में रक्ताल्पता रोग उत्पन्न कर देती है। आयोडीन की कमी से घेंघा रोग हो जाता है। मैग्नेशियम की कमी रक्त को अशुद्ध कर देती है। ये लवण शरीर के सभी ऊतकों में पाए जाते हैं एवं उनकी टूट-फूट की मरम्मत व कार्य-सम्पादन में सहायक बनते हैं। अनावश्यक अकार्बनिक नमक शरीर से मूत्र के द्वारा उत्सर्जित कर दिये जाते हैं। व्यक्ति प्रतिदिन औसतन 20-39 ग्राम खनिज लवणों का उत्सर्जन करता है, जिनकी आपूर्ति खाद्य पदार्थों से पुनः होती रहती है।

हमारे लिए इन खनिज लवणों के मुख्य स्रोत हैं— दाल, चावल, गेहूँ, अण्डे, मांस, मछली, मेवा, लहसुन, प्याज, मूंगफली, फल, दूध, सब्जियाँ आदि। खनिज पदार्थ पोषण एवं गुण की दृष्टि से निम्न पांच भागों में विभक्त किए जा सकते हैं—

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

I.	1. कैल्शियम 2. फॉस्फोरस	अस्थि निर्माण व शारीरिक वृद्धि
II.	3. सोडियम 4. पौटेशियम	अम्ल सन्तुलन
III.	5. आयरन 6. कॉपर 7. कॉबाल्ट	रक्त निर्माण
IV.	8. क्लोरिन 9. आयोडीन 10. फ्लूऑरिन	Hcl, थाइरॉक्सिन निर्माण
V.	11. मैग्नेशियम 12. मैंग्नीज 13. जिंक 14. सल्फर	हार्मोन उत्पादन

13.2.6 जल

जल हमारे शारीरिक वजन का लगभग 65% भाग बनाता है। एक 55 किलो व्यक्ति में जल का वजन 35 या 36 किलो होता है। शरीर की संरचना में इतने अधिक परिमाण में साझीदार होना, हमारे शरीर में इसकी महत्ता को स्पष्ट करता है।

एक व्यक्ति भोजन के बिना 60-70-100 दिनों तक जीवित रह सकता है लेकिन जल के बिना 4-5 दिन से ज्यादा जीवित नहीं रह सकता। चूंकि हमारे शरीर में जल की ही मात्रा सर्वाधिक है। रक्त में इसकी मात्रा 60 से 62 प्रतिशत तक रहती है। ऊतकों की क्रियाएँ मंद पड़ जाती हैं। पेशी में भी जल की मात्रा अधिक रहती है। शरीर में बनने वाले स्राव का आधार भी जल ही होता है। भोज्य पदार्थ तथा उनके पचे भाग जल में ही घुलकर शरीर में अवशोषित हो पाते हैं। यह हमारे शरीर में सुखे खाद्य-पदार्थों, तरल पदार्थों तथा शरीर के अन्दर ऑक्सीजन की क्रिया द्वारा उत्पन्न होता है। ऑक्सीजन क्रिया से लगभग आधा किलो जल उत्पन्न होता है। जल शरीर के तापक्रम को संतुलित बनाए रखता है तथा शरीर के विषाक्त पदार्थों के उत्सर्जन में सहायता करता है। शरीर से मूत्र, पसीने तथा श्वास द्वारा जितना जल बाहर निकलता है उसकी पूर्ति करने के लिए जल की आवश्यकता पड़ती है। शरीर में रासायनिक अभिक्रियाए- तथा प्रक्रमण पानी के माध्यम से ही होता है। जल की कमी होने से हमें प्यास लगती है। इसकी कमी से रक्त गाढ़ा हो जाता है और उसके विकार अच्छी तरह से नहीं निकल पाते, पाचन शक्ति बिगड़ जाती है। कब्ज हो जाती है, गठिया, पथरी, अपच, मंदाग्नि आदि हो जाते हैं। शरीर में जल की पूर्ति मुख्यत: जल पी कर ही होती है, परन्तु जल के कुछ अंश को हम खाद्य पदार्थों से भी प्राप्त करते हैं। मांस, अंडे, मछली, शाक फलों आदि में जल बहुत अधिक होता है। शाक-भाजी में औसतन 90 प्रतिशत जल पाया जाता है। रक्त परिसंचरण में जल सहायक होता है, ऑक्सीजन व पोषक तत्त्वों को कोशिकाओं में पहुंचाने और मेटॉबालिक प्रक्रियाओं के फलस्वरूप उत्पन्न हुए सभी विकारयुक्त पदार्थों को उत्सर्जित कराने में सक्षम होता है। अत: जल के अभाव में पोषण और जीवनयापन संबंधी सभी आंतरिक प्रक्रियाएँ अवरूद्ध हो जाती हैं और मृत्यु बाहें पसारे समक्ष आ खड़ी होती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

13.2.6.1 जल की उपयोगिता

1. भोजन के रंग-रूप और सुगंध से ही लार ग्रंथियों में विद्यमान ट्रांसकोशिका जल लार के रूप में टपकने लगता है और भोजन के कोर को मुंह में रखते ही अपना कार्य प्रारम्भ कर देता है। कोर को छोटे-छोटे टुकड़ों में गलाकर विभक्त करने और कोर को निगलने में सहायक होता है।
2. आमाशय में आमाशय की झिल्ली से निसरा जल, ऊपर से पिया गया जल और खाद्य पदार्थों से निकला जल, भोजन सामग्री का घोल बनाकर उसे मंथन योग्य बनाता है।
3. भोजन सामग्री को आंतों में हाइड्रोलिटिक प्रक्रिया से विभक्त कर अवशोषण योग्य बनाता है।
4. धमनियों में पोषक तत्त्वों को अपने अंदर घुलाये रखता है, और उन्हें कोशिकाओं के अंदर पहुंचा कर वहाँ होने वाली रासायनिक प्रक्रियाओं में भाग लेता है।
5. कोशिकाओं को आवश्यकतानुसार ऑक्सीजन पहुंचाता है।
6. आंतरिक ग्रंथियों के स्राव व हॉर्मोन्स का मौलिक अंश बनता है।
7. ऑक्सीकरण, ऊर्जा उत्पादन और हाइड्रोलिटिक प्रक्रिया से पोषक तत्त्वों को कोशिकाओं की आवश्यकता के अनुरूप नये तत्त्वों में परिवर्तित करने में सहायक होता है।
8. ग्लाइकोजन और ट्राइग्लिसराइड्स के संचयन में सहायक होता है।
9. मूत्र व पसीने के माध्यम से मेटाबालिक उच्छिष्ट पदार्थों का निष्कासन करता है।
10. मल में मिश्रित होकर उसे आसानी से विसर्जन योग्य बनाता है।
11. जहाँ स्नेहन (Lubrication) की आवश्यकता होती है वहाँ स्नेहन पैदा करता है जैसे जोड़ों में, हृदय आवरण परतों में, आंतों में।
12. मस्तिष्क व मेरुदण्ड के लिए पोषक व बफर का कार्य करता है।
13. शरीर का तापमान नियंत्रित करता है। शारीरिक उष्णता को कण्डक्शन व वाष्पन से निष्कासित करता है।
14. अनेक पोषक खनिज पदार्थ प्राप्त कराता है जैसे— सोडियम, कैल्शियम, पोटेशियम, क्लोरिन, फ्लुओरिन, आयोडिन आदि।

13.2.6.2 जल की कमी एवं अधिकता से होने वाले प्रभाव

शारीरिक जल की मात्रा में 10 प्रतिशत की कमी हो जाये तो निर्जलीकरण की स्थिति बन जाती है— विशेषकर बच्चों में और यदि 20 प्रतिशत की कमी हो जाये तो मृत्यु हो जाती है। निर्जलीकरण में आँखें निस्तेज व धंसी हुईं, मुंह सूखा हुआ, चमड़ी पर झुर्रियाँ पड़ी हुईं, हाथ-पांव में ऐंठन, हाथ-पांव ठंडे, पेशाब में अत्यधिक कमी, रक्त चाप गिरा हुआ और नाड़ी पकड़ के बाहर हो जाती है। ऐसी स्थिति में सेलाइन व ग्लूकोज पानी (एक गिलास पानी में चुटकी भर नमक और एक या दो चम्मच चीनी घोल कर थोड़ी देर में थोड़ा-थोड़ा पिलाते रहना अत्यंत ही लाभदायक होता है लेकिन यदि इससे वांछित लाभ यथा समय होता दिखाई न दे तो विशेष विधि से तैयार किया गया निर्जीवाणुक ग्लुकोज-सेलाइन जल को नाड़ी द्वारा चढ़ाना उपयुक्त होता है। कभी-कभी जल का निष्कासन कम होने से शरीर की कोशिकाओं में जल जमा होने लगता है और 10 प्रतिशत से अधिक जल जमा होने लगे तो शोथ की स्थिति बन जाती है। यह स्थिति सोडियम व पोटेशियम परमाणुओं की क्रमशः अन्तराकोशिका और अन्तःकोशिका द्रवों में कमीबेशी के कारण या प्रोटीन की कमी के कारण हो जाता है जिससे व्यवस्था बिगड़ जाती है। हृदय, यकृत व गुर्दों की बीमारियों में या अत्यधिक रक्तहीनता के कारण भी यह स्थिति बन जाती है, जिसका उपयुक्त उपचार वांछनीय हो जाता है।

13.2.7 रेशेदार पदार्थ

मानव पाचन संस्थान को क्रियाशील रखने के लिए आंतों की मांसपेशियों में संकुचन और प्रसारण के लिए रेशेदार पदार्थों का भोजन में रहना नितांत आवश्यक है। ये पदार्थ स्वयं पचते नहीं, बल्कि अपने पूर्णतः रूप में मल के साथ बाहर निकल जाते हैं। यह हरी सब्जी, चुकंदर, मांस, गाजर, शलजम, पत्तागोभी, अंजीर आदि में अधिक पाया जाता है। फलों तथा अनाज के छिलकों में यह सर्वाधिक पाया जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

13.3 शाकाहार

हमारा जीवन आहार से शुरू होता है। आहार होता है तब दूसरी प्रवृतियाँ चलती हैं। जैसी प्रवृत्ति, वैसा संस्कार; जितनी प्रवृत्ति, उतना संस्कार; जैसा संस्कार, वैसा विचार, जैसा विचार, वैसा व्यवहार। व्यवहार हमारी कसौटी है। भीतरी जगत् में कौन कैसा है, हम नहीं जान पाते। मनुष्य की जो प्रतिमा व्यवहार में बनती है उसी के आधार पर उसका मूल्यांकन होता है। अच्छा व्यवहार, अच्छा विचार, अच्छा संस्कार अच्छे आहार बिना नहीं हो सकता। इसलिए हमारे धर्माचार्यों ने आहार शुद्धि को प्राथमिकता दी है। हम अच्छाई का प्रारम्भ आहार-शुद्धि के व्रत से करें। हम न खाएँ, यह सबसे अच्छा है, पर यह संभव नहीं है। आहार हमारे जीवन की अनिवार्यता है। हम वह न खाएँ, जिसकी हमारे जीवन के लिए अनिवार्यता नहीं है।

यहाँ पर यह विषय विचारणीय है कि बनस्पति को मारकर खाना अगर हिंसा नहीं है तो फिर जानवर को मारकर खाना हिंसा क्यों है? ध्यान देने योग्य बात यह है कि बनस्पति को आहार की अनिवार्यता के रूप में स्वीकृति है। इसके पीछे हिंसा का अल्पीकरण, स्वास्थ्य और सात्विक संस्कार एवं विचार का दृष्टिकोण बहुत स्पष्ट है। लेकिन मांसाहार के विषय में आधुनिक शरीर शास्त्री, आहार शास्त्री, और स्वास्थ्य-शास्त्री, भी अपने अन्वेषणों के आधार पर मांसाहार को शारीरिक और मानसिक, दोनों दृष्टियों से दोषपूर्ण बतलाते हैं। मांसाहार, अप्राकृतिक उत्तेजना उत्पन्न करता है, सहनशीलता को कम करता है, धमनियों और शरीर के तंतुओं के लचीलेपन को नष्ट कर आयु को कम करता है।

क्रूरता, क्षणिक आवेश व अधैर्य ये मांसाहार के सहज परिणाम हैं। आदमी मांस खाकर भी जीता है और अनाज खाकर भी जीता है। इन दोनों में हम चयन करें और सोचें, मांस की अनिवार्यता है या अनाज की अनिवार्यता। उत्तर होगा शाकाहार क्योंकि शाकाहार का कोई विकल्प नहीं है, जो मनुष्य को जीवित रख सके। मांसाहार का विकल्प है शाकाहार। मांस को छोड़ने वाला शाकाहार के बल पर जी सकता है। शाकाहारी मांस नहीं खाता, पर मांसाहारी अनाज और फल, साग, सब्जी खाते हैं। क्योंकि मांसाहार करने पर भी शाकाहार की अनिवार्यता का वे अतिक्रमण नहीं कर सकते। शाकाहार की न्यूनतम अपेक्षा है, उसे छोड़ा नहीं जा सकता। उसके बिना काम नहीं चल सकता। यह अनिवार्यता का सिद्धान्त है। अनाज और मांस दोनों की तुलना में मांस को प्राप्त करने में मनुष्य को जितना क्रूर बनना पड़ता है, उतना अनाज को प्राप्त करने में नहीं बनना पड़ता।

अनिवार्यता और हिंसा का अल्पीकरण– इन दोनों दृष्टियों से मांस भोजन के रूप में स्वीकार्य नहीं हो सकता। जिन लोगों ने करुणा से आर्द्र होकर देखा उन सबने एक स्वर से कहा– मनुष्य विवेकशील प्राणी है। वह विकल्पों का चयन करता है। इसलिए उसे मांस नहीं खाना चाहिये।

मांसाहार के निषेध की चर्चा पहले अहिंसा के दृष्टिकोण से की जाती थी, अब यह अन्तर्वृत्तियों के दृष्टिकोण से की जा रही है। सभी चाहते हैं कि हमारे समाज में अपराध की बाढ़ न आए, किन्तु अन्तर्वृत्तियों को परिष्कृत किए बिना अपराध की बाढ़ को रोका नहीं जा सकता। अन्तर्वृत्तियों को विकृत बनाने वाली वस्तुओं के प्रयोग को छोड़े बिना उन्हें परिष्कृत नहीं किया जा सकता। इस दृष्टि से मांसाहार का प्रश्न मनुष्य के लिये बहुत चिंतनीय है। यह एक ऐसी समस्या है, जिसे दूसरी समस्याएँ उपस्थित कर, मनुष्य अपनी दृष्टि से ओझल करना चाहता है, किन्तु वह दृष्टि से ओझल होकर भी अपना प्रभाव दिखाए बिना नहीं रहती और स्वंय समाहित नहीं होती। इसलिए अनिवार्यता, अन्तर्वृति और करुणा– इन सब दृष्टियों से मांसाहार का वर्णन आहार-विवेक का महत्त्वपूर्ण अंग है।

विश्व के हर कोने से वैज्ञानिक व डॉक्टर यह चेतावनी दे रहे है कि मांसाहार कैंसर आदि असाध्य रोगों का निमित्त बनकर आयु क्षीण करता है और शाकाहार अधिक पौष्टिकता व रोगों से लड़ने की क्षमता प्रदान करता है। पशुओं को मारने से पूर्व उनके शरीर में पल रहे रोगों की उचित जांच नहीं की जाती और उनके शरीर में पल रहे रोग मांस खाने वाले के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। फिर जिस त्रास व यंत्रणापूर्ण वातावरण में इनकी हत्या की जाती है। उस वातावरण से उत्पन्न हुआ तनाव, भय, छटपटाहट, क्रोध आदि पशुओं के मांस को जहरीला बना देता है। वह जहरीला रोग-ग्रस्त मांस मांसाहारी के उदर में जाकर उसे असाध्य रोगों का शिकार बनाता है। शरीर में बाहर से प्रवेश करने वाले विष द्रव्यों में मुख्य योगदान अशुद्ध आहार के द्वारा होता है। यदि आहार विवेक द्वारा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

हित, मित, सात्त्विक रूप से ग्रहण किया जाए तो शरीर में बाहर से प्रवेश करने वाले विष-द्रव्यों का प्रवेष नही होगा। इतना ही नहीं, शुद्ध आहार द्वारा पूर्व में जमा विष-द्रव्यों को बाहर निकालने में भी सहायता मिलेगी।

हमारा आहार (भोजन) ऐसा होना चाहिए, जिससे कि शरीर में विष-द्रव्य अतिमात्रा में जमा न हो पाए। ऐसा आहार "शुद्ध" आहार कहलाता है। शरीर में चयापचय की क्रिया के परिणामस्वरूप हमारे शरीर में यूरिक एसिड, लेक्टिक एसिड आदि अम्ल पैदा होते हैं। ऐसे पदार्थ भोजन में अधिक न लें, जिनसे इन अम्लों में वृद्धि हो। अन्यथा इन अम्लों को निष्क्रिय करने के लिए क्षार की मात्रा पर्याप्त न होने से, अम्ल अवशिष्ट रह जायेगा, जो हानिकारक ही सिद्ध होता है।

मांसाहार पर भगवान महावीर ने बहुत तीव्रता से प्रहार किया है। जैन धर्म ने तो मांसाहार को हिंसा की दृष्टि से तथा भाव एवं लेश्या की मलिनता की दृष्टि से हेय माना ही है, पर विश्व के अन्य धर्म-शास्त्रों व महापुरुषों ने हर प्राणी मात्र में उस परम् पिता परमात्मा की झलक देखने को कहा है व अहिंसा को परम धर्म माना है। अधिकांश धर्मों ने तो विस्तारपूर्वक मांसाहार के दोष बताए हैं और उसे आयुक्षीण करने वाला व पतन की ओर ले जाने वाला कहा है किन्तु किसी भी निरीह प्राणी की हत्या का निषेध तो सभी धर्मों ने किया है। अपने स्वाद व इन्द्रिय-सुख को ही जीवन का परम ध्येय समझने वाले कुछ लोग अपने स्वार्थवश यह प्रकट करते हैं कि उनके धर्म में मांसाहार निषेध नहीं है, किन्तु यह असत्य है।

शरीर और मन की दृष्टि से भी मांसाहार पर आज बहुत विचार हो चुका है। वैज्ञानिक खोजों से यह प्रमाणित हो चुका है कि मांसाहार शरीर की दृष्टि से अनेक प्रकार से हानिप्रद है। शाकाहार में तंतुमय पदार्थ अधिक होते हैं। उनसे पेट को साफ रखने में मदद मिलती है। शरीर के विषाक्त पदार्थ उनके सहारे से बाहर निकल आते हैं। जब भी आहार में तंतुमय पदार्थों की कमी होती है, बड़ी आंत का कैंसर तथा दूसरी बीमारियाँ होने की शक्यता है।

मांसाहार हमारे लिये कितना व्यापक स्तर पर घातक व असाध्य रोगों को निमंत्रण देने वाला है इस पर ठोस निष्कर्ष बड़े-बड़े डॉक्टरों, वैज्ञानिकों आदि ने निकाले हैं। शाकाहारी भोजन से उचित मात्रा में प्रोटीन अथवा शक्तिवर्द्धक उचित आहार प्राप्त नहीं होता, यह मात्र भ्रांति है। आधुनिक शोधकर्त्ताओं व वैज्ञानिकों की खोज से साफ पता लगता है कि शाकाहारी भोजन से न केवल उच्च कोटि के प्रोटीन प्राप्त होते हैं अपितु अन्य आवश्यक पोषक तत्त्व विटामिन, खनिज, कैलोरी आदि भी अधिक प्राप्त होते हैं। सामान्य दाल, सोयाबीन, मूंगफली, हरी सब्जियों में मांस व अण्डे की अपेक्षा अधिक प्रोटीन ही नहीं अपितु अधिक संतुलित आहार प्राप्त होता है। अनेक शोधकर्त्ताओं एवं जापान में किए गये अध्ययनों से यह पता लगा है कि शाकाहारी न केवल स्वस्थ्य, निरोगी, शक्तिशाली, परिश्रमी होते है, अपितु दीर्घजीवी एवं अपेक्षाकृत तेज बुद्धि वाले होते हैं। अत: यह कहना कि मांसाहार शाकाहार की तुलना में अधिक शक्तिवर्धक है, एक गलत धारणा है। खाद्य पदार्थों की तालिका से भी स्पष्ट होता है कि मांसाहारी पदार्थों में फाइबर (दालों, अनाज आदि का ऊपरी भाग) की मात्रा बिल्कुल नहीं है चूंकि फाइबर रोगों को रोकने में अत्यधिक महत्त्व रखता है। हमारे स्वास्थ्य के लिए विटामिन्स भी अत्यावश्यक है। इन विटामिन्स के स्रोत भी शाकाहारी पदार्थ हैं।

हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, जैन, बौद्ध आदि विश्व के सभी प्रमुख धर्मों के प्रणेता व महापुरुषों ने हिंसा, क्रूरता, असत्य, क्रोध, द्वेष व अन्य जीवों को अकारण कष्ट व पीड़ा पहुंचाने को गुनाह बताया है व अहिंसा, दया, क्षमा, सत्य, करुणा आदि को धर्म बताया है। उनकी मुख्य शिक्षा हर प्राणी में उस परम पिता परमात्मा की झलक देखकर सबके साथ अच्छा व्यवहार करने की है। उन महापुरुषों ने न केवल मांसाहार की निन्दा की बल्कि सब जीव-जन्तुओं, पशु-पक्षियों के साथ दया व करुणापूर्ण व्यवहार करने की शिक्षा दी व अनाज आदि खिला कर उनका पालन पोषण करने को शुभकर्म बताया है।

प्रकृति ने मानव के शरीर की रचना भी मांसाहारी प्राणियों जैसी न बनाकर शाकाहारी प्राणियों जैसी बनाई है, यदि व्यक्ति प्रकृति, धर्म व महापुरुषों के निर्देशों की अवहेलना कर, मांसाहार करता है तो यह उसकी कितनी बड़ी कृतघ्नता व दुष्कर्म है। संसार के सभी जीव-जन्तु हमारी ही भांति उस परमपिता परमात्मा की संतान है। क्या वह परमपिता अपनी एक संतान द्वारा दूसरी को अकारण मारने के अपराध को सहन करेगा? नहीं कभी नहीं। कर्म

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

का फल तो मिलेगा ही। शुभ या अशुभ कोई भी कर्म कभी व्यर्थ नहीं जाता, उसका पुरस्कार व दण्ड हमें देर सवेर अवश्य ही मिलता है और मिलेगा।

इस सृष्टि में शाकाहारी व मांसाहारी जीवों की अनेकों जातियाँ हैं और बहुत छोटे से लेकर बहुत बड़े आकार तक के विभिन्न प्रकार के जीव हैं, किंतु सभी शाकाहारी जीवों की शरीर रचना, हाथ, पांव, दांत, आंतों आदि की बनावट व उनकी देखने, सूंघने की शक्ति व खाने-पीने का ढंग मांसाहारी जीवों से भिन्न है। जैसे—

1. मांसाहारी जीवों के दांत नुकीले व पंजे तेज नाखून वाले होते हैं, जिससे वह आसानी से अपने शिकार को चीरफाड़ कर खा सके। जबकि शाकाहारी जीवों के दांत चपटी दाढ़ वाले होते हैं, पंजे तेज नाखून वाले नहीं होते जो चीरफाड़ कर सकें अपितु फल आदि आसानी से तोड़ सकने वाले होते हैं।
2. मांसाहारी जीवों के निचले जबड़े के बल ऊपर-नीचे ही हिलते हैं और वे अपना भोजन बगैर चबाए ही निगलते हैं। शाकाहारी जीवों के निचले जबड़े के बल ऊपर-नीचे, दाएं-बाएं सब ओर हिल सकते हैं और वे अपना भोजन चबाने के बाद निगलते हैं।
3. मांसाहारी की जीभ खुरदरी होती हैं, ये जीभ बाहर निकाल कर उससे पानी पीते हैं; जबकि शाकाहारी जीवों की जीभ चिकनी होती है, ये पानी पीने के लिए जीभ बाहर नहीं निकालते अपितु होठों से पीते हैं।
4. मांसाहारी जीवों की आंत छोटी व गुर्दे बड़े होते हैं ताकि मांस को जल्दी एवं आसानी से बाहर निकाल सके बल्कि शाकाहारी जीवों की आंत बड़ी व गुर्दें छोटे होते हैं जिससे कि मांस देरी से एवं कठिनाई से बाहर निकल पाता है।
5. मांसाहारी जीवों के पाचक अंगों में मनुष्य के पाचक अंगों की अपेक्षा दस गुना अधिक हाइड्रोक्लोरिक एसिड होता है जो मांस को आसानी से पचा देता है। जबकि शाकाहारी जीवों में इस अम्ल की मात्रा कम होती है।
6. मांसाहारी जीवों की लार अम्लीय एवं शाकाहारी जीवों की लार क्षारीय होती है।
7. मांसाहारी जीवों का Blood pH कम एवं शाकाहारी जीवों का Blood pH अधिक होता है।

कोई भी व्यक्ति फल, अनाज, सब्जी देखकर नफरत से नाक नहीं सिकोड़ता जबकि लटका हुआ मांस देखकर अधिकांश को घृणा होती है, क्या यह उसकी स्वाभाविक शाकाहारी प्रकृति का द्योतक नहीं है।

आज जब विश्व के हर कोने से वैज्ञानिक व डॉक्टर यह चेतावनी दे रहे हैं कि मांसाहार कैंसर आदि असाध्य रोगों को देकर आयु क्षीण करता है और शाकाहार अधिक पौष्टिकता व रोगों से लड़ने की क्षमता प्रदान करता है, फिर भी मानव, यदि अंधी नकल या आधुनिकता की होड़ में मांसाहार करके अपना सर्वनाश करे, तो यह उसका दुर्भाग्य ही कहा जायेगा।

पशुओं को मारने से पूर्व उनके शरीर में पल रहे रोगों की उचित जांच नहीं की जाती, और उनके शरीर में पल रहे रोग मांस खाने वाले के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं, फिर जिस त्रास व यंत्रणापूर्ण वातावरण में इनकी हत्या की जाती है उस वातावरण से उत्पन्न हुआ तनाव, भय, छटपटाहट, क्रोध आदि पशुओं के मांस को जहरीला बना देता है। वह जहरीला, रोग ग्रस्त मांस, मांसाहारी के उदर में जाकर उसे असाध्य रोगों का शिकार बनाता है और मानो दम तोड़ते हुए पशु का प्रण पूरा करता है कि 'जैसे तुम मुझे खाओगे वैसे ही मैं तुम्हें खाऊंगा'।

इस तरह स्पष्ट है कि मांसाहार एवं शाकाहार दोनों में से कौन उचित है और कौन अनुचित। मांसाहार पौष्टिकता की जगह, असाध्य रोग देकर आयु घटाता है, यह मन, बुद्धि को दूषित कर सुख-शांति नष्ट कर हमारा नैतिक व चारित्रिक पतन कर, न केवल हमें अपितु हमारी आने वाली पीढ़ी को भी असाध्य रोगों व अपार कष्टों की ओर धकेल रहा है।

13.4 संतुलित आहार

शारीरिक स्वास्थ्य का मूल आधार है— संतुलित भोजन। जब प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, खनिज लवण, क्षार और विटामिन्स— ये उचित मात्रा में ग्रहण किये जाते हैं, तब वह संतुलित भोजन माना जाता है। इससे शरीर स्वस्थ और क्रिया करने में सक्षम रहता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

भोजन का मन की क्रियाओं पर भी बहुत असर होता है, क्योंकि मस्तिष्क की रासायनिक प्रक्रिया भोजन से प्रभावित होती है। संतुलित भोजन के उद्देश्य हैं— शरीर स्वस्थ रहे तथा मन विकृत, उत्तेजित या क्षुब्ध न हो।

बीमारी पैदा होने का बहुत बड़ा कारण है— अहितकर और अपरिमित भोजन। एक आचार्य ने लिखा है—

'हियाहारा मियाहारा, अप्पाहार य जे नारा।
न ते विज्जा तिगिच्छंति, अप्पाणं ते तिगिच्छगा॥'

जो हित, मित और अल्प मात्रा में भोजन करते हैं उनकी चिकित्सा वैद्य नहीं करते, वे स्वयं अपने चिकित्सक हैं। भोजन स्वास्थ्य देता है और भोजन स्वास्थ्य बिगाड़ता भी है।

भोजन के विमर्श का साधना का दृष्टिकोण है— आंतरिक वृत्तियों का शोधन। भोजन का प्रयास केवल शरीर के बाहरी तत्त्वों तक ही सीमित नहीं है। उसका प्रभाव हमारी आंतरिक शक्तियों पर, शरीर के सूक्ष्म तत्त्वों पर और सूक्ष्म-शरीर पर भी होता है। इसलिए भोजन के विषय में हमें बहुत सावधान होना चाहिए।

भोजन से प्राप्त होने वाले पूर्व में वर्णित तत्त्वों में प्रोटीन, लाइपिड्स व कार्बोहाइड्रेट्स को प्रॉक्सिमेंट प्रिंसीपल्स कहते हैं क्योंकि ये शरीर के तत्त्वों के अति निकटतम हैं और पाचन व चयापचय कर रासायनिक क्रियाओं से शारीरिक तत्त्वों के अनुरूप बन जाते हैं।

इस तरह भोजन तत्त्व हमें अपने दैनिक आहार से आवश्यकतानुसार मिलते रहें, इसके लिए आवश्यक है कि हमारा आहार या भोजन संतुलित हो। संतुलित आहार से तात्पर्य वह खुराक या आहार जो—

1. उचित खाद्य पदार्थ का बना हो।
2. सभी भोजन तत्त्व उचित परिमाण में प्राप्त कराता हो।
3. सभी भोजन तत्त्व उचित मात्रा में प्राप्त कराता हो।
4. तापमान की उचित इकाइयां प्राप्त कराता हो।
5. आसानी से पचने योग्य हो और बांछित रुक्षांस या अपाच्य शेष प्राप्त कराता हो, जिससे कोष्टबद्धता न हो।
6. जो रूचिकर हो, आकर्षक हो, सुगंधित और स्वादिष्ट हो, अन्यथा संतुलित होने पर भी शायद हम उसे खा न पायें। बहुधा ऐसा हो जाता है कि भोजन ठीक से पक नहीं पाता, या उसमें धुंआ लग जाता है, जल जाता है, दुर्गन्ध देने लगता है, या अधिक मिर्च मसाले वाला होता है तब उसे हम खा नहीं पाते।
7. सामाजिक रीति-रिवाज और धार्मिक मान्यताओं के अनुरूप हो।
8. यथासंभव स्थानीय उपज के खाद्य पदार्थ का हो ताकि सुगमता से प्राप्य हो सके।

चिकित्सा विज्ञान की वह शाखा जो हमें उन सभी प्रक्रियाओं का बोध कराये जिनसे प्राणी अपने आहार से पोषक तत्त्व प्राप्त करने, पाचन द्वारा उन्हें सूक्ष्मतम अंतिम अंशों में विभक्त करने, अवशोषण द्वारा रक्त व लसीका वाहक नलिकाओं में शोषित करने और अंग-प्रत्यंगों में उनका यथोचित उपभोग करने में सक्षम होता है, तथा जिसके फलस्वरूप शरीर का निर्माण, वर्धन, सुगठन और क्षतिग्रस्त अवयवों व उनकी कोशिकाओं का क्षतिपूर्तन होता है और ऊर्जा व ऊष्णता पैदा होती है, उसे पोषण या पोषाहार कहते हैं।

कोशिकाओं का निर्वाण और निर्माण निरन्तर होता ही रहता है। असंख्य कोशिकाएँ प्रतिदिन टूटती-फूटती हैं, क्षतिग्रस्त होती हैं और उनके स्थान पर नई-नई कोशिकाएँ नव-निर्मित होती हैं। जिसके लिए समुचित पोषण की आवश्यकता होती है।

जैन जीवन शैली का एक प्रमुख घटक हैं— आहार शुद्धि और व्यसन मुक्ति। उपवास आदि तप, मांसाहार वर्जन, तम्बाकू वर्जन, मद्यपान वर्जन आदि विषयों का संबंध जीवन-शैली के इस घटक से हैं। इन विषयों का वैज्ञानिक सिद्धान्तों और प्रयोगों के संदर्भ में चिन्तन व्यक्ति को नई दृष्टि देता है। आहार-विवेक और आहार-विज्ञान के आधार पर इसे चरितार्थ किया जा सकता है।

आहार-विवेक और आध्यात्मिक साधना में समानताएँ हैं। ये दोनों हमें स्व-संयम, स्व-ज्ञान और स्वावलम्बन सिखाते हैं। साधना-मार्ग में भी गुरु केवल मार्ग दर्शक होता है, साधक का अपना पुरुषार्थ या विवेक ही मुख्यत: उसे आगे बढ़ाते हैं। उसी तरह स्वयं का आहार-विवेक ही व्यक्ति को स्वस्थ रख सकता है, डॉक्टर या वैद्य तो केवल मार्गदर्शक बन सकते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

रोग क्या है? हमारे शरीर में जमा होने वाले विषद्रव्यों का परिणाम रोग है। इन विषद्रव्यों के शरीर में जमा होने के कई कारण हैं जैसे— अयोग्य भोजन, विषैली दवाइयाँ, अतिशय श्रम, अतिकाम सेवन, अति भय, अति चिंता, मानसिक तनाव, अनिद्रा आदि। इन सबका परिणाम यह होता है कि शरीर से विषद्रव्यों का बाहर होने वाला निष्कासन श्लथ हो जाता है और यह विषद्रव्य रक्त में और शरीर के ऊतकों में जमा हो जाते हैं जिससे बीमारी पैदा होती है। उपरोक्त कारणों में से अयोग्य भोजन एक मुख्य कारण है।

यदि हमारा आहार एवं रहन-सहन सम्यक् होगा और साथ ही हम आसन, प्राणायाम, प्रेक्षाध्यान आदि करते रहेंगे तो शरीर में विष-द्रव्यों का जमाव अति मात्रा में नहीं होगा और जो जमा हो गए हैं, उन्हें बाहर निकाल देने से शरीर में किसी घातक या तीव्र बीमारी होने की संभावना नहीं रहेगी।

हमारा शरीर भिन्न-भिन्न अवयवों से एवं प्रत्येक अवयव ऊतकों से निर्मित है। प्रत्येक उत्तक कोशिकाओं से निर्मित है। इन कोशिकाओं में चलने वाली जैविक क्रियाओं से विषद्रव्य की उत्पत्ति होती रहती है। इसके साथ अपनी खाने-पीने की गलत प्रणाली तथा रहन-सहन की गलत आदतों से भी विषद्रव्यों की उत्पत्ति होती है। ये सारे विषद्रव्य यदि किसी भी कारण से बाहर निष्कासित न हों, तो उस स्थिति को 'विषाक्तता'(टोक्सीमिया) कहा जाता है। उसे ही हम 'रोग' या 'बीमारी' के रूप में भोगते हैं। विषद्रव्यों की अशुद्धियों को निष्कासन करने की शरीर की प्राकृतिक प्रक्रिया तो बीमारी में भी चालू ही रहती है। उदाहरणार्थ— जुकाम में शरीर श्लेष्म के रूप में विषद्रव्यों का बाहर निष्कासन करता रहता है।

शरीर में अपने आपको स्वस्थ रखने की आंतरिक शक्ति मौजूद होती है। कुछ अपवादों को छोड़ कर वह स्वस्थ रहता ही है। यदि मनुष्य अपने शरीर के अवयवों का दुरूपयोग न करे या उन पर अत्याचार न करे, तो शरीर स्वत: ही स्वस्थ रहेगा। परन्तु खाने-पीने की गलत आदत, जिह्वा का स्वाद, शरीर विज्ञान के बोध का अभाव आदि कारणों से मनुष्य प्राय: अपने शरीर पर ऐसे अत्याचार करता है जिससे शरीर अस्वस्थ हो जाता है।

13.5 उपवास और स्वास्थ्य

भारतीय जीवन शैली में तप एक महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक साधना है। महावीर की साधना में उसे 'निर्जरा' अर्थात् कर्म-संस्कारों से मुक्ति का एक सक्षम साधन माना गया है। खाना जितना महत्त्वपूर्ण है 'नहीं खाना' भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। खाने का जितना मूल्य है, नहीं खाने का भी उससे कम मूल्य नहीं है। जब तक हम 'नहीं खाने' पर विचार नहीं करते, तब तक भोजन का विषय पूर्ण दृष्टि से चर्चित नहीं होता। स्वास्थ्य के लिए यदि संतुलित भोजन जरूरी है तो उसके लिए भोजन को छोड़ना भी बहुत जरूरी है। अनाहार को छोड़कर केवल आहार को देखना वास्तव में आहार के प्रति भ्रांत होना है और अपने स्वास्थ्य के प्रति भी अन्याय करना है। जो लोग केवल भोजन का ही महत्त्व समझते हैं, उसे छोड़ने का महत्त्व नहीं समझते, वे न केवल मोटापे की बीमारी से ही ग्रस्त होते हैं, अपितु अन्य बीमारियाँ भी उन्हें आक्रांत करती हैं।

खाना, नहीं खाना, कब, कैसे और कितना खाना, मधुर और स्निग्ध खाना या रूखा-सूखा खाना आदि-आदि अनेक प्रश्नों का सम्यग् उत्तर है— आहार-विवेक।

13.5.1 आहार और अनाहार

हम आहार करते हैं परन्तु यदि उपवास करना नहीं जानते, अनाहार रहना नहीं जानते तो हमारा आहार हमारे लिए कठिनाई बन जाता है। आहार ही जटिलता पैदा करता है। हम आहार करते हैं, भूख की समस्या को समाहित करने के लिए। वही आहार अनेक समस्याएँ हमारे सामने प्रस्तुत कर देता है। उपवास का अर्थ नहीं खाना भी है, कम खाना भी है, आहार की मात्रा को कम करना भी है।

शरीर में जितने काम-केन्द्र, वासना-केन्द्र, आवेग-केन्द्र और स्मृति केन्द्र हैं वे सारे उत्तेजित होते हैं। भोजन को प्राप्त कर भोजन के अभाव में ये सारे केन्द्र शिथिल हो जाते हैं। चूंकि अब उन्हें सहयोग नहीं मिलता, जैसे— सेना को जब रसद नहीं मिलती, वह आगे नहीं बढ़ पाती। उसी तरह उपवास रसद के मार्ग को काट देता है। उस स्थिति में इन्द्रियाँ शांत और मन शांत। इस प्रक्रिया के द्वारा यह होता है कि उत्तेजना या सक्रियता के जो साधन हैं, उपाय हैं, निमित्त हैं, उनको हम प्राय: समाप्त कर देते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

13.5.2 उपवास का आध्यात्मिक आधार

उपवास ही सबसे बड़ी औषधि है। हम जब तक इसके महत्त्व को नहीं समझेंगे, हमारे भोजन की समस्या का समाधान नहीं निकलेगा। द्वितीय महायुद्ध के बाद जब जर्मनी में सर्वेक्षण किया गया तब निष्कर्ष निकाला गया कि यहाँ अधिकांश बीमारियाँ अतिभोजन के कारण हुई हैं। हम लोग इतना खाते हैं जितना हमें नहीं खाना चाहिए। हमें जितनी भूख लगती है उसे चार भागों में बांट देना चाहिए, दो भाग भोजन के लिए, एक भाग पानी के लिए और एक भाग वायु के लिए छोड़ देना चाहिए। परन्तु लोग जब खाना खाने के लिए बैठते हैं तो भूख से भी और अधिक खाना चाहते हैं ताकि भूख न लगे। इस प्रकार हमारे यहाँ खाने की व्यवस्थित पद्धति नहीं है। खाना जरूरी है, तो उसके साथ-साथ 'उपवास' और नहीं खाना भी जरूरी है।

उपवास सहिष्णुता का बड़ा प्रयोग है। प्रतिदिन प्रात:काल भोजन की मांग कम हो जाती है। जो उपवास करते हैं, उनमें सहज ही सहिष्णुता का विकास होता है और संकल्प शक्ति का विकास होता है। आयुर्वेद का विश्वास है कि सप्ताह में एक बार उपवास अवश्य होना चाहिए। उपवास प्रयोग है, अगर प्रयोग की दृष्टि से किया जाए। उपवास प्रयोग तब बनता है, जब पहले दिन हलका खाना खाया जाए और पारणा में हलका खाया जाए। तीन दिन बराबर यह चले। पहले दिन हलका भोजन, दूसरे दिन उपवास और तीसरे दिन फिर हलका भोजन, तब उपवास वास्तव में प्रयोग बनता है।

साधना की बात बहुत सारे लोग आसन-प्राणायाम से शुरू करते हैं। महावीर उसे अनाहार (अनशन, उपवास) से शुरू करते हैं। सम्भवत: इसका कारण यही रहा होगा कि जब मनुष्य का आहार पर नियंत्रण हो जाएगा तो बाकी के सब नियंत्रण तो सहज ही प्राप्त हो जाएंगे। इसलिए वे उपवास को बहुत अधिक महत्त्व देते हैं। इसके साथ दूसरा सवाल उठता है कि क्या बिना आहार के जीवन का काम चल सकता है? हां, क्योंकि अगर कोई व्यक्ति एक दिन आहार न करे तो क्या वह मर जाएगा, नहीं। क्योंकि आहार के साथ व्यक्ति एक रागात्मक पक्ष की तरह जुड़ा हुआ है। अत: इसको दूर करने के लिए भी उपवास अत्यावश्यक है।

13.5.3 उपवास का वैज्ञानिक आधार

डॉ. ज्होन कीथ बेडो द्वारा लिखित पुस्तक— "Stay Young Reduce Your Rate of Aging" में उन्होनें वैज्ञानिक प्रयोगों की चर्चा के दौरान बताया है कि—

I. उपवास वृद्धावस्था को रोकने का एक प्रमाणसिद्ध प्रयोग है। चूहों पर जब ये प्रयोग किए गए तो उसके आश्चर्यजनक परिणाम सामने आए। चूहों के एक दल को अत्यधिक भोजन की सुविधा दी गई, दूसरे दल को सामन्य, नियमित एवं नियंत्रित मात्रा में भोजन दिया गया तथा तीसरे दल को एक दिन भोजन (सामन्य एवं नियंत्रित मात्रा में) एवं एक दिन उपवास पर रखा गया। दूसरे दल के चूहे पहले से दीर्घजीवी हुए तथा तीसरे दल वाले दूसरे से भी बहुत अधिक दीर्घजीवी हुए।

II. उपवास के दौरान शरीर का 'इम्यूनोलोजिकल सिस्टम' (प्रतिरोधक तंत्र) असंदिग्ध रूप से शक्तिशाली होता है। इस तंत्र में काम करने वाले रक्त के श्वेतकणों, जिन्हें फेगोसाइट्स और लिम्फोसाइटस् कहा जाता है, की कार्यक्षमता में अद्‌भुत वृद्धि होती है। लिम्फोसाइट्स के दो प्रकारों— बी सेल्स और टी सेल्स जो आगन्तुक कीटाणु या विषाणुओं का प्रतिकार करने की कार्यक्षमता में वृद्धि होने से शरीर में जमा होने वाले विजातीय तत्त्वों का पूर्ण शोधन सम्भव हो जाता है। इन विजातीय तत्त्वों के जमाव का परिणाम ही है— कोशिकाओं का वृद्ध होना, जो अन्ततोगत्वा मनुष्य को वृद्ध बना देती है।

III. कैंसर जैसी खतरनाक कोशिकाओं की सफाई में उपवास बहुत उपयोगी है। डॉ. बेडो ने स्वंय 3½ वर्ष तक एकान्तर उपवास कर पाया कि इससे स्वास्थ्य बहुत अच्छा रहता है, चूहों के प्रयोगों में यह बात भी सामने आई कि जहाँ तीसरे दल के चूहे दो वर्ष के बच्चों की तरह कूद-फांद मचा रहे थे, वहाँ पहले दल वाले बूढे की भांति शिथिल और थके-मांदे नजर आ रहे थे। डॉ. बेडो ने उपवास के दौरान शरीर में होने वाले जैव-रासायनिक परिवर्तनों के आधार पर उक्त निष्कर्ष निकाले हैं। आजकल तो चिकित्सा क्षेत्र में भी उपवास को मान्यता मिल गई है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

13.5.4 उपवास शरीर में क्या करता है?

शरीर में स्वाभाविक रूप से अनेक प्रकार की ज्वलन क्रियाएँ होती रहती हैं। ज्वलन क्रिया के कारण ही हमारा शरीर एक खास तापक्रम तक गरम रहता है। इसे तेजस् शरीर भी कहा जा सकता है। लेकिन ज्वलन क्रिया जारी रखने के लिए हमेशा ईंधन की जरूरत होती है। साधारण रूप से हमें यह ईंधन भोजन के कार्बोहाइड्रेटस् और चर्बी से मिलता रहता है। लेकिन उपवास काल में जब बाहर से भोजन मिलना बन्द होता है, तो शरीर में संगृहीत पदार्थ इस अग्नि में जलने लगता हैं। इसीलिए उपवास द्वारा चर्बी बहुत जल्दी कम होती है। केवल चर्बी ही नहीं पेशियों, रक्त और जिगर में से संगृहीत शक्कर आकर जलती है। प्रत्येक उत्तक से संगृहीत भोजन आकर जलने लगता है और इस संगृहीत भोजन के साथ प्रत्येक धातु की संगृहीत गंदगी भी उखड़कर आती है और इस ज्वलन क्रिया में भस्म हो जाती है। इसीलिए कहा जाता है कि उपवास शरीर की भीतरी गंदगी का नाश कर देता है।

शरीर की जमापूंजी खत्म होने के कारण उपवास काल में शरीर का वजन प्रायः 1 पौण्ड प्रतिदिन के हिसाब से कम होता है। शरीर की विभिन्न धातुएँ इस अनुपात से छीजती हैं। चर्बी 97% जिगर 62%, तिल्ली 57%, मांसपेशियाँ 31%, मस्तिष्क या तन्तु 0% इस छीजन के कारण उपवास-काल में शरीर में कुछ कमजोरी आती है। लेकिन चूंकि मस्तिष्क बिल्कुल नहीं छीजता इसलिए सोच-विचार की शक्ति बढ़ती है, नींद अच्छी आती है, विचार सात्विक होने लगते हैं, स्मरण शक्ति बहुत तेज हो जाती है।

उपवास काल में शुरू के दिन भूख सताती है लेकिन यह असली भूख नहीं होती। क्योंकि तीसरे दिन यह भूख समाप्त हो जाती है। भूख के समय अधिक पानी पी लेने से उसका कष्ट मालूम नहीं होता। उपवास में दूसरे या तीसरे दिन जीभ पर सफेद मैल आ जाता है। कभी-कभी श्वास से बदबू भी आती है। दांतों में चिपचिपाहट पैदा हो जाती है। नये उपवास कर्त्ताओं को इन लक्षणों से भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए। ये लक्षण तो इस बात का सबूत होते हैं कि शरीर के विजातीय द्रव्य बाहर आ रहे हैं। फिर ये लक्षण अपने आप ही दूर हो जाते हैं। ज्यों-ज्यों शरीर की अंदरूनी सफाई होती जाती है, शरीर में हल्कापन, स्फूर्ति, उत्साह और नीरोगता अनुभव होने लगती है।

13.5.5 विभिन्न रोग और उपवास

उपवास ऐसा उपचार है जो प्रायः सभी रोगों में अपना चमत्कारी प्रभाव दिखाता है। रोग चाहे नया हो अथवा पुराना, उपवास निश्चित रूप से उस पर काबू पा लेता है। हजारों केस ऐसे होते हैं, जिन्हें डॉक्टर, हकीम असाध्य मानकर जवाब दे देते हैं। वे रोगी उपवास से ठीक हो जाते हैं। दमा, बढ़ा हुआ रक्तचाप, बवासीर, एग्जिमा (चमला), मधुमेह ऐसे रोग माने जाते हैं जिनका कोई इलाज नहीं होता। लेकिन न मालूम इस तरह से कितने पुराने और असाध्य रोग जैसे फसली बुखार, टाइफाइड, चेचक जैसे रोगों में भी उपवास अपना चमत्कार पूर्ण प्रभाव दिखाता है। अमेरिका के डॉ. डेवर्ड डेबी ने तो अपने बच्चे का डिप्थीरिया जैसा घातक रोग उपवास से ठीक कर लिया था। कब्ज और कब्ज से पैदा होने वाले रोगों में तो उपवास से बहुत जल्दी लाभ होता देखा जाता है।

13.5.6 उपवास की अवधि

उपवास 2-3 दिन से लगाकर 2 मास अथवा इससे भी अधिक दिनों का किया जा सकता है। एक सप्ताह तक का उपवास छोटा उपवास कहलाता है। सप्ताह से अधिक समय के उपवास लम्बे उपवास की श्रेणी में आते हैं। उपवास की अवधि रोगों के अनुसार नहीं, बल्कि रोगियों की हालत के मुताबिक निश्चित की जाती है। रोग का पुराना या नयापन, रोगी के शरीर की शक्ति, रोगी के शरीर में रोग की गहराई तथा रोगी की मानसिक स्थिति आदि की जांच कर ही उपवास की अवधि निश्चित की जाती है। यों नये रोगों में छोटे उपवास और पुराने रोगों में लम्बे उपवास अपेक्षित होते हैं। प्रायः एक सप्ताह से कम के उपवास से कोई खास लाभ नहीं होता। फिर भी प्रारंभ करने की दृष्टि से यह ठीक होता है। लम्बे से लम्बा उपवास भी जब विधिवत् किया जाता है तो उससे कभी खतरा पैदा नहीं होता।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

13.5.7 उपवास में सावधानियाँ

उपवास में कभी-कभी खतरे और परेशानियाँ भी पैदा हो सकती हैं। यह बात सोलह आने ठीक है कि उपवास हर रोग को ठीक कर सकता है, लेकिन हर रोगी को नहीं। जिस रोगी की जीवन-शक्ति बहुत घट चुकी होती है, उसे उपवास से कोई लाभ नहीं होगा। जैसे टी.बी. के दूसरे या तीसरे दर्जे की हालत का रोगी और अंतिम दर्जे तक पहुंचा मधुमेह का रोगी। उसके अलावा दिल और गुर्दे की भी कई ऐसी पेचीदा बीमारियाँ होती हैं, जिनमें उपवास से लाभ नहीं हो पाता। कुछ रोगियों की ऐसी दशाएँ भी होती हैं जहाँ उपवास एकमात्र इलाज न होकर इलाज का एक अंग होता है।

उपवास में जहाँ तक हो सके खुले बदन धूप और हवा में बैठना चाहिए। रूस के न्यूरोफिजियोलोजिस्ट अकेडेमिसियन पियोत्र अनोखिन का मत है कि अनुभवी की देख-रेख में लम्बे उपवास का प्रयोग पेट के अल्सर, दमा, मधुमेह आदि से मुक्ति पाने के लिए काफी उपयोगी उपाय है। शरीर रचना की दृष्टि से उपवास एक प्रकार से 'शाक ट्रीटमेंट' जैसा प्रयोग है। उससे नाड़ी मंडलीय क्रिया-कलाप बढ़ जाता है। उपवास के तीसरे दिन से त्वचा में परिवर्तन दिखने लगता है; यह शरीर की प्रतिरक्षात्मक प्रक्रिया की अभिवृद्धि का द्योतक है।

यदि कोई उपवास न करे, तो उसके लिए अन्य तपों का विधान किया गया है, जिनमें ऊनोदरी और वृत्तिसंक्षेप उल्लेखनीय है। ऊनोदरी का तात्पर्य है— भोजन में कमी करना, भूख से अधिक न खाना, भूख हो उससे एक-दो ग्रास भी कम करना ऊनोदरी है। खाद्य पदार्थों (द्रव्यों) की संख्या में कमी करना भी ऊनोदरी है।

वृत्ति संक्षेप का अर्थ है— ऐसे विशेष संकल्प स्वीकार करना जिससे अस्वादवृत्ति का विकास हो। जो कुछ सहजभाव से मिल जाये उसे खाते समय स्वाद-भावना से मुक्त रहना वृत्ति-संक्षेप है। संकल्प का स्वीकार 'अभिग्रह' कहलाता है।

आधुनिक शरीर शास्त्र की दृष्टि से सामान्य रूप से स्वस्थ और साधारण श्रम करने वाले व्यक्ति को दिन भर में 2500 कैलोरी ताप उत्पन्न करने वाले भोजन की आवश्यकता होती है। यहाँ महात्मा गांधी की एक छोटी सी पुस्तक 'स्वास्थ्य साधना' पठनीय है। जिसमें उन्होंने लिखा है कि पशु-पक्षियों का जीवन देखिये। वे कभी स्वाद के लिए नहीं खाते, और न ही अधिक ही खाते हैं, वे वही खाते हैं जो कि उन्हें प्राकृतिक रूप से मिल जाता है। वे कुछ भी नहीं पकाते। वास्तव में यदि मनुष्य भी प्रकृति-प्रदत्त वस्तुओं को उसी रूप में खाये, भूख से अधिक न खाये, तो वह भी पशु-पक्षियों की तरह रोग-मुक्त रह सकता है। अतिभोजन से आंत श्लथ हो जाती है। वह मल को आगे नहीं ढकेल पाती। इस प्रकार कोष्ठबद्धता हो जाती है। इससे चिन्तन में कुंठा आती है। प्रसन्नता के लिए यह अनिवार्य है कि मल संचय न हो। दो दिन तक खाना न खाया जाये तो भी आंतों को पचाने के लिए शेष रह जाता है। पर मल का उत्सर्ग न हो तो एक दिन में बेचैनी हो जाती है। आंतों में मल भरा रहने से अपान वायु का द्वार रूद्ध हो जाता है। फिर वह ऊपर जाती है और बहुत बार यही होता है। अपने शरीर के तापमान से अधिक ठंडा और गर्म भोजन भी हानिप्रद होता है। उससे आँत और दाँत दोनों विकृत होते हैं। भोजन का संबंध आवश्यकता पूर्ति से है पर उसका सम्बंध जब स्वाद से हो जाता है, तब मर्यादा का अतिक्रम और विपर्यय होने लगता है।

कुछ लोगों को यह सुनकर विस्मय हो सकता है— क्या उपवास से भी चिकित्सा हो सकती है? पर आज इस बात पर विस्मय करने की कोई आवश्यकता नहीं है। डॉ. एडवर्ड हुकर डेवी ने 'The Non-break-fast and Fasting Cure' नाम की एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक लिखी है। उनका कहना है— बीमारी में जबरदस्ती खाने और दवाइयां लेने की अपेक्षा उपवास अधिक लाभप्रद है।

उपवास-काल में कभी-कभी भोजन की इच्छा, बेचैनी या कमजोरी महसूस हो सकती है, पर ये सारी स्थितियाँ अस्थायी हैं।

प्रो. दूहरिट ने अपनी पुस्तक 'Diet and Healing Systems' में लिखा है— उपवास काल में जो कमजोरी महसूस होती है, वह भोजन का अभाव नहीं है। अपितु शरीर में एकत्र मल का विनाश होता है। शरीर की शुद्धि हो जाने के बाद शरीर में पुन: शक्ति आ जाती है। यह कोई जादू नहीं है, अपितु शरीर में स्थित विजातीय द्रव्यों के हट जाने से सहज प्रतिफल होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अपनी जिह्वा के स्वाद तथा अप्राकृतिक आदतों के कारण हमारे शरीर में अनेक प्रकार का विजातीय कचरा इकट्ठा हो जाता है। उसके प्रभाव से मुक्त होने के लिए उपवास एक रामबाण औषधि के समान है। साधारणतः लोग उपवास करने से डरते हैं। डॉ. लोग भी यही कहते हैं कि शरीर की शक्ति बनाये रखने के लिए कुछ न कुछ खाते रहना चाहिए। पर प्राकृतिक जीवन जीने वाले प्राणियों की ओर ध्यान दिया जाये तो यही लगेगा कि वे अपनी बहुत सारी बीमारियाँ उपवास के द्वारा ही ठीक करते हैं। धीरे-धीरे इस ओर लोगों का ध्यान जा रहा है, यह भी एक शुभ लक्षण है। उपवास के द्वारा अनेक रोगों से मुक्त हुआ जा सकता है। यह आपको क्षीण करने वाला नहीं है, अपितु तेजस्विता प्रदान करने वाला है।

13.6 अभ्यास हेतु प्रश्न

निबंधात्मक प्रश्न

1. ऊर्जा की आवश्यकता को स्पष्ट करते हुए उसकी पूर्ति में पोषक तत्त्वों के सहयोग को बताएं?
2. उपवास से आप क्या समझते हैं? यह स्वास्थ्य पर किस प्रकार प्रभाव डालता है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. विटामिन 'बी' क्या है, यह ऊर्जा नियोजन में किस प्रकार सहायक है?
2. संतुलित आहार से आप क्या समझते हैं, स्पष्ट करें?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. अधस्त्वक रक्तस्राव किसकी कमी से होता है?
2. जल की कमी से उत्पन्न स्थिति में सुधार किस तरह लाया जा सकता है?

सन्दर्भ ग्रंथ

मानव शरीर क्रिया विज्ञान - प्रमिला वर्मा एवं कांति पाण्डेय

आहार एवं पौषाहार - सत्यदेव आर्य

जैन दर्शन और विज्ञान - संकलक

उपवास चिकित्सा - लेख

शाकाहार बनाम मांसाहार - लेख

Nutrition - लेख

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई–14 : रोग प्रतिरोधी तंत्र का मन द्वारा नियोजन

संरचना

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 रोग प्रतिरोधी क्षमता का नियोजन

  14.2.1 प्राकृतिक रोग प्रतिरोध

  14.2.2 अर्जित रोग प्रतिरोध

14.3 रोग प्रतिरोधी तंत्र का मन द्वारा नियोजन

14.4 रोग प्रतिरोधी श्वेत रक्त कणिकाओं का विवरण

14.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

14.6 सन्दर्भ ग्रंथ

14.0 उद्देश्य

1. रोग प्रतिरोधी क्षमता क्या होती है।
2. प्राकृतिक तथा अर्जित रोग प्रतिरोध क्षमता के बारे में जान पायेंगे।
3. मन द्वारा रोग प्रतिरोधी तंत्र के नियोजन के बारे में जान सकेगें।

14.1 प्रस्तावना

मस्तिष्क शरीर की सभी गतिविधियों का नियंत्रण करता है चाहे वे भौतिक क्रियाएँ हों या रासायनिक क्रियाएँ। इस नियंत्रण की प्रक्रिया में सबसे पहला काम होता है, ज्ञानवाही तंत्रिकाओं द्वारा, शरीर के विभिन्न हिस्सों से बाह्य और आंतरिक सूचनाओं को मस्तिष्क तक पहुँचाने का। ये ज्ञानवाही तंत्रिकाएँ और ये सारे संकेत मुख्यतः पांच विशेष ज्ञानेन्द्रियों से संबद्ध होते हैं। ये ज्ञानेन्द्रियां हैं— कान, आँख, नाक, मुँह और त्वचा। इन ज्ञानेन्द्रियों से जब संकेत मस्तिष्क के सेरिब्रम तक पहुँचता है तो सर्वप्रथम वहाँ उसका विश्लेषण किया जाता है। इस कार्य में मस्तिष्क लिम्बिक सिस्टम एवं हाइपोथैलेमस का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। विश्लेषण के पश्चात् प्रतिक्रिया का रूप निर्धारित किया जाता है। चूंकि प्रतिक्रिया को कार्य रूप देने के लिए शरीर के किसी भी तंत्र या अंग की मदद ली जा सकती है इसलिये मस्तिष्क से प्रतिक्रिया के मुख्य रूप से तीन मार्ग निकलते हैं। पहले मार्ग में सेरिब्रम से प्रतिक्रिया या उत्तर की क्रियान्विति स्वायत्तशासी तंत्रिका तंत्र के अनुकंपी भाग द्वारा की जाती है। अनुकंपी तंत्रिकाओं से जो न्यूरो–ट्रांसमीटरस् निकलते हैं। वे इस तंत्र से सम्बद्ध समस्त अंगों को कार्य करने की तात्कालिक प्रेरणा देते हैं। परिणामतः उनमें सक्रियता बढ़ जाती है। उत्तर संप्रेषण के दूसरे मार्ग में प्रतिक्रिया का संकेत सेरिब्रम से निकलकर हाइपोथैलेमस से होता हुआ पिट्यूटरी तक जाता है। जो आगे चलकर विभिन्न अन्तःस्त्रावी ग्रंथियों को उद्दीप्त करता है और वे हॉर्मोन का स्त्राव करती हैं और वह स्त्राव रक्त में मिल जाता है। जिससे विभिन्न अंगों में सक्रियता उत्पन्न होती है। उत्तर संप्रेषण के तीसरे मार्ग में प्रतिक्रिया की क्रियान्विति रोग प्रतिरोध प्रक्रिया को सक्रिय बनाने में होती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि शरीर के अंदर घटित होने वाले किसी भी परिवर्तन के लिए मस्तिष्क, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जिम्मेदार होता है। यदि हम इस प्रकार कहें कि मस्तिष्क की सक्रियता और सशक्तता के बिना तथा उसके हस्तक्षेप के बिना विभिन्न शारीरिक क्रियाओं का नियोजन संभव नहीं है तो अनुचित नहीं होगा। इन क्रियाओं में स्वायत्तशासी तंत्रिका तंत्र, अन्तःस्त्रावी ग्रंथि तंत्र और रोग प्रतिरोधी तंत्र की महत्त्वपूर्ण तथा जीवन दायिनी प्रक्रियाएँ भी शामिल हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

14.2 रोग-प्रतिरोध क्षमता का नियोजन

मानव शरीर रचना के अंतर्गत प्रकृति द्वारा निर्मित शरीर के अंदर पाये जाने वाले विभिन्न तंत्रों में एक तंत्र है— रोग प्रतिरोधी तंत्र। वास्तव में रचना की दृष्टि से यह कोई अलग से तंत्र नहीं है। बल्कि रक्त परिवहन तंत्र और लसीका तंत्र की कुछ विशिष्ट कोशिकाएँ मिलकर के शरीर के अंदर रोग प्रतिरोध की प्रक्रिया का संचालन करती हैं। उन्हें ही रोग प्रतिरोधी तंत्र की संज्ञा दी जाती है। बहुत सारी वैज्ञानिक खोजों के बाद भी अब तक रोग प्रतिरोध की पूरी प्रक्रिया जटिल बनी हुई है। रोग प्रतिरोधी तंत्र का कार्य उन जीवाणुओं, रोगाणुओं, बैक्टीरिया वाइरस और विषैले पदार्थों से शरीर की रक्षा करना है, जो शरीर में प्रवेश के बाद किसी न किसी रूप में शरीर को नुकसान पहुँचाते हैं। रोग प्रतिरोधी क्षमता मुख्यतया दो प्रकार की होती है—

I. प्राकृतिक (जन्मजात),

II. अर्जित।

14.2.1 प्राकृतिक रोग प्रतिरोध

जन्मजात रोग प्रतिरोध क्षमता जिसे सामान्य सुरक्षा भी कहते हैं, के अंतर्गत त्वचा, शरीर के कई अन्य स्राव, कुछ एन्जाइम्स आदि आते हैं। इसके अतिरिक्त रक्त में पाई जाने वाली कुछ श्वेत रक्त कणिकाएं, लाइसोसोम, पॉलीपेप्टाइड्स और कुछ विशेष प्रकार के प्रोटीन भी इसी प्रकार की रोग प्रतिरोधी क्षमता रखते हैं। ये सारे शरीर में बाहर से प्रवेश करने वाले विजातीय तत्त्वों के ऊपर आक्रमण करके उन्हें रक्त की धारा में ही नष्ट कर देते हैं और फिर ये नष्ट हुए पदार्थ उत्सर्जन प्रक्रिया के द्वारा शरीर से बाहर निकाले दिये जाते हैं। इसमें श्वेत रक्त कणिकाओं का योगदान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होता है। एक स्वस्थ व वयस्क व्यक्ति में श्वेत रक्त कणिकाओं की संख्या लगभग 7 हजार प्रति घन मिलीमीटर रक्त होती है। ये सारी श्वेत रक्त कणिकाएँ पाँच प्रकार की होती हैं। इनमें से कुल श्वेत रक्त कणिकाओं की 62% न्यूट्रोफिल; 2.3% इस्नोफिल; 0.4% बेसोफिल्स; 5.3% मोनोसाइट एवं 30% लिम्फोसाइट होती हैं। इस प्राकृतिक और जन्मजात रोग प्रतिरोध क्षमता में बाहर से प्रवेश करने वाले बैक्टीरिया, वाइरस और दूसरे विषैले पदार्थों को नष्ट करने की प्रक्रिया में सर्वाधिक योगदान न्यूट्रोफिल्स और मोनोसाइट का होता है। न्यूट्रोफिल्स परिपक्व श्वेत रक्त कणिकाएँ होती हैं और इन विजातीय रोगाणुओं को रक्त प्रवाह में ही नष्ट कर देती हैं जबकि मोनोसाइट्स अपरिपक्व श्वेत रक्त कणिकाएँ होती हैं और वे उन रोगाणुओं के घाव के स्थान पर पहुंचकर अपने आकार में पांच गुणा वृद्धि करके मेक्रोफेज का रूप ले लेती हैं और उस स्थान पर जो कोई भी रोगाणु या विजातीय पदार्थ बाहर से प्रवेश करने का प्रयास करता है उसे निगलकर नष्ट कर देती हैं और स्वयं भी नष्ट हो जाती हैं।

मानव शरीर लगातार साम्यावस्था बनाए रखने का प्रयत्न करता है। उसके अन्तर्गत रोग पैदा करने वाले जीवाणुओं, जिन्हें पेथोजन्स कहा जाता है और उनके विषों से शरीर की सुरक्षा का काम भी होता है। प्राकृतिक रोग प्रतिरोध क्षमता के अन्तर्गत निम्न प्रकार की प्रकृतिदत्त सुरक्षा के उपाय हमारे शरीर में पाए जाते हैं–

(i) त्वचा और श्लेष्मा झिल्लियाँ,

(ii) फेगोसाइटोसिस,

(iii) इन्फ्लेमेशन,

(iv) ज्वर,

(v) प्रतिजीवाणु रासायनिक पदार्थ।

14.2.1.1 त्वचा और श्लेष्मा झिल्लियाँ

त्वचा और श्लेष्मा झिल्लियाँ शरीर की पहली सुरक्षा पंक्तियाँ हैं। इनके द्वारा अनेक प्रकार की यांत्रिक रासायनिक क्रियाओं के फलस्वरूप रोगाणुओं से शरीर की सुरक्षा में मदद मिलती है।

यांत्रिक प्रक्रिया के अन्तर्गत त्वचा शरीर के चारों तरफ एक मजबूत आवरण के रूप में इसकी सुरक्षा करती है। इसके दोहरे आवरण जिन्हें एपिडर्मिस और डर्मिस कहा जाता है और जिनके साथ किरेटिन नामक अस्तर लगा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

होता है, एक मजबूत बाधा के रूप में जीवाणुओं को शरीर में प्रवेश करने से रोकती है। इसके अतिरिक्त त्वचा के एपिडर्मिस नामक स्तर से कोशिकाओं के निरन्तर क्षरण के कारण उससे चिपके हुए रोगाणु स्वतः ही शरीर से अलग हो जाते हैं तो उसके द्वारा रोगाणुओं का शरीर में प्रवेश संभव नहीं होता।

श्लेष्मा झिल्लियाँ त्वचा के ठीक नीचे स्थित संयोजी उत्तक के साथ उपकला कोशिका स्तर के रूप में पाई जाती हैं। इनके द्वारा एक अत्यन्त चिकने पदार्थ जिसे श्लेष्मा कहा जाता है, का स्राव होता है जिसकी वजह से आंतरिक और बाह्य दोनों स्तर नम रहते हैं। श्लेष्मा के कारण बहुत सारे रोगाणु और बैक्टीरिया इसमें उलझ कर रह जाते हैं और शरीर की सुरक्षा होती है। हमारी नासागुहा में पाए जाने वाले रोमों से भी एक प्रकार का श्लेष्म पदार्थ निकलता है जिसके कारण नासागुहा में प्रवेश करने वाली वायु से जीवाणुओं, धूल के कणों और अन्य प्रदूषण उत्पन्न करने वाले कणों को छान लिया जाता है। इसी कारण श्वास नलिका के ऊपरी भाग में छोटे-छोटे रोम पाए जाते हैं जो इस प्रकार तेजी से गति करते हैं जिससे श्वास के द्वारा अंदर आए धूल कण एवं अन्य जीवाणुओं को नीचे फेफड़ों की ओर जाने से रोका जाता है। हमारी आँखों के अंदर अश्रु ग्रंथियों का प्रावधान होता है। जिनसे एक जलीय पदार्थ निकलता है जिसे आँसू कहा जाता है। यह तरल पदार्थ न केवल आँखों को नम रखता है बल्कि धूल, मिट्टी के कण और सूक्ष्म जीवाणुओं को अंदर जाने से रोकता है तथा आँखों की सफाई में मदद करता है। आँखों में किसी बड़े कण के पड़ जाने पर अश्रु ग्रंथियाँ स्वतः ही सक्रिय हो जाती हैं और अधिक मात्रा में आंसूओं का निर्माण होने लग जाता है जिससे वे कण बाहर निकल जाते हैं। अश्रु ग्रंथियों में आँसुओं के निर्माण एवं निकलने के अनुपात में अंतर होता है। आँसुओं का बनना और इकट्ठा रहना अधिक एवं निकलना अपेक्षाकृत कम होता है। जिससे आँखों के अंदर किसी संभावित रोगाणु को अपने साथ बाहर निकालने में अधिक मदद मिलती है।

रासायनिक प्रक्रियाओं के अंतर्गत त्वचा में पाई जाने वाली सिबेसियस ग्रन्थियों (तैल ग्रंथियों) से एक तैलीय पदार्थ निकलता है जिसे सीबम कहते हैं। यह त्वचा को चिकना और मुलायम बनाकर रखता है तथा फटने से बचाता है। इसके अंदर असंतृप्त बसा अम्ल पाया जाता है। जो अनेक रोगाणुओं, बैक्टीरिया और फफूंद को त्वचा के ऊपर पनपने से रोकता है। इसी प्रकार त्वचा के अंदर पाई जाने वाली स्वेद ग्रंथियाँ, पसीने का स्राव करती हैं, जो शरीर के तापमान को नियंत्रित करने एवं अनेक सूक्ष्म जीवाणुओं को शरीर से बाहर निकालने में मदद करता है। स्वेद के अंदर लाइसोजाइम नामक एक एन्जाइम होता है जो अनेक बैक्टीरिया को नष्ट करने में सहायक होता है।

14.2.1.2 फेगोसाइटोसिस

त्वचा की बाह्य सुरक्षा को भेदकर यदि कोई रोगाणु या जीवाणु शरीर के अन्दर प्रवेश कर जाता है और रक्त प्रवाह में पहुंच जाता है तो उसे फेगोसाइटोसिस प्रक्रिया के द्वारा नष्ट किया जाता है। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत सूक्ष्म जीवाणुओं अथवा नुकसान पहुंचाने वाले विजातीय पदार्थों को फेगोसाइट नामक कोशिकाओं के द्वारा निगलकर नष्ट कर दिया जाता है। फेगोसाइट कोशिकाएँ जो फेगोसाइटोसिस की प्रक्रिया में भाग लेती हैं वे दो प्रकार की होती हैं–

1. ग्रेनुलोसाइट (माइक्रोफेजेज) एवं
2. मेक्रोफेजेज।

न्यूट्रोफिल नामक श्वेत रक्त कणिका फेगोसाइटोसिस प्रक्रिया में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। जबकि इस्नोफिल्स कुछ सीमा तक ही इस प्रक्रिया में भाग लेती है।

14.2.1.3 इन्फ्लेमेशन

जब रोगाणुओं के आक्रमण या किसी बाहरी घात अथवा किसी रासायनिक पदार्थ के कारण शरीर की कोशिकाएँ घायल हो जाती हैं। तो इन्फ्लेमेशन की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। यह एक सुरक्षा का उपाय है। जिसके अन्तर्गत निम्नांकित चार प्रमुख लक्षण दिखाई देते हैं–

1. चोट या घायल स्थान का लाल हो जाना,
2. दर्द होना,
3. अत्यधिक गर्म होना एवं
4. सूजन आना।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

कई बार पांचवे लक्षण के रूप में उस स्थान विशेष का काम भी बंद हो जाता है। इन्फ्लेमेशन एक प्रकार की सुरक्षा और संरक्षा का उपाय है जिसके द्वारा घायल स्थान से जीवाणुओं, विषैले पदार्थों तथा बाहरी विजातीय पदार्थों को चोट वाले स्थान से बाहर किया जाता है ताकि वे शरीर के अन्दर न फैल सके। इस प्रक्रिया के तत्काल बाद धीरे-धीरे ये सारे लक्षण समाप्त हो जाते हैं और उस स्थान के टूटे-फूटे और कटे हुए ऊतकों का पुनर्निमाण हो जाता है।

14.2.1.4 ज्वर

शरीर में ज्वर उत्पन्न होने का प्रमुख कारण किसी बैक्टीरिया अथवा वाइरस का संक्रमण ही होता है। इसमें शरीर का तापमान असाधारण रूप से बढ़ जाता है, जिसके फलस्वरूप रोगाणुओं का पनपना रूक जाता है। और शरीर के अंदर पुनर्निर्माण के लिए आवश्यक क्रियाएँ तेज हो जाती हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि ज्वर अपने आप में कोई बीमारी नहीं है बल्कि शरीर के अन्दर छिपी हुई बीमारी को बाहर लाने का संकेत है और शरीर के सुरक्षा तंत्र को सक्रिय बनाने का माध्यम है।

14.2.1.5 प्रतिजीवाणु रासायनिक पदार्थ

उपरोक्त यांत्रिक और रासायनिक सुरक्षा के अतिरिक्त शरीर के द्वारा अनेक ऐसे जीवाणु रोधी पदार्थों का स्राव भी किया जाता है जो अलग-अलग तरह से शरीर की सुरक्षा करते हैं। कुछ प्रमुख प्रतिजीवाणु रासायनिक पदार्थ इस प्रकार हैं—

1. इन्टरफ्रेरॉन,
2. कॉम्प्लीमेन्ट,
3. प्रोपर्डीन।

1. इन्टरफ्रेरॉन

कतिपय वायरस और बैक्टीरिया से संक्रमित कोशिकाएँ एक विशेष प्रकार की प्रोटीन का उत्पादन करती हैं। जिन्हें इन्टरफ्रेरॉन कहा जाता है। ये तीन प्रकार के होते हैं— एल्फा, बीटा और गामा। मनुष्यों में इनका उत्पादन मुख्यतया लिम्फोसाइट नामक श्वेत रक्त कणिकाओं के द्वारा किया जाता है। ये विशेष प्रकार के प्रोटीन उन कोशिकाओं के संपर्क में आती हैं जो संक्रमित नहीं होती हैं और उन्हें विशेष प्रकार की प्रतिवाइरस प्रोटीन बनाने को प्रेरित करती हैं। जिससे वाइरस की वृद्धि रूक जाती है और संक्रमण समाप्त हो जाता है।

2. कॉम्प्लीमेन्ट

यह रासायनिक पदार्थ 20 ऐसे प्रोटीनों का समूह है जो सामान्य और स्वस्थ मनुष्य के रक्त में पाया जाता है। रोगाणुओं के शरीर में प्रवेश के पश्चात् कॉम्प्लीमेन्ट नामक विशेष प्रोटीन उनके साथ बंध बनाती है और उन्हें विकसित होने से रोक देती है।

3. प्रोपर्डीन

कॉम्प्लीमेन्ट की तरह ही ये भी तीन प्रोटीनों का एक जटिल समूह है जो आक्रमणकारी रोगाणुओं से मिलकर उनके विकास को रोकता है।

14.2.2 अर्जित रोग प्रतिरोध

अर्जित रोग प्रतिरोध क्षमता शरीर के अंदर विकसित विशिष्ट रोग प्रतिरोध क्षमता है जो विशेष प्रकार के घातक बैक्टीरिया, वाइरस एवं विषैले पदार्थों को नष्ट करने के लिए काम में लाई जाती है। इस प्रक्रिया का विकास तब तक नही होता जब तक शरीर में उस प्रकार के विशिष्ट बैक्टीरिया, वाइरस एवं विषैले पदार्थ प्रवेश नही करते। इन सभी घातक पदार्थों को सामूहिक रूप से एन्टीजन कहा जाता है। इस विशेष रोग प्रतिरोध क्षमता के अंतर्गत

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इन घातक पदार्थों की पहचान करके उनको नष्ट करने के लिए दो विशेष प्रकार की क्षमता का विकास शरीर के अंदर ही किया जाता है–

1. कोशिकीय रोग प्रतिरोध क्षमता,
2. ह्यूमोरल रोग प्रतिरोध क्षमता।

टी–सेल रोग प्रतिरोध की प्रक्रिया

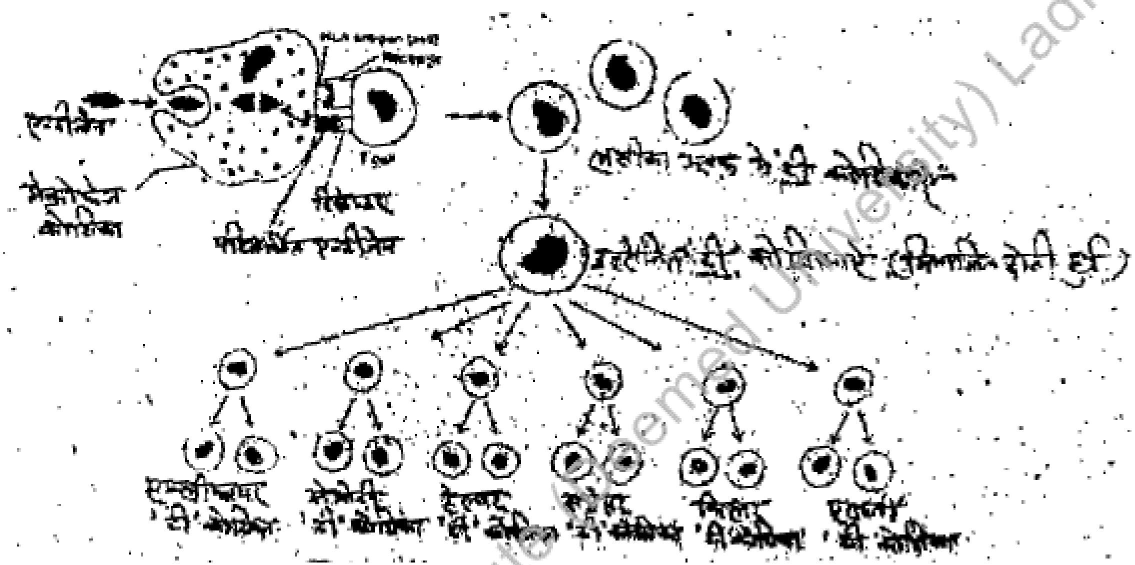

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कोशिकीय रोग प्रतिरोध क्षमता के अन्तर्गत श्वेत रक्त कणिकाओं में से एक लिम्फोसाइट, T-Cell के रूप में विकसित होती है। जिसे T-Cell लिम्फोसाइट कहा जाता है। ऐन्टीजेन के सम्पर्क में आते ही मैक्रोफेज उन्हें टी (T) कोशिका के सम्पर्क में लाता है जिसके परिणाम स्वरूप यह टी–कोशिका अप्रत्याशित रूप से उत्तेजित होकर आकार में बढ़ती है और फिर विभाजित होकर विभिन्न प्रकार की टी कोशिकाओं में बदल जाती है। इस प्रक्रिया के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होने वाली मुख्य टी कोशिकाओं का विवरण इस प्रकार है–

1. एम्प्लीफायर टी कोशिकाएँ	–	दूसरी अन्य टी कोशिकाओं की कार्य क्षमता को बढ़ाती है।
2. मेमोरी टी कोशिकाएँ	–	एन्टीजन की पहचान करती है।
3. हेल्पर टी कोशिकाएँ	–	एन्टीबाडी के उत्पादन में सहायक होती हैं।
4. सप्रेसर टी कोशिकाएँ	–	एन्टीबाडी के उत्पादन को रोकती हैं।
5. किलर टी कोशिकाएँ	–	एन्टीजन पर सीधे वार करके नष्ट करती हैं।
6. एलर्जी टी कोशिकाएँ	–	एलर्जी उत्पन्न करती हैं।

संशोधित और परिवर्धित T-Cell कोशिकाएँ रक्त प्रवाह के द्वारा सारे शरीर में फैल जाती हैं और एन्टीजन्स् की तलाश करके उनसे सीधे टकराती हैं और उन्हें नष्ट कर देती हैं।

'बी' सेल रोग प्रतिरोध की प्रक्रिया

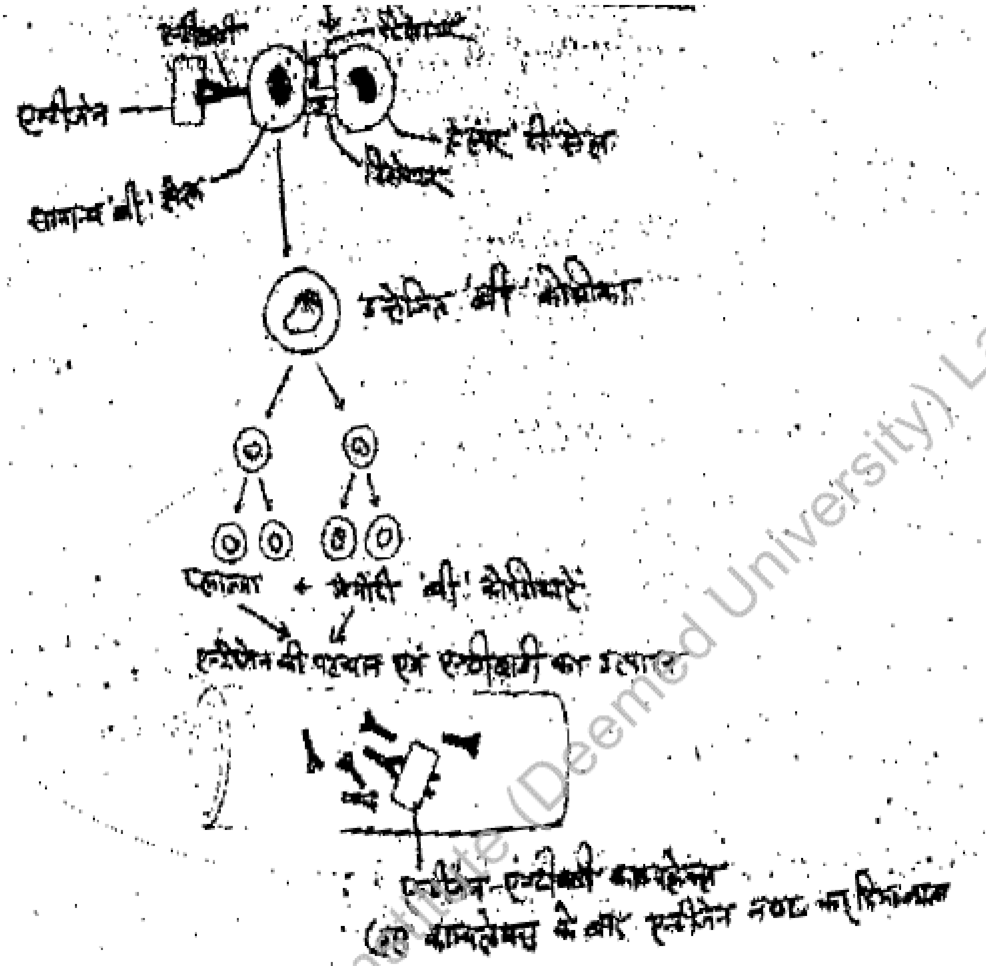

कतिपय लिम्फोसाइट बी कोशिका (B-Cell) के रूप में परिवर्तित होती हैं। जब ये बी-कोशिकाएँ एन्टीजेन के सम्पर्क में आती हैं तो इनके पुनर्परिवर्धन की प्रक्रिया शुरू होती है। बी-कोशिकाएँ परिवर्धित होकर आकार में बड़ी हो जाती हैं और फिर विभाजित होकर प्लाज्मा बी कोशिका और मेमोरी बी-कोशिका के रूप में बदल जाती हैं। प्लाज्मा बी-कोशिका एन्टीबॉडी नामक रासायनिक पदार्थों का उत्पादन करती हैं जो एन्टीजेन के साथ संयोग करके उसे नष्ट कर देता है जबकि मेमारी बी-कोशिका रक्त में मौजूद सारे एन्टीजेन की पहचान कर उन्हें नष्ट करवाने में सहायता करती है।

14.3 रोग प्रतिरोधी तंत्र का मन द्वारा नियोजन

रोग प्रतिरोध क्षमता के मन द्वारा नियोजन के क्रम में एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि मस्तिष्क से सुरक्षा रूप प्रक्रिया के जो तीन मार्ग निकलते हैं उसमें सीधे रोग प्रतिरोध तंत्र को आदेश प्राप्त होने के अतिरिक्त स्वायत्तशासी तंत्रिका-तंत्र एवं अन्तःस्रावी तंत्र भी अहम् भूमिका निभाते हैं। स्वायत्तशासी तंत्रिकाओं से निकलने वाले प्रमुख न्यूरोट्रांसमीटर– एसिटिल कोलीन, नारएपीनेफ्रीन, एनसिफौलीन आदि रोग प्रतिरोधी तंत्र की टी कोशिकाओं के साथ सम्पर्क बनाते हैं क्योंकि उन पर इन हार्मोनों के ग्राही तत्त्व (receptors) मौजूद होते हैं। इस सम्पर्क के द्वारा वे टी-कोशिकाओं की क्षमता का संवर्धन करते हैं। इसी प्रकार अन्तःस्रावी ग्रंथियों से निकले हुए हॉर्मोन, जिनमें ए.सी. टी.एच., वेसोप्रेसिन, ऑक्सीटोसिन और एड्रीनल हॉर्मोन प्रमुख हैं, अपने रिसेप्टर्स के द्वारा रोग प्रतिरोधी कोशिकाओं को प्रेरणा देते हैं। रोग प्रतिरोधी तंत्र में उपरोक्त वर्णित टी कोशिका और बी कोशिका के द्वारा संवर्धन के पश्चात्

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

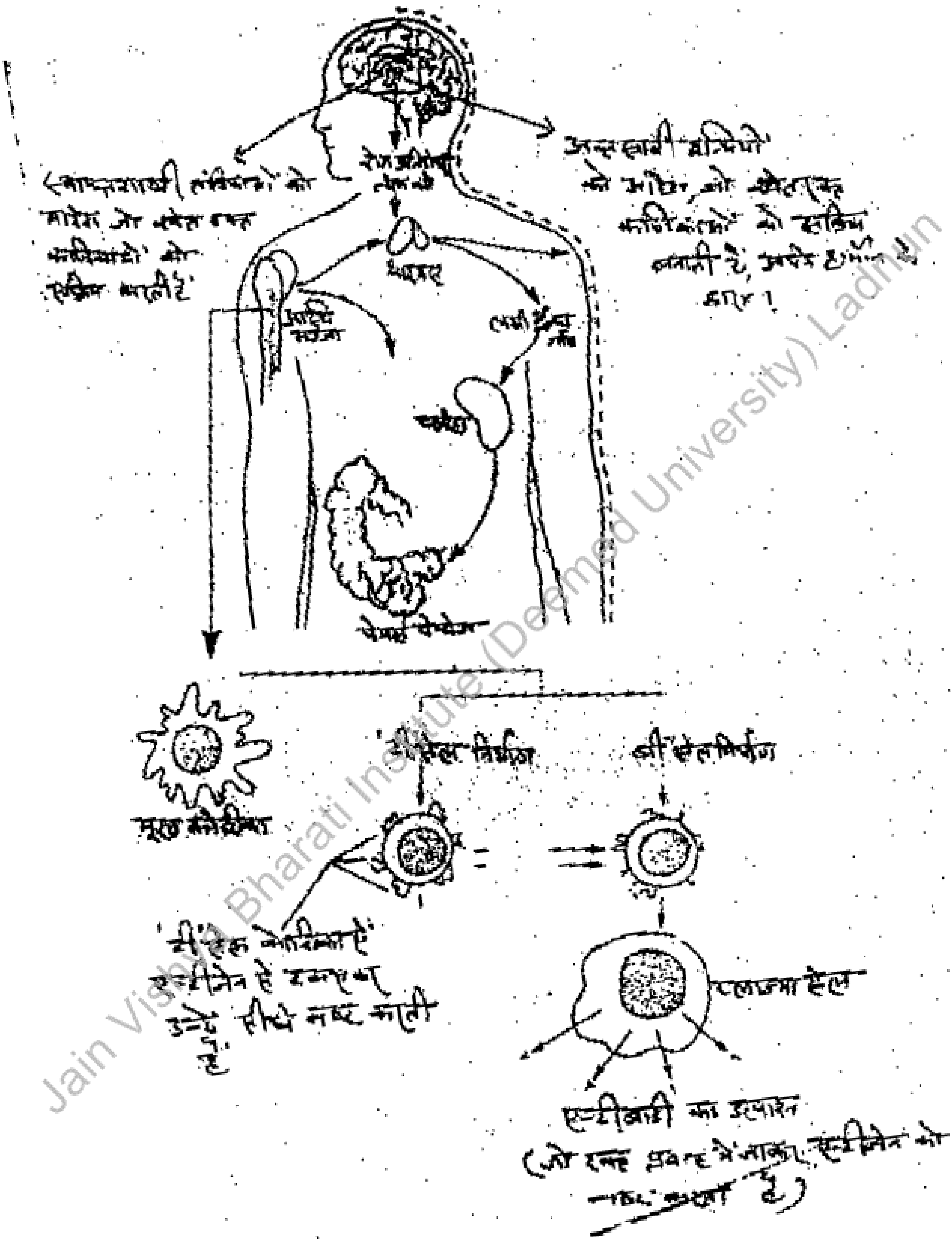

मन द्वारा रोग प्रतिरोधी प्रक्रियाओं का नियोजन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

या तो विजातीय एन्टीजेन सीधे नष्ट कर दिये जाते हैं अथवा एन्टीबाडी का उत्पादन करके उन्हें नष्ट किया जाता है। इस क्रिया के साथ इन कोशिकाओं से एक विशेष प्रकार के स्राव भी निकलते पाये गये हैं जिन्हें इम्यूनो-ट्रांसमीटर कहा जाता है। ये इम्यूनोट्रांसमीटर पुनश्च मस्तिष्क के हाइपोथैलेमस तथा स्वायत्तशासी तंत्रिका तंत्र को फीडबैक संदेश भेजते हैं जिससे यह क्रिया तब तक जारी रहती है जब तक सारे एन्टीजेन या विजातीय हानिकारक तत्त्व नष्ट नहीं कर दिये जाते। इस प्रकार यह बात स्पष्ट हो जाती है कि टी और बी कोशिकाओं के संवर्धन से लेकर एन्टीजेन को नष्ट करने की जटिल प्रक्रिया में स्वायत्तशासी तंत्रिका-तंत्र और हाइपोथैलेमस तथा पियूष ग्रंथि के द्वारा मस्तिष्क का सीधा हस्तक्षेप होता है। मस्तिष्क की सक्रियता एवं उसके सहायकों की तरलता अर्जित रोग प्रतिरोध क्षमता को न केवल प्रभावित करती है बल्कि उसे अप्रत्यक्ष रूप से नियंत्रित भी करती है।

14.4 रोग प्रतिरोधी श्वेत रक्त कणिकाओं का विवरण

I. कुल श्वेत रक्त कणिकाओं की संख्या - 7000 प्रति घन मिलीमीटर रक्त

II. कुल श्वेत रक्तकणिकाओं का - न्यूट्रोफिल = 62%
इस्नोफिल = 2.3%
बेसोफिल = 0.4%
मोनोसाइट = 5.3%
लिम्फोसाइट = 30%

III. जन्मजात रोग प्रतिरोध क्षमता के अन्तर्गत—

1. न्यूट्रोफिल और मोनोसाइट— आक्रमणकारी बैक्टीरिया और वाइरस को नष्ट करती हैं।
2. न्यूट्रोफिल बैक्टीरिया और वाइरस को रक्त प्रवाह में ही नष्ट कर देती है।
3. मोनोसाइट, बैक्टीरिया और वाइरस के रक्त प्रवाह से ऊतकों में प्रवेश करने के पश्चात् आकार में बड़ी होकर उन्हें निगलती है।

14.5 अभ्यास हेतु प्रश्न

निबंधात्मक प्रश्न

1. मानव शरीर की प्राकृतिक रोग प्रतिरोध क्षमता का विस्तृत वर्णन करें?
2. रोग प्रतिरोध क्षमता को स्पष्ट करते हुए मन द्वारा इसके नियोजन को स्पष्ट करें?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. अर्जित रोग प्रतिरोध क्या है?
2. मस्तिष्क से संकेतों की प्रतिक्रिया किस प्रकार होती है?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. प्राकृतिक रोग प्रतिरोध क्या है एवं इसके कितने प्रकार हैं?
2. श्वेत रक्त कणिकाओं की संख्या, नाम एवं मात्रा बताइए?

14.6 सन्दर्भ ग्रंथ

1. शरीर क्रिया विज्ञान—प्रमिला वर्मा, कांति पांडेय
2. Human Physiology
3. Principles of Anatomy and Physiology—Gerard J. Tortora, Nicholas P. Anagnostalos

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–15 : स्मृति (Memory) और स्मृति एनग्राम (Memory Engram), सीखने एवं स्मृति की प्रक्रिया में जैव रासायनिक परिवर्तन

संरचना

15.0 उद्देश्य
15.1 प्रस्तावना
15.2 स्मृति एवं एनग्राम
15.2.1 स्मृति के प्रकार
15.3 सीखने की नाड़ीय दैहिकी
15.4 प्राचीन अनुबन्धन एवं नाड़ी दैहिकी
15.4.1 मस्तिष्क क्षति
15.4.2 मस्तिष्क उद्दीपक
15.4.3 विद्युतीय सहसम्बन्धक
15.5 विभेदन क्षमता
15.5.1 कामानुभूतिक प्रभेद
15.5.2 श्राव्य सम्बन्धी प्रभेद
15.5.3 दृष्टि सम्बन्धी प्रभेद
15.6 नैमित्तिक सीखना
15.6.1 कैपर्स का साहचर्य सिद्धान्त
15.6.2 लैश्ले का वृद्धि सिद्धान्त
15.6.3 मैक्डूगल का निस्सारण सिद्धान्त
15.6.4 तान्जी का सिद्धान्त
15.6.5 चाइल्ड का सिद्धान्त
15.6.6 होल्ट का सिद्धान्त
15.6.7 यंग का सिद्धान्त
15.7 स्मृति के सिद्धान्त और क्रिया विधि
15.8 अभ्यासार्थ प्रश्न
15.9 संदर्भ ग्रंथ

15.0 उद्देश्य

1. स्मृति एवं एनग्राम के बारे में जान सकेगें।
2. सीखने की नाड़ीय दैहिकी सिद्धान्त को समझ सकेगें।
3. स्मृति के सिद्धान्त और क्रिया विधि को जान सकेगें।

15.1 प्रस्तावना

स्मृति के बिना हम बार-बार गलतियाँ दोहरायेंगे और कुछ भी सीख पाना सम्भव नहीं होगा। ठीक इसी तरह उसे भी दुबारा नहीं कर पायेंगे, जो हमने सीख पाने में सफलता हासिल की है। वैज्ञानिक स्मृति और अधिगम

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(Learning) के ऊपर वर्षो से शोध करते आये हैं परन्तु अभी तक इस प्रश्न का कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिल पाया कि वास्तव में हम विगत की बातों को किस प्रकार याद कर उन्हें यथावत दुहरा देते हैं अथवा किस प्रकार हम किसी बात को याद कर लेते हैं। उन्होंने कुछ सीमा तक यह जरूर बताया है कि हमारे मस्तिष्क में किस प्रकार सूचना प्राप्त की जाती है और किस प्रकार उन्हें सुरक्षित रखा जाता है।

15.2 स्मृति एवं एनग्राम

वैज्ञानिकों का यह मत है कि निर्देशों अथवा अनुभवों के आधार पर किसी विषय वस्तु के बारे में ज्ञान अथवा दक्षता प्राप्त करने की क्षमता को अधिगम कहते हैं। अधिगम के साथ पुरस्कार अथवा दण्ड का बहुत नजदीक का सम्बन्ध होता है। दूसरे शब्दों में कोई व्यक्ति तभी सीखता है जब उसे उसके लिए पुरस्कार या लाभ मिलने की आशा हो अथवा दण्ड का भय हो। विचारों को वापस बुलाने की क्षमता को स्मृति कहते हैं। जब कोई अनुभव या घटना विशेष हमारी स्मृति का भाग बनती है तो हमारे मस्तिष्क के उस भाग में, जो उसका प्रतिनिधित्व करता है अथवा जहाँ से उसका विश्लेषण-नियोजन होता है, कुछ विशेष परिवर्तन होते हैं। ये परिवर्तन अपना अक्स छोड़ देते हैं। इस अक्स को ही स्मृति एनग्राम कहते हैं। मानव मस्तिष्क के जो भाग अधिगम और स्मृति की प्रक्रिया में भाग लेते हैं वे हैं— फ्रंटल, पेराइटल, टेम्पोरल एवं आक्सीपिटल उपखण्डों के एसोसिएसन कार्टेक्स। इसके अतिरिक्त लिम्बिक सिस्टम और डायनसिफेलम (थैलेमस और हाइपोथैलेमस) अनुभाग भी इस प्रक्रिया में सक्रिय भाग लेते हैं।

15.2.1 स्मृति के प्रकार

स्मृति दो प्रकार की होती है— अल्पकालीन स्मृति (Short term Memory) और दीर्घकालीन स्मृति (Long term Memory)। अल्पकालीन स्मृति की अवधि मात्र कुछ सैकेन्ड से लेकर कुछ घंटो तक ही सीमित रहती है। इसके बाद यदि उसे वापिस याद करने का प्रयास किया जाय तो वह टुकड़ों में याद आती है शेष हमेशा के लिए विस्मृत हो जाती है। उदाहरण के लिए किसी व्यक्ति को किसी अपरिचित का टेलीफोन नम्बर बताकर उसे फोन करने को कहा जाये तो फोन करने के कुछ ही देर बाद उसे नम्बर याद नहीं रहेगा, वह भूल जायेगा। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि उस टेलीफोन की कोई विशेष उपयोगिता या अहमियत नहीं होती है। दीर्घकालीन स्मृति की अवधि कई दिनों से लेकर कई वर्षों तक की होती है। उदाहरण के लिए अपने स्वयं के घर का टेलीफोन नम्बर। इसे बार-बार दोहराये जाने के कारण लम्बे समय तक जब भी आवश्यकता पड़ती है यह याद आ जाता है। यही नहीं जितना ही इसे प्रयोग में लाते जाते हैं इसकी स्मृति उतनी ही मजबूत होती जाती है। स्मृति के सुदृढ़ करने की यह प्रक्रिया स्मृति संवर्धन कहलाती है।

हमारे मस्तिष्क को विविध प्रकार की सूचनाऐं और उद्दीपन मिलते रहते हैं इनमें से हम कुछ के प्रति ही जागरूक रहते हैं। एक आकलन के अनुसार केवल एक प्रतिशत सूचनाएँ ही दीर्घकालीन स्मृति में जाती हैं और उसका एक बड़ा भाग पुनः विस्मृत हो जाता है। यह सुखद संयोग है कि मस्तिष्क को जितनी सूचनाऐं पहुँचती हैं उनमें से कुछ को ही मस्तिष्क सुरक्षित रखता है शेष को गायब हो जाने देता है। यदि ऐसा नहीं होता तो मस्तिष्क में इतनी सूचनाऐं एकत्र हो जाती कि उसे संभाल पाना सम्भव नहीं होता और वहाँ अव्यवस्था की स्थिति उत्पन्न हो जाती।

स्मृति की यह विशेषता होती है कि वह छोटी सूची वाली सूचनाओं को लम्बी सूची वाली सूचनाओं की अपेक्षा जल्दी बाहर ला सकती है। चुम्बकीय टेप की तरह स्मृति प्रकोष्ठ में सारी सूचनाऐं रिकार्ड नहीं होती बल्कि चुनी हुई सूचनाऐं ही रिकार्ड होती हैं। यही नहीं स्मृति की एक विशेषता यह भी होती है कि यदि लम्बी सूची वाली सूचनाओं की सारी जानकारी विस्मृत हो जाती है तब भी उसके खास-खास बिन्दु और सारांश याद रहता है। यही कारण है कि जब किसी याद की हुई विषय-वस्तु को प्रस्तुत करते हैं तो यथावत व्यक्त नहीं कर पाते बल्कि उसके भावों को अपने शब्दों में व्यक्त करते हैं।

15.3 सीखने की नाड़ीय दैहिकी

प्रस्तुत अध्याय में हम विभिन्न प्रकार से सीखने के नाड़ीय एवं दैहिकी आधारों का उल्लेख करेंगे। यह तो हमें विदित ही है कि सीखने की व्याख्या प्रायः तीन विचारधाराओं के अनुसार की जाती है— (i) प्राचीन अनुबन्धन,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(ii) विभेदन सीखना तथा (iii) नैमित्तिक सीखना। यद्यपि सीखने की दैहिक यन्त्र रचना पर अधिकांशतः कार्य मानव की अपेक्षा जानवरों— बिल्ली, चूहे, कुत्ते, चिम्पेंजी आदि पर ही हुआ क्योंकि मानव के विभिन्न अंगों की दैहिक प्रतिक्रियाओं में विघ्न डालना सम्भव नहीं है।

15.4 प्राचीन अनुबन्धन एवं नाड़ी दैहिकी (Neurophysiology and classical conditioning)

सन् 1906 में रूसी दैहिकशास्त्री पावलॉव ने प्रसिद्व अनुबन्धित प्रतिवर्त (Conditioned reflex) के सिद्धान्त को प्रतिपादित किया। उन्होंने अपने प्रयोगों में एक अनुबन्धित उद्दीपक (C.S.) घण्टी का प्रयोग किया, जिसे कि अनानुबन्धित उद्दीपक (U.S.)— भोजन (जो लगभग एक सैकण्ड पूर्व कुत्ते के सामने प्रस्तुत किया गया था) तथा इसी प्रकार के निरन्तर कई प्रयासों के बाद उन्होंने पाया कि अनुबन्धित उद्दीपक (C.S.) घण्टी से अनानुबन्धित अनुक्रिया (U.R.) लार उत्पन्न होने लगी, इसी अवस्था को अनुबन्धित अनुक्रिया (Conditioned response C.R.) कहा जाता है। सुरक्षात्मक अनुबन्धन भी प्राचीन अनुबन्धन के अन्तर्गत सम्मिलित किया जा सकता है। इसमें किसी जानवर को अनुबन्धित उद्दीपक (C.S.)— प्रकाश या घण्टी के बाद विद्युत आघात दिया जाता है। इसमें जानवर आघात से बचने के लिए C.S. के प्रति अनुक्रिया में पैर उठाना सीख लेता है। अब हम प्राचीन एवं सुरक्षात्मक अनुबन्ध द्वारा सीखने में जो नाड़ीय एवं दैहिक परिवर्तन होते हैं उनका उल्लेख करेंगे। अनुबन्धन में दैहिक यन्त्र रचना का वर्णन चार वर्गों के अन्तर्गत किया जायेगा—(i) मस्तिष्क क्षति (Brain Lesions), (ii) मस्तिष्क उद्दीपन (Brain Stimulation), (iii) विद्युतीय सहसम्बन्ध (Electrical Correlates) तथा (iv) शारीरिक आधार।

15.4.1 मस्तिष्क क्षति (Brain Lesions)

मस्तिष्क के किसी अंग को क्षतिग्रस्त या खण्डित करके उसकी दैहिक कार्य व कार्य-प्रणाली का अध्ययन करना सबसे पुरानी विधि है, वर्तमान समय की अन्य विधियों के साथ-साथ यह विधि आज भी अत्यधिक प्रचलित है। प्रारम्भ में यह विधि केवल मस्तिष्कीय कार्टेक्स का कार्य जानने के लिए उसे मस्तिष्क से बाहर निकाल कर एवं क्षतिग्रस्त करके अध्ययन करने तक ही सीमित थी किन्तु आज की विकसित स्टेरिओ टेक्सिक विधियों के आविष्कार के साथ यह विधि मस्तिष्क की गहराई तक के कोशों को नष्ट करके उप-कार्टिकल क्षेत्रों के कार्यो पर प्रकाश डालती है। यह विधि अनुबन्धन द्वारा सीखने में प्रमस्तिष्कीय कार्टेक्स, लिम्बिक तन्त्र, थैलेमस, मध्य मस्तिष्क तथा मेरुरज्जु के कार्यो का उल्लेख करती है।

15.4.1.1 प्रमस्तिष्कीय कार्टेक्स

प्रमस्तिष्कीय कार्टेक्स के कार्यों को चार वर्गों- पूर्णतया विखण्डित कार्टेक्स (complete decorated), अर्द्ध विखण्डित कार्टेक्स (semi-decorated), संवेदी क्षेत्र एवं अग्र कार्टेक्स में विभाजित कर सकते हैं।

15.4.1.2 लिम्बिक तन्त्र (Limbic system)

इसका अधिकांश भाग उप कार्टिकल तन्त्र होता है किन्तु इसमें प्रमस्तिष्कीय कार्टेक्स का सिन्गुलेट जाइरस भी शामिल होता है। इस संरचना तन्त्र में पट (septum), हिपोकैम्पस, ऐमिग्डाला तथा उपथैलेमस को नष्ट करके तथा व्यवहार मुख्य प्रणालियों, अनुबन्धित संवेगात्मक अनुक्रियाओं (CRE) या कूद सुरक्षात्मक अनुक्रियाओं का प्रयोग कर प्रभाव का अध्ययन किया जाता है।

पट (septum) के विखण्डन से संवेगात्मकता बढ़ती है तथा कुछ समय बाद इसका प्रभाव नष्ट हो जाता है। ऐमिग्डाला के विखण्डन का प्रभाव प्रायः पालतू जानवरों के भावात्मक व्यवहार में कम पाया जाता हैं। इसका प्रभाव जंगली या सामान्य जानवरों को अधिक शांत एवं कम भावात्मक बना देता है। अतः प्रायः ऐमिग्डाला के विखण्डन से Conditioned Emotional Respones (CER) एवं Conditioned Avoidance Responses (CAR) का अर्जन एवं धारण नष्ट हो जाता है। सिन्गुलेट जाइरस अनुबन्धित बचाव प्रतिक्रिया के अर्जन एवं धारण में महत्त्वपूर्ण भाग लेता है किन्तु इसके विभिन्न अंग अलग-अलग प्रकार की बचाव प्रतिक्रियाओं में सम्मिलित होते हैं। सी. ई. आर. अर्जित चूहों में सिन्गुलेट कार्टेक्स के वास्तविक विखण्डन के बाद व्यवहार का पूर्ण धारण देखा गया। हिपोकैम्पस को लिम्बिक तंत्र की अंतिम रचना माना जाता है। अधिक बड़े हिपोकैम्पस विखण्डन वाले जानवरों में CAR को अर्जित करने में

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कोई कठिनाई नहीं होती। वे सामान्य जानवर के समान उतनी ही शीघ्रता से बचाव सटलिंग सीख लेते हैं। बन्दरों में हिपोकैम्पस के विखण्डन से CAR का धारण नष्ट हो जाता है।

15.4.1.3 थैलेमस (Thalamus)

थैलेमस के तीन क्षेत्र बचाव तथा प्राचीन अनुबन्धन होते हैं। (i) पोस्टीरियर न्यूक्लाई (posterior nuclei)– यह दृष्टि उद्दीपक से सम्बन्धित होते हैं। चूहों को प्रकाश उद्दीपक की अनुक्रिया के रुप में कूद बचाव अनुक्रिया उत्पन्न करना तथा अन्य को एक हजार चक्र टोन की ध्वनि उद्दीपक के उत्तर में यही अनुक्रिया करना सिखाया गया। फिर पोस्टीरियर न्यूक्लाई के विखण्डन के पश्चात् धारण परीक्षण दिया गया तथा देखा गया कि श्रवण उद्दीपक के प्रति प्रतिक्रिया करने वाले अधिक प्रभावित हुए क्योंकि दृष्टि कार्टेक्स तथा पोस्टीरियर थैलेमस न्यूक्लाई के मध्य शरीर रचना सम्बन्ध पाया जाता है। (ii) डोरसोमीडियल न्यूक्लाई (dorsomedial nuclei)– थैलेमस की यह अविशिष्ट रचना बचाव अनुबन्धन से सम्बन्धित होती है इसके विखण्डन से जानवरों में ऑपरेशन से पूर्व सक्रिय CAR में धारण नहीं देखा गया तथा उन्हें दुबारा सीखने में अधिक कठिनाई हुई। (iii) डिफ्यूज थैलेमस न्यूक्लाई (diffuse thalamic nuclei)– यह रेक्टीकुलर का ऊपरी भाग है जो कि प्रमस्तिष्कीय कार्टेक्स के कुछ भागों में तंतु भेजता तथा ग्रहण करता है। इस पद्धति के विखण्डन से दोनों सक्रिय CAR का धारण तथा इसे पुनः सीखने की योग्यता अधिक कम हो जाती है।

15.4.1.4 मस्तिष्क की निम्न संरचनाएँ (Lower Brain stem)

मस्तिष्क की निम्न रचनायें भी अनुबन्धन में महत्त्वपूर्ण भाग लेती हैं मध्य मस्तिष्क को उच्च तथा निम्न कुली-कुली सीखने में सहायक होती हैं। उच्च तथा निम्न कुली-कुली रहित जानवर में ध्वनि या प्रकाश के अनुबन्धित उद्दीपक की भांति प्रयोग करके कूद CAR का पूर्ण धारण रहता है।

15.4.1.5 सुषुम्ना शीर्ष (Medulla Oblongata)

कुछ विद्वानों ने सुषुम्ना शीर्ष को अनुबन्धन का महत्त्वपूर्ण अंग माना है। किन्तु इस सम्बन्ध में अन्य विद्वान ऐसा नहीं मानते हैं।

15.4.2 मस्तिष्क उद्दीपक (Brain Stimulation)

अनुबन्धन के नाड़ीय अध्ययन की दूसरी विधि में मस्तिष्क के विभिन्न भागों को विद्युतधारा द्वारा उद्दीप्त करके उसके प्रभाव का अध्ययन किया जाता है। इसमें रासायनिक उद्दीपक जैसे लार का प्रयोग किया जाता है। अनुबंधन में इस उद्दीपन को सामान्य रुप से दो वर्गों– अनुबन्धित (C.S.) या अनानुबन्धित (U.C.S.) उद्दीपक तथा अर्जित अनुबन्धित प्रतिक्रिया पर विघ्न के प्रभाव के रुप में विभक्त हैं।

15.4.2.1 अनुबन्धित उद्दीपक (Conditioning stimulus)

प्रायः प्राचीन अनुबन्धन में दृष्टि या श्रवण उद्दीपक के स्थान पर एक विद्युतीय उद्दीपक (electrical stimulus) का प्रयोग प्रमस्तिष्कीय कार्टेक्स में होता है। इस स्थिति में कुत्ते को खाना देखकर लार पैदा करने या आघात से हटने के लिए पंजे को मोड़ने को अनुबन्धित किया गया। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि सीखने में उद्दीपक सामान्यीकरण के साथ सम्बन्धित रहते हैं। अर्थात् एक बार सीखे गये कुछ असमान उद्दीपक सीखी गई प्रतिक्रियायें पैदा करते हैं। अध्ययनों के आधार पर यह पाया गया कि सामान्यीकरण प्रायः श्रवण एवं दृष्टि उद्दीपकों के मध्य ठीक होता है। सीखने की नाड़ीय कार्य प्रणाली के अध्ययन में प्रयुक्त संरचनात्मक मार्ग (anatomical pathways) अत्यन्त आवश्यक है। प्रमस्तिष्कीय कार्टेक्स के दोनों ओर तथा अन्य केन्द्रों को जोड़ने वाले मध्य कार्टिकल मार्ग कारपस कॉलोसम (carpus collosum) के अन्य शोध कार्यों में पाया गया कि अर्द्धबल्कीय मार्ग (sub-cortical pathways) अधिक महत्त्वपूर्ण है। बल्क से नीचे का मार्ग विद्युतीय उद्दीपक को अनुबन्धित उद्दीपक के समान प्रयोग करने के प्रभाव का महत्त्वपूर्ण मार्ग है।

15.4.2.2 अनानुबन्धित उद्दीपक (Unconditioned stimulus)

मस्तिष्क के कई अंगों में विद्युतीय उद्दीपक को US की भाँति प्रयोग करके गति उत्पन्न की जा सकती है किन्तु प्रमस्तिष्क कार्टेक्स का क्रियावाही क्षेत्र (motor area) सबसे अधिक संवेदनशील है। घण्टी की ध्वनि के लगभग

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

एक सैकेण्ड पश्चात् कुत्ते के क्रियावाही क्षेत्र में आघात देने पर उसके पैर में खिंचाव पैदा हुआ। यह क्रिया पुनः-पुनः दोहराने पर भी कोई प्रभाव नहीं मिला किन्तु जब पैर उठाने पर पुरस्कार स्वरुप भोजन प्रस्तुत किया तो अनुबन्धन प्रक्रिया देखी गई जिससे यह समस्या नैमित्तिक अनुबन्धन में परिवर्तित हो गई जहाँ कि विद्युतीय उत्तेजना पशुओं को सही प्रतिक्रिया पहचानने में सहायक होती है। अनेक अनुसन्धानों के निष्कर्ष बताते हैं कि गति क्षेत्र या लघु मस्तिष्क (cerebellum) में उत्तेजना से सीधे उत्पन्न गति को उचित अनुबन्धित उद्दीपक के साथ मिलाकर अनुबन्धित किया जा सकता है।

15.4.2.3 बाधाओं के प्रभाव (Interference effects)

जब मस्तिष्क उद्दीपन किसी अनुबन्धित क्रिया पर अपना प्रभाव रखता है तो प्रायः बाधाओं का प्रभाव कहलाता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि कार्टिकल उद्दीपन से नाड़ीय संबंधी प्रक्रियाओं की असामान्य मात्रा उत्तेजना के स्थान पर या उसके निकट उत्पन्न होती है। यह प्रक्रिया सामान्य क्रियाशीलता को बाधित या समाप्त कर देती है। इस सम्बन्ध में अनेक प्रयोग कार्य किये गये तथा यह पाया गया कि इस प्रक्रिया में दृष्टि अन्तर, हिप्पोकैम्पस, हाइपोथैलेमस आदि अंग ही प्रभावित होते हैं।

15.4.3 विद्युतीय सहसम्बन्धक (Electrical Correlates)

अनुबन्धन में संचित विद्युती घटनाओं को अनुबन्धन के साथ सहसम्बन्धित किया जाता है तथा इन्हें दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है— (i) इलैक्ट्रोएन-सिफेलोग्राफिक परिवर्तन अर्थात् मस्तिष्क के रिदमिक पैटर्न (Rhythmic Pattern) परिवर्तन तथा (ii) एक इकाई पर माइक्रो-इलैक्ट्रोड्स द्वारा एकत्रित इवोक्ड पोटेन्शल (Evoked Potential)।

15.5 विभेदन सीखना (Discrimination Learning)

सीखने की प्रक्रिया में प्राणी उद्दीपक एवं पर्यावरण के पदार्थों के मध्य सम्बन्धों के विषय में सीखता है। इस सीखने की प्रक्रिया को साधारण रूप से विभेदन या प्रत्यक्ष सीखना कहते हैं। क्योंकि इसमें पर्यावरण का प्रत्यक्षीकरण सम्मिलित होता है। विभेदन सीखने की दैहिक अनुक्रिया का अध्ययन निम्न तीन भागों के अर्न्तगत किया जाता है।

15.5.1 कामानुभूतिक प्रभेद (Somesthetic discrimination)

स्मिथ (Smith, 1939) ने चूहों के ऊपर यह प्रयोग करके देखा कि वे खुरदरी सतह के भेद को आसानी से समझ लेते हैं या नहीं। उसने एक उपकरण के अन्दर दो सेण्ड-पेपर लगाये जिसमें एक चिकना था और दूसरा खुरदरा। चूहे अपना भोजन प्राप्त करने के लिए दोनों मार्ग तय करते थे उनमें प्रभेद की मात्रा कहाँ तक आदत का रूप धारण कर लेती है, इसका अध्ययन करने के लिए स्मिथ ने चूहे के कार्टेक्स के भिन्न-भिन्न भागों को क्षति पहुँचायी। किसी भी क्षति से यह प्रमाणित नहीं हुआ कि चूहे में खुरदरेपन के प्रभेद की आदत पायी जाती है।

ऐलेन (Allen, 1940-47) ने कुत्तों में त्वक् प्रभेद (tactual discrimination) की मात्रा और तीव्रता का अध्ययन करने के लिए अनुबन्धन विधि का प्रयोग किया। ऐलेन ने जब कायिक क्षेत्र प्रथम (somatic area I) को निकाल दिया तो कुत्तों में त्वक् प्रभेद की मात्रा कुछ कम हो गई, परन्तु प्रभेद की स्मृति नष्ट नहीं हुई। जब कायिक क्षेत्र द्वितीय (somatic area II) को निकाल दिया गया तो कुत्तों में विस्मृति की आदत पूर्णतः पायी गयी। इस प्रकार ऐलेन इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि कुत्तों में त्वक् प्रभेद का सम्बन्ध द्वितीय सोमेटिक क्षेत्र से होता हैं।

बहुत से अन्य लोगों ने प्रिमेट्स में त्वक् एवं गतिबोधात्मक (kinesthetic) प्रभेद की आदत का पता लगाने के लिए अनुसंधान किये तथा इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि बदंर और वानर के पश्चशंखीय पालि (posterior parietal lobe) को निकाल देने के बाद यह पाया गया कि उनमें खुरदरेपन के प्रभेद की आदत की स्मृति नष्ट हो जाती है। इस प्रकार बहुत-से प्रयोग किये गये और प्रभेदी आदत धारण करने की शक्ति पर पड़ने वाले प्रभाव का मापन करने का प्रयत्न किया गया। यह भी पाया गया कि बदंरों की अपेक्षा वानर में विस्मृति की मात्रा अधिक पायी जाती है, यदि उनके पश्चशंखीय पालि को क्षति पहुँचायी जाय या निकाल दिया जाय। गतिबोधात्मक प्रभेद का ज्ञान प्राप्त करने के लिए बंदरों को भार भेद समझाते हुए शिक्षित किया गया। तत्पश्चात् उनके पूर्व केन्द्रीय, पश्चकेन्द्रीय तथा पश्चशंखीय (pre-central, post central and posterior parietal) क्षेत्रों को अलग-अलग और एक साथ निकाला गया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

किसी भी एक क्षेत्र को निकाल देने के बाद यह पाया गया कि बंदरों में भार प्रभेद की स्मृति नष्ट हो चुकी है। परन्तु एक निश्चित मात्रा में शिक्षण देने के बाद प्रभेद की स्मृति पुनः लौट आती है। इसके साथ-साथ यह भी मालूम हुआ कि पूर्व केन्द्रीय क्षेत्रों को निकाल देने से स्मृति ह्रास बहुत कम होता है। परन्तु यदि पइशंखीय (posterior parietal) क्षेत्र को क्षति पहुँचायी जाय या नष्ट कर दिया जाय तो न केवल स्मृति ह्रास बहुत अधिक होता बल्कि विस्मृति की स्थिति ही आ जाती है। इस प्रकार संक्षिप्त में यह कहा जा सकता है कि बंदरों में प्रभेदात्मक क्रियाओं को सीखने की योग्यता कार्टेक्स के किसी एक विशेष क्षेत्र पर निर्भर नहीं करती है।

15.5.2 श्राव्य सम्बन्धी प्रभेद (Auditory discrimination)

सुनने सम्बन्धी प्रभेदात्मक आदतों और विभिन्न क्रियाओं का मस्तिष्क की कार्यप्रणाली से किस प्रकार और कैसा सम्बन्ध है इसके बारे में अभी तक एक निश्चित जानकारी प्राप्त नहीं हो पायी है और अब तक जो भी प्रयोग किये गये हैं, वे असन्तोषजनक नहीं कहे जा सकते हैं। श्राव्य सम्बन्धी प्रभेद में दो बातें बहुत महत्त्वपूर्ण हैं– (1) प्रभेद की तीव्रता, और (2) सीखना। पहले के अन्तर्गत पशुओं की तीव्रता का भेद समझने के लिए प्रशिक्षण दिया जाता है। इस प्रकार पशुओं की आवाज की स्थिति और तीव्रता का भेद समझने के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए बिल्ली को आवाज की तीव्रता का भेद समझाने के लिए इस प्रकार प्रशिक्षित किया जाता है। सबसे पहले बिल्ली को एक दौड़ने वाली मंजूषा (running cage) में छोड़ दिया जाता है, फिर किसी एक प्रकार की आवाज की जाती है। यदि बिल्ली आवाज करने पर नहीं दौड़ती है तो उसे दण्ड दिया जाता है। दूसरे पहलू (सीखने) के अन्तर्गत पशु को आवाज का भेद सीखने सम्बन्धी क्रिया का अध्ययन किया जाता है। एक मत होकर वैज्ञानिक यह मानते हैं कि पशु इन आदतों को बिना श्राव्य कार्टिसेस (auditory cortices) से सीख लेते हैं। इन्हीं लोगों का यह भी विचार है कि विस्मृति का सम्बन्ध मस्तिष्क के अंदर पाये जाने वाले सुनने के क्षेत्र से है। जब एक पशु किसी आधार पर साधारण आदत को सीखता है तो उसकी वह आदत उस समय नष्ट हो जाती है तब उसके दोनों तरफ के श्राव्य कार्टिसेस (auditory cortices) निकाल दिये जाते हैं। चूहों में यह पाया गया है कि उनके सुनने के क्षेत्र का उनकी आदतों से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि चूहे के श्राव्य नष्ट कर दिये जायें तो उनकी आदतों को पुनः स्थापित करने के लिए एक विशेष शिक्षण की जरूरत होती है। अभी तक यह निश्चय नहीं हो पाया है कि श्राव्य क्षेत्र नष्ट होने के कारण चूहा अपनी जिन आदतों को भूल जाता है उन्हें वह पुनः सीख लेता है या नहीं। कुत्ते और बिल्ली के बारे में हम अधिक निश्चित हैं। उनके अंदर श्राव्य क्षेत्रों को निकाल देने से विस्मृति अधिक मात्रा में पायी जाती है, परन्तु आसानी के साथ यह दोनों अपनी भूली हुई आदतों को पुनः सीख सकते हैं।

15.5.3 दृष्टि सम्बन्धी प्रभेद (Visual Discrimination)

संवेदी सीखने के व्यावहारिक पहलू को समझने के लिए अब तक सबसे अधिक प्रयोग दृष्टि संबंधी प्रभेद पर किये गये हैं क्योंकि दृष्टि से संबंधित प्रयोग अपेक्षाकृत कुछ आसान और वैज्ञानिक पाये गये हैं। दूसरी बात यह है कि देखने से संबंधित क्रियाएँ और मस्तिष्क में पाये जाने वाले विभिन्न भागों के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त हो चुकी है। इस प्रकार संवेदी सीखने के लिए सबसे अधिक अध्ययन सामग्री दृष्टि संबंधी प्रभेदात्मक अनुसंधानों से ही प्राप्त हुई है। दृष्टि संबंधी प्रभेदात्मक अध्ययन साधातणतः चार भागों में बाँटा जाता है। इसी वर्गीकरण के अनुसार हम भी अध्ययन करेंगे। निम्नलिखित चार पहलू ही इस भाग की समस्या हैं– तीव्रता (intensity), गति (movement), आकार (pattern), और रंग (colour)।

15.5.3.1 तीव्रता (Intensity)

वैज्ञानिकों ने अपने अनुसंधानों के आधार पर यह निश्चित किया है कि मस्तिष्क के दो भाग, थैलेमस (thalamus) और उच्च कुली-कुली की दृष्टि प्रभेद की तीव्रता के कारण करने की शक्ति में और सीखने में बहुत बड़ा योग देते हैं। प्रयोग करने पर यह पता चला है कि यदि थैलेमिक न्यूकली (thalamic nuclei) को किसी प्रकार की क्षति या चोट पहुँचायी जाये तो प्रभेद की तीव्रता और सीखने के समय गति के अनुपात में कमी होती चली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जाती है। गिसैली के अध्ययनानुसार उच्च कुली-कुली के दोनों ओर के भाग को निकाल देने से सीखने की योग्यता एवं स्मृति और दृष्टि संबंधी प्रभेद की तीव्रता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है दूसरी बात यह भी है कि यदि दृष्टि कार्टेक्स (visual cortex) निकाल देने के बाद कुली-कुली को निकाला जाता है तो प्रभेद के लिए विस्मृति कि स्थिति उपस्थित हो जाती है। हालांकि पशु प्रभेद की आदत को पुन: शिक्षण के बाद सीख सकते हैं। इस प्रकार संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि उच्च कुली-कुली का तीव्रता के भेद से कोई संबंध नहीं है, किन्तु यदि दृष्टि कार्टेक्स (visual cortex) भी निकाल दी गई है तो प्रभेद की स्थिति समाप्त हो जाती है, और यह पूर्णत: निश्चित नहीं कि केवल कार्टेक्स या कुली-कुली ही प्रभेद के लिए उत्तरदायी है।

15.5.3.2 गति और रंग (Movement and Colour)

गति और रंग के प्रभेद की आदत भी दृष्टि संबंधी प्रभेद की एक महत्त्वपूर्ण समस्या है। रंग का प्रभेद किस प्रकार मनुष्य और पशु करते हैं अथवा रंगों के अंतर किस प्रकार समझते हैं, इस संबंध में हम कई स्थानों पर प्रकाश डाल चूके हैं जहाँ तक गति के प्रभेद का प्रश्न है गति विस्मृति का संबंध पशु में रेखित कार्टेक्स (striate cortex) से है, जैसा कि तीव्रता के प्रभेद में बतलाया गया है यह भी बात मानी जाती है कि जिन पशुओं के स्ट्रेट कार्टेक्स को निकाल दिया गया है और गति प्रभेद से वंचित हो गये हैं, उन्हें पुन: शिक्षण देने के बाद इस योग्य बना लिया गया कि वे गति प्रभेद को समझने लगे।

15.5.3.3 आकार प्रभेद (Pattern discrimination)

दृष्टि संचालन का संबंध रेटिना (retina) से लेकर दृष्टि कार्टेक्स तक सीमित माना जाता है। हम यह भी भली भांति जानते हैं कि किसी भी आकार और उसकी विशेषताओं का प्रत्यक्ष हमें दृष्टि कार्टेक्स से ही होता है। इस आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि यदि किसी भी प्रकार की कोई क्षति कार्टेक्स को पहुँचायी जाय तो आकार प्रभेद के लिए जो विशेष स्मृति और सीखने की क्षमता होती है वह समाप्त हो जाती है। चूहों पर प्रयोग करने के बाद यह पाया गया है कि उच्च कुली-कुली का आकार प्रभेद के सीखने पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, बल्कि Pretectual nuclei जो कि कुली-कुली के ठीक सामने होती है, आकार प्रभेद के सीखने के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह भी पाया गया है कि थैलामिक न्यूक्ली (Thalamic nuclei) भी आकार प्रभेद के शिक्षण में बहुत बड़ा योग देती है। हालांकि यह Pretectual nuclei की भाँति महत्त्वपूर्ण नहीं है। लैश्ले ने यह निश्चित कर दिया कि यदि स्ट्रेट कॉर्टेक्स का कुछ भाग निकाल दिया जाय या उसको किसी प्रकार की क्षति पहुँचायी जाय तो पशु आकार प्रभेद और सीखने की क्षमता से वंचित नहीं होते हैं। परन्तु यदि निकाले हुए भाग का अनुपात बहुत अधिक है तो उसकी क्षमता बिल्कुल समाप्त हो जाती है।

15.6 नैमित्तिक सीखना

सीखने के नाड़ीय दैहिकी आधारों पर प्रकाश डालने वाले निम्न सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये हैं—

15.6.1 कैपर्स का साहचर्य सिद्धान्त

अत्यन्त पूर्व में मनोवैज्ञानिकों का विचार था कि डेन्ड्राइट के अंदर पाये जाने वाले संकोचन एवं विमोचन के कारण कुछ अस्थायी संरचनात्मक सम्बंध उत्पन्न होते हैं जिसके फलस्वरूप कोश के संकोचन में हेरफेर होता है तथा सीखने की क्रिया अपना स्वरूप परिवर्तित कर लेती है। इस दिशा में कैपर्स ने भी शोध कार्यों के आधार पर स्पष्ट किया कि बायोइलैक्ट्रिक प्रवाह (current) के प्रभाव से एक्जोन एवं डेन्ड्राइट से जो वृद्धि होती है, उसके कुछ स्थायी संबंध स्थापित हो जाते हैं जो कि सीखने की क्रिया से संबंधित होते हैं। यह सिद्धान्त अधिक मान्यता प्राप्त नहीं कर सका क्योंकि यह निश्चित रास्ते के साहचर्य तो बनाता है किन्तु साहचर्य की दिशा की व्याख्या नहीं करता है।

15.6.2 लैश्ले का वृद्धि सिद्धान्त

लैश्ले के अनुसार यदि नाड़ी कोशों को उद्दीप्त किया जावे तो उनके आकार में वृद्धि होती है तथा जिस अनुपात में नाड़ी कोश के आकार की वृद्धि होती है उसी अनुपात में नाड़ीय आवेग की तीव्रता में भी वृद्धि होती

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

है। यदि कोश की रचना में किसी प्रकार का परिवर्तन न किया जावे तथा उसके अंदर के संचालन पदार्थ में कुछ अदल-बदल कर दी जावे तो अन्य विशेषता उत्पन्न हो जावेगी।

15.6.3 मैक्डूगल का निस्सारण सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार, सीखने की क्रिया का संबंध एक विशेष प्रकार की ऊर्जा से होता है जो कि नाड़ीय कोशों के भीतर एकत्रित होती है। उसके अनुसार जब एक न्यूरोन उद्दीप्त किया जाता है तो वह केवल उसी ऊर्जा का संचालन नहीं करता बल्कि वह अन्य कोशों का भी निस्सारण करता है जिससे कि उस न्यूरोन का आंगिक संबंध होता है।

15.6.4 तान्जी का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार किसी भी मस्तिष्क कोश (brain-cell) में होने वाले परिवर्तन ठीक उसी प्रकार के होते हैं जिस प्रकार के परिवर्तन एक कोशी जीव (amoeba) में होते हैं। जिस प्रकार से, अमीबा में अन्तःकोशीय चयापचयी परिवर्तनों के कारण डेन्ड्राइटस एवं एक्जोन में भी परिवर्तन होते हैं, इन्हीं आन्तरिक परिवर्तनों के कारण, जो कि कोश में तंत्रिका आवेग के कारण आते हैं; कोश लम्बाकार एवं दीर्घ हो जाता है। यदि यह तन्त्रिका आवेग पुनः-पुनः आता रहे तो कोशायन के दीर्घकालिक परिवर्तन के फलस्वरूप एक कोश के डेन्ड्राइट्स एवं दूसरे कोश के एक्जोन समीप आ जाते हैं, जिससे उनके मध्य उत्तेजना का संवाहन हो जाता है अन्ततः कोशों का यह सन्धि स्थल (साहचर्य-बन्ध) बन जाता है एवं स्मृति का आधार बनता है।

15.6.5 चाइल्ड(Child) का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार अनानुबन्धित उत्तेजक मार्ग (Unconditioned stimulus pathways) दोनों मार्गो में से उत्तेजना का संवाहन मुख्य एवं प्राथमिक रुप में स्वाभाविक उत्तेजक मार्गो में होता है एवं गौण एवं द्वितीय रुप से अनुबन्धिक उत्तेजक मार्गों में होता हैं। फलस्वरूप, वे कोश (मस्तिष्कीय) जिनसे कि स्वाभाविक उत्तेजना प्रवाहित है अधिक उत्तेजित हो जाते हैं एवं उनमें ऋण आइन्स (negative ions) का केन्द्रीयकरण बाह्य सतह पर हो जाता है किन्तु अनुबन्धित उत्तेजना प्रवाहित करने वाले कोश तुलनात्मक रुप से काफी कम उत्तेजित होते हैं एवं उनकी बाह्य सतह पर धनात्मक ध्रुवों के कारण परस्पर खिंचाव होता है और कार्यवाही इकाई का रुप धारण कर लेते हैं।

15.6.6 होल्ट (Holt) का सिद्धान्त

होल्ट के अनुसार गर्भकालीन विकास में प्राणी के तन्त्रिका तन्त्र में केवल यह स्थिति नहीं होती है।

(i) सांवेदिक कोश केवल बाह्य ग्राहकों एवं कोशों से जुड़े रहते हैं, किन्तु केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र में उनका सम्बन्ध नहीं होता है।

(ii) केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र, न तो सांवेदिक कोशों से एवं न प्रेरक कोशों से जुड़ा होता है।

(iii) प्रेरक कोश यद्यपि प्रेरक अवयवों के समूह से जुड़े होते हैं किन्तु केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र के किसी भी स्तर से प्रारम्भ हो सकते हैं।

15.6.7 यंग (Young) का सिद्धान्त

यंग के अनुसार स्मृति-कार्य प्रमस्तिष्क के उन खण्डों में निहित होता है, जिनको हम साहचर्य-क्षेत्र (association) के नाम से जानते हैं ये साहचर्य-क्षेत्र कोश-निर्माण की दृष्टि से बहुत ही जटिल होते हैं।

यंग का सिद्धान्त लाश्ले के उस सिद्धान्त का परिवर्तित रुप है जिसके अनुसार प्रत्यावाहन (recall) केवल कोशों के अनिश्चित सम्बन्ध (random-connections) का पुनर्वाहन (reverbration) है। यंग ने इस स्थान पर यह बतलाया कि उपर्युक्त सिद्धान्त केवल अल्पकालीन स्मृति के लिए उपयुक्त है। किन्तु दीर्घकालीन स्मृति (long term memory), कोशों की संरचना का स्थानीय परिवर्तन है। कोश में स्थानीय परिवर्तन उत्तेजना की बारम्बारता एवं दीर्घकालीनता के कारण आते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

15.7 स्मृति के सिद्धान्त और क्रिया विधि

एक सिद्धान्त के अनुसार अल्पकालीन स्मृति (Short term Memory) तन्त्रिका तंत्र की इकाई न्यूरॉनों के बीच स्थापित होने वाले रिबर्बरेटिंग सर्किट के कारण हो सकती है। इस प्रक्रिया में सूचना जब पहले न्यूरॉन तक पहुंचती है तो उससे तन्त्रिका आवेग सम्प्रेषण (Nerve impulse communication) के द्वारा दूसरे न्यूरॉन, फिर तीसरे और इसी प्रकार अन्तिम छोर तक सूचना पहुँचती है। इस बीच न्यूरॉनों की शाखाओं से होती हुई वही सूचना घूम कर वापस आती है और चक्र के रूप में घूमती रहती है। इसके कारण सूचना स्मृति में समाती जाती है।

एक अवधारणा यह भी है कि अल्पकालीन स्मृति का सम्बन्ध मस्तिष्क में होने वाली विद्युतीय एवं रासायनिक क्रियाओं से है न कि संरचनात्मक परिवर्तनों से। उदाहरणार्थ निश्चेतना, कोमा, विद्युतीय झटके आदि के परिणाम स्वरूप व्यक्ति की अल्पकालीन स्मृति कम हो जाती है। क्योंकि ये परिस्थितियाँ मस्तिष्क की विद्युतीय एवं रासायनिक क्रियाओं में हस्तक्षेप करती हैं।

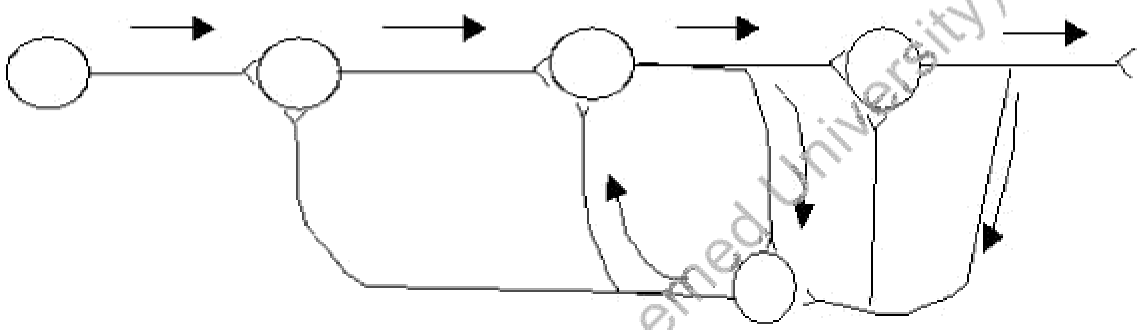

रिबर्बरेटिंग सर्किट में न्यूरॉनों के बीच सूचनाओं की चक्रीय गति से अल्पकालीन स्मृति सम्बर्धन

दीर्घकालीन स्मृति की क्षमता मस्तिष्क के अन्दर पाये जाने वाले न्यूरॉनों की संरचना एवं दो न्यूरॉनों के बीच संधिस्थान (synapse) पर होने वाले जैव रासायनिक परिवर्तनों पर निर्भर करती है। न्यूरॉनों के अन्दर संरचनात्मक परिवर्तन तब होता है जब या तो वे बार-बार उद्दीप्त हों अथवा लम्बे समय तक निष्क्रिय बने रहें। इन संरचनात्मक परिवर्तनों में संधि स्थापित करने वाले न्यूरॉनों की टर्मिनल शाखाओं में बढ़ोत्तरी, सिनैप्टिक बल्बों की आकृति में बढ़ोत्तरी तथा डेन्ट्राइट्स की शाखाओं में बढ़ोत्तरी शामिल है। इन परिवर्तनों के कारण न्यूरॉनों की क्रियात्मक क्षमता बढ़ती है। जैव रासायनिक परिवर्तनों में न्यूरोट्रांसमीटर की मात्रा में वृद्धि, उनकी गुणवत्ता में सुधार, न्यूरोट्रांसमीटर्स के रिसेप्टर्स में अभिवृद्धि तथा न्यूरोट्रांसमीटर का द्रुतगति से अभिचालन सम्मिलित है।

यह भी पाया गया है कि न्यूरॉनों की कोशिकाओं में सम्वर्गीय डी.एन.ए. और आर.एन.ए. नामक महत्त्वपूर्ण न्यूक्लीक अम्लों की मात्रा में बढ़ोत्तरी के कारण भी न्यूरॉन अपेक्षाकृत अधिक सक्रिय हो जाते हैं, जिसके परिणाम स्वरुप दीर्घकालीन स्मृति पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

नवीनतम शोध कार्यों के अनुसार एक नवीन अवधारणा सामने आई है, जिसके अनुसार मस्तिष्क में पाये जाने वाले न्यूरॉनों में विविध प्रकार की श्रृंखलाबद्ध रासायनिक क्रियाएँ होती हैं जिसके कारण उनका आपसी तालमेल स्थायी अथवा अस्थायी रुप लेता है सम्भवत: यही परिवर्तन स्मृति का आधार बनता है। जब एक न्यूरॉन में तंत्रिका आवेग उत्पन्न होकर संधि स्थल तक पहुँचता है तो वहाँ इससे न्यूरोट्रांसमीटर का स्राव होता है जो आगे वाले न्यूरॉन (पोस्ट सिनैप्टिक न्यूरॉन) के रिसेप्टर्स के साथ फिट बैठ जाता है जिसके परिणाम स्वरूप उसके कैल्सियम चैनेल खुल जाते हैं और आयनों की आमद बढ़ जाती है तथा इसमें ही पाया जाने वाला एन्जाइम 'कल्पेन' सक्रिय हो उठता है। इस एन्जाइम की सक्रियता से पोस्टसिनैप्टिक न्यूरॉन लम्बे समय के लिए सक्रिय बना रहता है। न्यूरॉन की यह सक्रियता ही स्मृति सम्बर्धन में सहायक होती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

एक अन्य अवधारणा के अनुसार कुछ न्यूरॉन ऐसे भी होते हैं जिनमें सूचना सम्प्रेषण के दो मार्ग पाये जाते हैं। इस प्रकार के न्यूरॉनों में एन.एम.डी.ए. नामक रिसेप्टर्स पाये जाते हैं ये रिसेप्टर्स न्यूरॉनों के अन्दर कैल्सियम आयनों की आमद को बहुत बढ़ाते हैं जिसके कारण न्यूरॉनों कें बीच संधि और उन संधियों में सूचना संग्रह को बढ़ावा मिलता है जो अन्ततोगत्वा दीर्घकालीन स्मृति का कारण बनता है।

15.8 अभ्यास प्रश्नावली

निबन्धात्मक प्रश्न

1. स्मृति की परिभाषा देते हुए इसके सिद्धान्तों का वर्णन करें।
2. सीखने की नाड़ीय दैहिकी के सिद्धान्तों का विवरण दीजिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. दीर्घअवधि स्मृति की व्याख्या कीजिए।
2. अनुबन्ध प्रतिवर्त सिद्धान्त क्या है?

बहुवैकल्पिक प्रश्न

1. स्मृति एनग्राम कहाँ पाया जाता है?
   (क) सिर में (ख) आँखों मे (ग) पित्ताशय में (घ) मस्तिष्क में
2. साहचर्य का सिद्धान्त किसने दिया?
   (क) कैपर्स (ख) लैश्ले (ग) तान्जी (घ) चाइल्ड

संदर्भ पुस्तकें

(i) शारीरिक मनोविज्ञान—आर. के. ओझा

(ii) फिजिओलाजिकल साइकोलोजी—जी. एल. फ्रीमैन

(iii) प्रिंसिपिल्स आफ एनाटोमी एन्ड फिजिओलोजी—जी. टारटोरा और एन. पी. एनेगनसटोकास

(iv) ह्यूमन फिजिओलोजी—वान्डर्स, शरमैन और लूसियानो

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–16 : भावावेश (संवेग) का शरीर क्रिया वैज्ञानिक आधार एवं प्रेक्षाध्यान

संरचना

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 संवेग

16.2.1 संवेग एक चेतना अवस्था के रूप में

16.2.2 संवेग व्यवहार के रूप में

16.2.3 संवेगीय अनुभव

16.2.4 संवेग एक मानसिक एवं शारीरिक घटना के रूप में

16.3 हम संवेगों से ग्रस्त क्यों हैं?

16.4 संवेगों की प्रकृति और आयाम

16.5 संवेग का सिद्धांत

16.5.1 सामान्य ज्ञान का सिद्धान्त

16.5.2 जेम्स लांगे का परिधीय संवेग सिद्धान्त

16.5.3 कैनन तथा वार्ड का केन्द्रीय सिद्धान्त

16.5.4 वाटसन का व्यवहारिक सिद्धान्त

16.5.5 संवेगों का स्वचालित प्रत्युत्तर सिद्धान्त

16.5.6 पेपज मेकलिन संवेग सिद्धान्त

16.6 संवेगात्मक व्यवहार के शारीरिक एवं स्नायुविक आधार

16.6.1 अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ

16.6.2 स्वचालित तंत्रिका तंत्र

16.6.3 मैड्यूला

16.6.4 मध्य मस्तिष्क

16.6.5 लघु थैलेमस

16.6.6 प्रमस्तिष्कीय कार्टेक्स

16.7 संवेग और प्रेक्षाध्यान

16.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

16.0 उद्देश्य

1. संवेग क्या होते हैं।
2. संवेगों की प्रकृति और आयाम के बारे में जान सकेंगे।
3. संवेगों के सिद्धांतों को जान सकेंगे।
4. संवेगों को प्रेक्षाध्यान से कैसे नियन्त्रित कर सकते हैं, को जान सकेंगे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

16.1 प्रस्तावना

संवेग वह मानसिक अवस्था है जिसमें व्यक्ति (प्राणी) अति तीव्रता से उत्तेजित हो उठता है। इस प्रकार से उत्तेजित मानसिक अवस्था के समय व्यक्ति (प्राणी) का व्यवहार एवं व्यक्तित्त्व अस्त-व्यस्त हो जाता है तथा शरीर के विभिन्न अंग विशेष प्रकार से अपना कार्य करने लगते हैं। अर्थात् संवेग की स्थिति में मानव शरीर एवं मस्तिष्क के विभिन्न अंग प्रभावित होकर कुछ विशेष प्रकार से कार्य करते हैं। यही नहीं, संवेग से प्रभावित व्यक्ति को अपनी मानसिक अवस्था के उत्तेजित होने का अनुभव भी होता रहता है।

16.2 संवेग

संवेग एक प्रेरित व्यवहार है जिसमें (मानवों में) उच्च प्रकार की चेतना विद्यमान होती है और उसमें आकर्षण एवं विकर्षण व्यवहार परिलक्षित होता है और सम्पूर्ण केन्द्रीय स्नायु मण्डल में स्वतंत्र क्रियाएँ तथा विस्तृत क्रियाएँ होती हैं। उदाहरण के लिए भय, क्रोध एवं आनन्द के संवेगों में उच्चस्तरीय प्रेरणा निहित होती है तथा आकर्षण (आनन्द में), विकर्षण (भय में) तथा आक्रामक (क्रोध में) व्यवहार होता है।

सामान्य रूप से संवेग की व्याख्या चार रूपों में की जा सकती है—

16.2.1 संवेग एक चेतना अवस्था के रूप में (Emotion as a conscious state)

विभिन्न दार्शनिकों एवं मनोविज्ञानिकों के अनुसार, बाह्य घटनाओं के प्रत्यक्षीकरण के फलस्वरूप विभिन्न प्रकार की जागृत अवस्थायें (awareness) विभिन्न चेतन अवस्थाओं के कारण होती हैं अर्थात् यही चेतन अवस्थाएँ संवेग कहलाती हैं जो कि जन्म से विभिन्न प्रकार के संवेगात्मक व्यवहार का कारण होती हैं। यह इस बात को इंगित करती हैं कि संवेगात्मक व्यवहार के लिए चेतन घटनायें आवश्यक हैं।

16.2.2 संवेग व्यवहार के रूप में (Emotion as a behaviour)

अन्य विद्वान संवेग को एक या दूसरे प्रकार का व्यवहार मानते हैं। उनके अनुसार विभिन्न संवेगों की अनुभूति में व्यक्ति का व्यवहार भी भिन्न-भिन्न प्रकार का हो जाता है। संवेग में विभिन्न प्रकार के व्यवहार शामिल हैं जैसे मानवों में मुस्कुराहट, हंसना, चिल्लाना, भय के कारण भागना और संवेग के समय अन्य मुखाकृति सम्बन्धी व्यवहार। पशुओं में पूंछ हिलाना, गुर्राना, श्वास लेना आदि प्रकट करता है कि इसी प्रकार के कई व्यवहार संवेग के प्रदर्शन में शामिल हैं, इसके अतिरिक्त मानव तथा पशुओं में कुछ स्वसंचालित व्यवहार संवेग के कारण होते हैं। जैसे भय के समय रक्त का एकत्र होना, मूर्छा के समय चेतना में एवं रक्तचाप में परिवर्तन होना। संवेग की अवस्था में ग्रन्थि स्राव का आधिक्य होना या शिथिल होना। ये स्वसंचालित संवेगीय प्रतिक्रियाओं के उदाहरण हैं। आक्रामक व्यवहार एवं भय के कारण भागने व आनन्द के संवेग पर हंसी आना कुछ संवेगीय प्रतिक्रियाओं के उदाहरण हैं।

16.2.3 संवेगीय अनुभव (Emotion Experience)

व्यक्ति संवेगीय अनुभवों की शाब्दिक व्याख्याएँ देते हैं जैसे भय का अनुभव, शांत, उत्तेजित होना। ये अनुभव इतने जटिल एवं मिश्रित होते हैं कि इनको दैहिक आधार पर वैज्ञानिक रूप से समझना कठिन है। इनका अनुभव विभिन्न प्रकार के संग्राहकों द्वारा होता है, जैसे—सुख, दु:ख के प्रभावक; त्वचीय प्रभावकों द्वारा पेशीय एवं आन्तरिक नाड़ियों पर प्रभाव डालकर अनुभव प्राप्त करना।

16.2.4 संवेग एक मानसिक एवं शारीरिक घटना के रूप में (Emotion as a mental and physiological event)

आधुनिक दैहिकशास्त्री एवं मनोवैज्ञानिक संवेग की व्याख्या मानसिक एवं शारीरिक घटना के रूप में करते हैं। उनके अनुसार, संवेगात्मक जाग्रतावस्था तथा संवेगात्मक व्यवहार शारीरिक एवं मानसिक घटनाओं के फलस्वरूप होता है। संवेगात्मक व्यवहार पर स्वचालित तंत्रिका तंत्र (ANS) तथा अन्त:स्रावी ग्रंथियाँ मुख्य रूप से अपना प्रभाव डालती हैं। जब व्यक्ति को संवेग की अनुभूति होती है तो उसके हृदय की धड़कन (heart-rate) तेज हो जाती है, रक्तचाप (BP) बढ़ जाता है, पेट में गड़बड़ होने लगती है तथा सिर के बाल व शरीर के रोंगटे खड़े हो जाते हैं। अतएव संवेग के लिए आवश्यक एवं पर्याप्त स्थिति यह है कि संवेग कुछ निश्चित स्वचालित क्रियायें मस्तिष्क के केन्द्रों में रखता है जो कि स्वचालित क्रियाओं तथा व्यवहार दोनों को नियंत्रित करता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अब हम इस व्याख्या के अन्तर्गत कुछ संवेग की परिभाषाओं का उल्लेख करेंगे क्योंकि प्रस्तुत अध्याय में हम संवेग का अध्ययन केवल मानसिक एवं शारीरिक घटना के रूप में करेंगे—

(i) कुछ मनोवैज्ञानिकों के अनुसार, "संवेग व्यवहार का प्रतिमान है जो कि अंतरांग तथा शरीर के अन्य भागों में घटित होता है।" (Emotion is a behaviour pattern that occur in the viscera and other bodily parts.)

(ii) अन्य विद्वानों की दृष्टि में, "संवेग एक कोर्टिकल सम्बंधी घटना है जो कि किसी भी स्थान– अंतरांग (viscera), कंकाल पेशी (skeletal muscle), थैलेमस (thalamus) या तीनों के मिश्रण पर प्रकट होने वाले प्रत्युत्तर प्रतिमानों पर निर्भर रहती है।" ("Emotion is a cortical event which depends upon response patterns that have occured elsewhere in the Viscera, in the hypothalamns or in some combination of three.")

(iii) कुछ व्यक्तियों के मत में "संवेग एक शारीरिक प्रतिमान है जो या तो मनोवैज्ञानिक घटना के कारण या उससे संबंधित मानसिक घटना के कारण होता है।" ("Emotion is a bodily pattern which is preceded either by psychological event or subsequent mental events.")

(iv) विलियम्स जेम्स संवेग की व्याख्या करते हुए लिखते हैं, "संवेग एक मानसिक घटना है। यह अंतरांग तथा कंकाल पेशियों में प्रकट होने वाले परिवर्तनों का प्रदर्शन है जिसमें कि परिवर्तन एक उपयुक्त उद्दीपक के प्रत्यक्षीकरण द्वारा सीधे दृष्टिगोचर होते हैं।" ("Emotion is a mental event . It is the feeling of change occurring in the viscera and the skeletal muscles, which changes have been initiated directly by perception of an appropriate stimulus.")

(v) लांगे के मत में, "संवेग वासो-प्रेरक विघ्न है।" ("Emotion is a vasomotor disturbances.")

(vi) कैनन एवं वार्ड के अनुसार, "संवेग एक मानसिक घटना है। यह एक उपयुक्त स्थिति घटित होने वाले होइपोथैलेमस के परिवर्तन पर निर्भर होती है।" ("Emotion is a mental event. It depends upon change in the hypothalamus which have been initiated by an appropriate situation.")

16.3 हम संवेगों से ग्रस्त क्यों हैं?

एक प्रश्न यह भी उठता है कि कोई ऐसा भी है जिसे कभी संवेगों की पीड़ा नहीं झेलनी पड़ी हो? इसका स्पष्ट उत्तर होता है कोई नहीं। संवेग तो मानव जीवन की अनेक शारीरिक एवं मानसिक क्रियाओं में से एक होता है। हर उम्र और वर्ग के व्यक्तियों को संवेग आते ही हैं। इन परिस्थितियों के चलते भी यह कहा जाता है कि संवेग शरीर और मन दोनों के लिए न तो लाभकारी होते हैं और न ही उपयोगी। संवेगों की स्थिति शरीर के संतुलन का नकारात्मक पक्ष होता है। यह तभी उत्पन्न होती है जब परिस्थितियों से तालमेल बिठाने में सामंजस्य स्थापित करने में कतिपय कठिनाइयाँ आती हैं। उदाहरण के लिए भय का संवेग तभी उत्पन्न होता है जब "फ्लाइट अथवा फाइट" की क्षमता कमजोर पड़ जाती है।

संवेगों का एक प्रमुख कार्य बाह्य उद्दीपनों के परिणामस्वरूप हमारी व्यावहारिक नम्यता में बढ़ोत्तरी होती है। संवेगों की स्थिति में उद्दीपनों के परिणामस्वरूप घिसी-पिटी त्वरित प्रतिक्रिया के स्थान पर हम विशेष रूप में प्रतिक्रिया के लिए सक्षम होते हैं क्योंकि इस प्रतिक्रिया का निर्धारण तात्कालिक परिस्थितियों के आधार पर होता है। यह बात और है कि यह प्रतिक्रिया सकारात्मक न होकर प्राय: नकारात्मक ही होती है। संवेगों की तीव्रता एवं प्रकृति अनुसार शारीरिक परिवर्तन घटित होते हैं और उसी के आधार पर उनके परिणामों का आकलन किया जाता है।

16.4 संवेगों की प्रकृति और आयाम

हम संवेगों को प्रकट करने अथवा उन्हें छिपाने की कला सीख सकते हैं परन्तु एक बात निर्विवाद रूप से सत्य है कि संवेगों की परिणति किसी न किसी रूप में अवश्य होती है। चित्र संख्या (1) के अनुसार जन्मजात और

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

मूलभूत संवेग बताये गये हैं जिनके चार जोड़ी विरोधी गुण होते हैं— उदाहरण के लिए सुख–दु:ख, भय और क्रोध, आश्चर्य और अनुमान, स्वीकार्यता और निराशा। इसके अतिरिक्त अन्य सारे संवेग इनके ही परिवर्तित अथवा विस्तारित रूप हैं। उदाहरण के लिए प्रेम, सुख और स्वीकार्यता का संयोग है, जबकि विस्मय भय और आश्चर्य का सम्मिश्रण है। नवीनतम विश्लेषणों से यह स्पष्ट होता है कि संवेगों में जन्मजात और बाद में धारण किये गये दोनों ही कारक सम्मिलित होते हैं।

संवेग के आयाम

चित्र सं.-1

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

16.5 संवेग का सिद्धान्त

संवेग के सिद्धान्त का विषय अति प्राचीन काल से चला आ रहा है। प्राचीन यूनानी दार्शनिकों से लेकर आधुनिक समय तक इसके सिद्धान्त के विषय में पर्याप्त चर्चा होती रही है। संवेग के समस्त सिद्धान्तों ने इसके दैहिक पहलू पर मुख्य रूप से जोर दिया। अन्य शब्दों में, सभी सिद्धान्तों ने संवेगों के प्रदर्शन होने में दैहिक तथ्यों का विशेष महत्त्व माना है। संवेगों के कई आधुनिक सिद्धान्त प्रचलित हैं किन्तु सभी दैहिक पहलुओं को मानने में एक दूसरे से भिन्न हैं। जहाँ कैनन तथा वार्ड जैसे मनोवैज्ञानिक यह सोचते हैं कि संवेग का मुख्य स्थान उपथैलेमस है वहाँ जेम्स तथा लांगे जैसे मनोवैज्ञानिक संवेगों को सीमान्त तत्त्वों (peripheral factors) के कारण बताते हैं। अन्य शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि संवेग के उत्पन्न होने में मानसिक व शारीरिक परिवर्तन होने लगते हैं। किन्तु जहाँ यह प्रश्न उठता है कि इन दोनों प्रकार के परिवर्तनों में से कौन–सा पहले आरम्भ होता है या दोनों में से कौनसा अधिक प्रधान है। इसी का मतभेद है यह निश्चय करने के लिए विभिन्न दैहिक शास्त्रियों या मनोवैज्ञानिकों ने संवेग के कई सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जिनका कि दैहिक आधार था। अब हम कुछ प्रमुख आधुनिक संवेग सिद्धान्तों की व्याख्या करेंगे—

16.5.1 सामान्य ज्ञान का सिद्धान्त (Common Sense Theory)

सामान्य सिद्धान्त के अनुसार सामान्य रूप में व्यक्तियों का यह विश्वास है कि संवेग का प्रारम्भ पहले मानसिक क्रियाओं पर पड़ता है तत्पश्चात् शारीरिक क्रियाओं में परिवर्तन आने लगते हैं। संवेगात्मक परिस्थिति के प्रत्यक्षीकरण से पहले मानसिक परिवर्तन होते हैं फिर शारीरिक परिवर्तन होते हैं इस प्रकार संवेगों का अनुभव प्रदर्शन से पूर्व होता है किन्तु इसकी कोई वैज्ञानिक पुष्टि नहीं है इसलिए यह कोई प्रामाणिक सिद्धान्त नहीं है, बल्कि यह तो विभिन्न व्यक्तियों का मत है जिसे उन्होंने अपने अनुभवों द्वारा निर्धारित किया है। चूंकि आधुनिक मनोविज्ञान का प्रयोगात्मक रूप होने के कारण घटनाओं के सरल वर्णन को स्वीकार करना असंभव है।

16.5.2 जेम्स लांगे का परिधीय संवेग सिद्धान्त (James Lange's Peripheral Theory of Emotion)

संवेग के सभी सिद्धान्तों में जेम्स लांगे का संवेग सिद्धान्त कई वर्षों से प्रमुख माना जा रहा है तथा आज भी संवेग के मनोविज्ञान में इसका स्थान एवं महत्त्व किसी भी रूप में कम नही है। इस सिद्धान्त के अनुसार, संवेग एक चेतन अवस्था (Counscious State) है जो कि संवेगात्मक व्यवहार का कारण होती है। उसने क्रोध, भय व खुशी उद्दीपक के प्रति शरीर की प्रतिक्रियाओं में चेतन अवस्था को कारण माना। उसका सिद्धान्त यह बताने का प्रयास करता है कि किस प्रकार से संवेगात्मक व्यवहार तथा संवेगात्मक अनुभव दैहिक रूप से संबंधित हैं। इस सिद्धान्त का प्रमुख नारा यह था कि संवेगात्मक प्रत्युत्तर पहले आता है तथा संवेगात्मक अनुभव उस संवेगात्मक प्रत्युत्तर के फलस्वरूप ही होते हैं।

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन 1880 के लगभग अमेरिकन मनोवैज्ञानिक जेम्स तथा डेनमार्क के शरीरशास्त्री लांगे के सहयोग से हुआ। उनका यह सिद्धान्त सामान्य ज्ञान के सिद्धान्त का विरोध था। जेम्स ने 'Mind' नाम की पत्रिका में 1884 में एक लेख प्रकाशित किया जिसमें संवेगों तथा उनके प्रदर्शनों के आपसी संबंध को बताने का प्रयत्न किया गया। उसका विश्वास था कि संवेगों की उत्पत्ति प्रमुख रूप से अन्तरावों तथा पेशियों की प्रबल शारीरिक प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप होती है। इस प्रकार की विचारधारा को लांगे ने स्वतंत्र रूप से 1885 में प्रकाशित किया उसने अपने अध्ययनों के आधार पर यह सिद्ध किया कि संवेग पूर्ण रूप से केवल शारीरिक परिवर्तनों के द्वारा होते हैं। अत: इन दोनों ही विचारधाराओं के मिश्रण को जेम्स लांगे के सिद्धान्त का नाम दे दिया गया।

दैनिक जीवन में संवेग उत्पत्ति की रूपरेखा

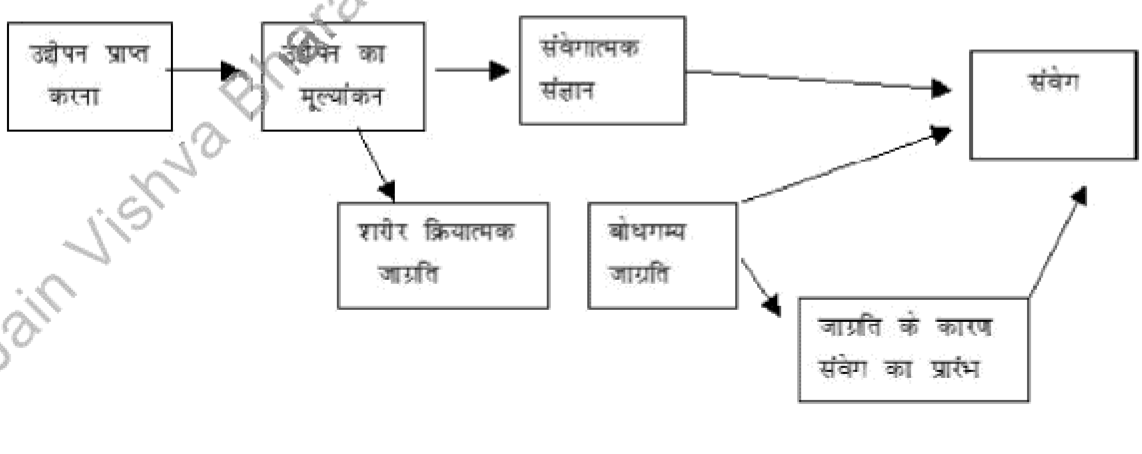

कोई उत्तेजना या घटना जिसे हम संवेग परिस्थिति कहते हैं उपस्थित होती है। शारीरिक आधार पर इसके कारण पेशीय एवं ग्रंथि सम्बंधी प्रतिक्रिया होती है। फलस्वरूप, यह प्रतिक्रिया कुछ तंत्रों को तंत्रिका संस्थान में संचालित करता है और कॉर्टेक्स में पहुंचते हैं और संवेगीय प्रतिक्रियाओं को प्रकट रूप से प्रदर्शित करते हैं और संवेग को चेतन अनुभव प्रदान करते हैं। इस सिद्धान्त का मुख्य बिन्दु यह है कि हमारा संवेगात्मक अनुभव कहाँ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अवर्गीकृत (अन्जान) कारणों से उत्पन्न संवेग की रूपरेखा

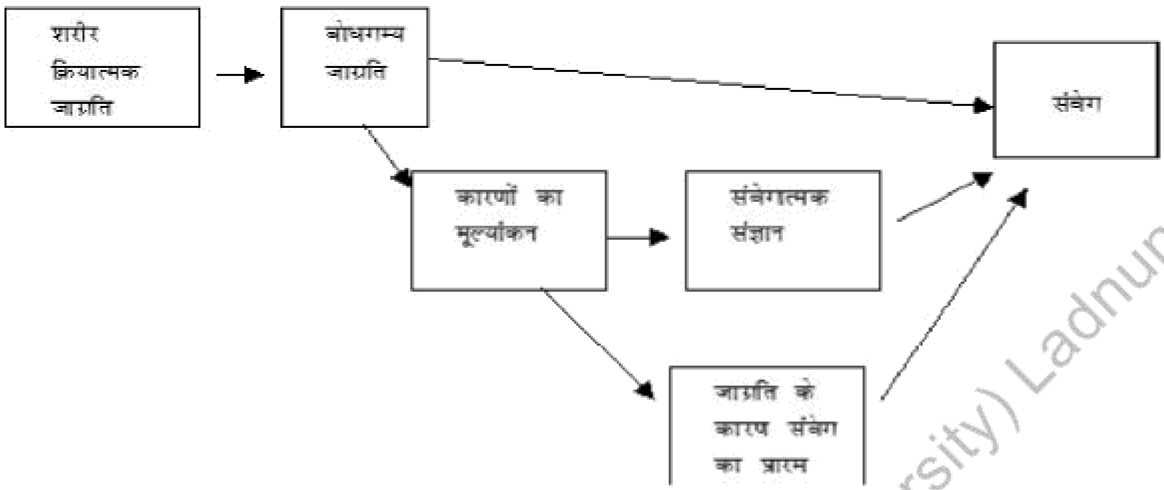

से आता है, पेशीय ग्रंथि क्रियाओं की उत्तेजना से या अंतरांग शारीरिक अवस्था से।

फ्रीमेन के अनुसार, "यह सिद्धान्त निर्धारित करता है कि अन्तरंग क्रियाएँ संवेगात्मक चेतना को उत्पन्न करती हैं तथा उद्दीपन सहज रूप से शारीरिक क्रियाओं को उत्पन्न कर देता है तथा इन परिवर्तनों के फलस्वरूप ही हमें संवेगात्मक अनुभव होते हैं। संक्षेप में, शारीरिक परिवर्तनों की भावना ही संवेगात्मक अनुभव है।" अतएव इस सिद्धान्त के अध्ययन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि संवेगात्मक परिस्थिति के प्रत्यक्षीकरण द्वारा सीधे शारीरिक तथा व्यावहारिक परिवर्तन उत्पन्न होते हैं और फिर उनकी भावनाएँ उठती हैं। अत: संवेग का प्रधान कारण शारीरिक तथा व्यावहारिक क्रियाएँ हैं, मानसिक क्रियाएँ नहीं। जेम्स का कहना है कि हम डरते हैं, क्योंकि हम भागते तथा क्रोधित होते हैं। हम चिल्लाते हैं इसलिए दु:खी होते हैं, डरते हैं इसीलिए क्रोधित होते हैं। उदाहरणस्वरूप, इस सिद्धान्त के अनुसार जब हम सांप या शेर को जंगल में देखते हैं तो पहले हम संवेगात्मक प्रत्युत्तर देते हैं तथा बाद में संवेगात्मक अनुभव महसूस करते हैं। शेर देखने के पश्चात् हम भागते हैं तथा अन्य शारीरिक क्रियाओं को करते हैं। संवेग के समय हमारे रक्त-दबाब में वृद्धि, श्वास गति में परिवर्तन, पाचन क्रिया में गड़बड़ी, आँख की पुतलियों का फड़फड़ाना तथा अन्य आंतरिक व बाह्य शारीरिक परिवर्तनों के पश्चात् ही हम शेर से डरते हैं।

जेम्स लांगे सिद्धान्त के अनुसार संवेग को निम्न रूप में निष्कासित किया जा सकता है—

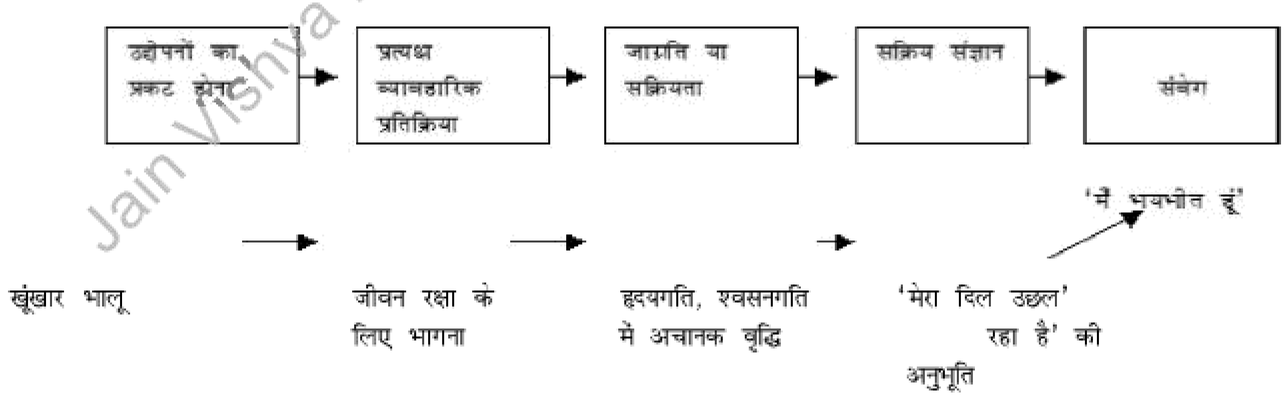

इस प्रकार से जेम्स लांगे के अनुसार, शारीरिक तथा व्यावहारिक परिवर्तनों के बिना संवेग का विचार नहीं किया जा सकता। यदि संवेगों में से इन परिवर्तनों को निकाल दिया जाय तो संवेगात्मक परिस्थिति का केवल आभास ही होगा, वास्तविक संवेग की उत्पत्ति नहीं हो सकेगी। इस सम्बंध में जेम्स कहता है, "तब भालू को देखकर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

हम भागने का ही सबसे अच्छा निर्णय करेंगे, अपमानित होने पर पीटना अपना अधिकार समझेंगे, पर वास्तव में न हम भयभीत होंगे न क्रोधित।"

इस प्रकार भय, क्रोध आदि संवेगों की उत्पत्ति बिना शारीरिक व मानसिक परिवर्तनों के नहीं हो सकती। जब तक ये परिवर्तन नहीं होंगे, संवेग सम्बंधी भावनाएँ उत्पन्न नहीं होंगी। अतः जेम्स के अनुसार, संवेग की उत्पत्ति मस्तिष्क की क्रियाओं द्वारा नहीं बल्कि प्रान्तिक क्रियाओं के द्वारा होती हैं।

16.5.3 कैनन तथा वार्ड का केंद्रीय सिद्धान्त

संवेग के केंद्रीय सिद्धान्त का प्रतिपादन कैनन तथा वार्ड ने मिलकर किया। इसे थैलेमस का सिद्धान्त (Thalamic theory) भी कहा जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार संवेगात्मक उद्दीपन के प्रत्यक्षीकरण के द्वारा संवेगात्मक अनुभव तथा आंतरिक अवयवों की क्रियाएँ एक साथ स्वतंत्र रूप से उठती हैं ग्राहकों में जो उत्तेजनाएँ उठती हैं वे सीधे थैलेमस में जाती हैं और वहाँ से एक ओर कार्टेक्स व दूसरी ओर प्रभावकों (effectors) में जाती है। इस प्रकार कॉर्टेक्स में पहुंची उत्तेजनाएँ संवेग का अनुभव और प्रभावकों की उत्तेजनाएँ शारीरिक तथा व्यावहारिक क्रियाओं का अनुभव प्रदान करती हैं। इन दोनों क्रियाओं के एक-दूसरे से स्वतंत्र रहकर उत्पन्न करने में थैलेमस भी सहायक होता है। इस प्रकार से इस सिद्धान्त का यह विश्वास है कि संवेग की उत्पत्ति लघु थैलेमस (Hypothalamus) की उत्तेजना द्वारा होती है, अन्तरावयविक क्रियाओं तथा प्रयोगों द्वारा भी पता चलता है कि लघु थैलेमस का संवेगों के अनुभवों और प्रदर्शनों में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। फिर निर्विवाद रूप से यह सत्य नहीं माना जा सकता है कि यह सिद्धान्त पूर्णतः सत्य है। इसका सबसे प्रमुख दोष इसका आवश्यकता से अधिक सरल (Simple) होना है। दूसरे, यह संवेगात्मक अनुभव और संवेगात्मक व्यवहार में संतोषजनक संबंध नहीं बताता।

अतएव संवेग के दोनों ही सिद्धान्त एक-दूसरे के विरोधाभास में है। जहाँ संवेग के सीमान्त के अनुसार पहले संवेगात्मक प्रत्युत्तर होता है तथा बाद में संवेगात्मक अनुभव होते हैं, वहाँ केंद्रीय सिद्धान्त के अनुसार संवेगात्मक अनुभव पहले होते हैं तथा बाद में संवेगात्मक प्रत्युत्तर होता है।

16.5.4 वाटसन का व्यावहारिक सिद्धान्त (Watson's behaviouristic Theory of emotion)

संवेगात्मक व्यवहार में वाटसन ने चेतना को अस्वीकार किया बल्कि उनके अनुसार व्यवहार उद्दीपक का प्रत्यक्षीकरण क्रिया द्वारा होता है जिसमें कि इन्द्रियों तथा तंत्रिका तंत्र द्वारा कार्य करता है। वाटसन के लिए क्रोध, आक्रमण, भय, भागना तथा आनंद (कामुक) व्यवहार हैं। अपने संवेग कार्य में उसने यही अनुभव किया कि इन तथा अन्य संवेगात्मक प्रत्युत्तरों में से कौन से जन्मजात हैं, किस रूप में वे प्रकट होते हैं तथा किन-किन उद्दीपकों द्वारा वे नियंत्रित किये जाते हैं।

वाटसन ने अपने प्रयोगों के आधार पर यह निश्चित किया कि बालकों में संवेगों के निम्न तीन व्यवहार वंशानुगत हैं— भय, क्रोध, काम क्रमशः Pattern X, Y, Z । उनके अनुसार जटिल संवेगात्मक व्यवहार अनुबंधन के कारण होता है। शिक्षण के अनुसार भय, क्रोध में स्वाभाविक क्रियाएँ, आदि का नियमन मस्तिष्क के केंद्रों द्वारा होता है जैसा कि झगड़े व आक्रमण की स्थिति में होता है तथा कामुक संवेगों में भी होता है।

16.5.5 संवेगों का स्वचालित प्रत्युत्तर सिद्धान्त (Autonomic response theories of emotion)

कई विद्वानों ने स्वचालित तन्त्रिका तन्त्र प्रत्युत्तरों को संवेग से सम्बन्धित माना है उनमें से अधिकांश विद्वानों का अध्ययन है कि परानुकम्पी तन्त्रिका तन्त्र (Parasympathetic N.S.) की प्रतिक्रियाएँ गुणात्मक अथवा सुखान्त (Positive or Pleasurable) संवेगों के लिए आवश्यक है जबकि अनुकम्पी तन्त्रिका तन्त्र (Sympathetic N.S.) की प्रतिक्रियाएँ क्रोध तथा भय संवेगों के लिए आवश्यक है। अन्य विद्वान प्रत्येक स्थायी संवेग के लिए सीखने के माध्यम से अन्य स्वचालित प्रतिमानों को मानते हैं। कुछ मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि विभिन्न स्वचालित प्रतिमान जन्मजात होते हैं। दूसरे शब्दों में इस सिद्धान्त के अनुसार यह भी कहा जा सकता है कि स्वचालित प्रतिक्रियायें ही संवेग हैं तथा संवेगों के लिए यह सदैव आवश्यक होती हैं। कुछ लेखकों का विश्वास है कि स्वचालित प्रतिक्रियायें

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

केवल प्रारम्भ में ही आवश्यक होती हैं किन्तु जब सीखने की क्रिया होती है तो केवल मस्तिष्क केन्द्र में क्रिया होना आवश्यक होता है जो कि सामान्य रूप से स्वचालित तन्त्रिका तन्त्र पर नियन्त्रण रखता है।

16.5.6 पेपज मेकलिन संवेग सिद्धान्त (Papaz-Mc-Lean theory of emotion)

इस संवेग सिद्धान्त के अनुसार तन्त्रिका-केन्द्र (nervous centers) संवेगात्मक व्यवहार तथा अनुभवों को व्यवस्थित करने के स्थान पर नियन्त्रित करते हैं। इन संवेगात्मक व्यवहारों के नियन्त्रण में विभिन्न केन्द्र (centers) तथा मार्ग (Path-ways) निहित रहते हैं, जैसे— (septal area of the cortex, the cortical cingulate and entorhinal areas, the hippocampus, and most of the amygdaloid nuclei. पेपज (pepaz) ने इन केन्द्रों तथा मार्गों का एक circuit इस प्रकार बताया, the entorhinal cortx to the hippocampus, thence to the hypothalamus via the fornix, from here to the anterior thalamus, and finally to the cingulate gyrus. यद्यपि इनमें से अधिकतर संरचनाएँ सूँघने की आन्तरिक रचना से जुड़ी होती हैं फिर भी पेपज (pepaz) के अध्ययनों के आधार पर ये सभी संवेगात्मक अनुभवों में भी निहित रहती हैं। बाद में पेपज के विचारों को मेकलिन ने बढ़ावा दिया तथा उसने यह भी बताया कि संवेगात्मक व्यवहार की व्यवस्था diencephalon के हाइपोथैलेमस वाले भाग तथा मस्तिष्क की संरचनाओं में होती है।

16.6 संवेगात्मक व्यवहार के शारीरिक एवं स्नायुविक आधार

अब हम संवेगात्मक व्यवहार के कुछ शारीरिक आधारों की व्याख्या करेंगे—

1. अन्त:स्त्रावी ग्रन्थियाँ (Endocrine glands)
2. स्वचालित तन्त्रिका तन्त्र (Autonomic nervous system)
3. दैहिक तथा अन्तरांग संस्थान (Somatic and visceral system)
4. अंगिक संस्थान (Limbic system)
5. मैड्यूला (Medulla)
6. मध्य मस्तिष्क (Mid-brain)
7. लघु थैलेमस (Hypothalamus)
8. थैलेमस (Thalamus)
9. प्रमस्तिष्कीय कार्टेक्स (Cerebral cotex)
10. हिपोकैम्पस (Hippocampus)
11. वातायक (Amygdala)

यहाँ हम केवल महत्त्वपूर्ण आधारों का ही उल्लेख करेंगे—

16.6.1 अन्त:स्त्रावी ग्रन्थियाँ (Endocrine Glands)

मानव के संवेगात्मक व्यवहार का सबसे प्रमुख दैहिक आधार अन्त:स्त्रावी ग्रन्थियों को माना जाता है। क्योंकि विभिन्न अन्त:स्त्रावी ग्रन्थियाँ भिन्न-भिन्न रुप से संवेगात्मक क्रियाओं को प्रभावित करती हैं। प्रयोगों के आधार पर यह सिद्ध हो चुका है कि थाइराइड ग्रन्थि भय, क्रोध आदि संवेगात्मक स्थिति में ठीक से कार्य नही करती है जिससें स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है तथा ठीक इसके विपरीत हर्ष तथा उत्साह के संवेग में इसके अधिक सक्रिय होने से स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। पैराथाइराइड ग्रन्थि व्यक्ति के संवेगात्मक व्यवहार को शान्त रखती है। एड्रीनल मैड्यूला ग्रन्थि से एड्रीनेलिन नाम का तरल पदार्थ निकलता है जो रक्त में संचारित होकर अनुकम्पी आवेगों की भाँति संवेगों को तथा संवेगात्मक व्यवहार को प्रभावित करता है। अन्य शब्दों में कहा जा सकता है कि यह ग्रन्थि संवेगों से घनिष्ठ रुप से सम्बन्धित रहती है। इसके ठीक प्रकार से कार्य न करने पर व्यक्ति के व्यक्तित्त्व में शिथिलता सी आ जाती है तथा उसका संवेगात्मक व्यवहार असन्तुलित हो जाता है। यह सभी प्रकार के संवेगों विशेष रुप से क्रोध, भय, हर्ष में अधिक रुप से सक्रिय होती है। जब

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

क्रोध, भय या किसी भी संवेग के समय हमारे शरीर को अतिरिक्त शक्ति की आवश्यकता होती है तब यह ग्रन्थि एड्रीनेलिन हॉर्मोन को रुधिर धारा में मिलाती है जिससे हृदय की गति बढ़ जाती है। थकान कम होती है, पाचन क्रिया का कार्य रूक जाता है, रक्त परिभ्रमण व श्वास गति तेज हो जाती है तथा व्यक्ति को असामान्य स्थिति में भी सन्तुलित बनाये रखती है, पियूष ग्रन्थि भी अन्य समस्त ग्रन्थियों पर अपना प्रभाव बनाये रखते हुए संवेगात्मक व्यवहार में सहायक होती हैं। यदि एड्रीनल कार्टेक्स को यह ग्रन्थि उद्दीप्त न करे तो मनुष्य में कमजोरी तथा स्वभाव में क्रोध तथा चिड़चिड़ापन आ जाता है। इसी प्रकार लिंग ग्रन्थियाँ भी संवेगों पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव रखती हैं। ये सुख, आनन्द के संवेगों का प्रदर्शन करती हैं जब दो विपरीत लिंग के व्यक्ति मिलते हैं। अतएव यह स्पष्ट ही है कि विभिन्न अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के रासायनिक स्राव संवेगात्मक व्यवहार में सहायक होते हैं।

16.6.2 स्वचालित तन्त्रिका तन्त्र (Autonomic nervous system)

स्वचालित तन्त्रिका तन्त्र के दोनों भाग अनुकम्पी तन्त्र तथा परानुकम्पी तन्त्र संवेगात्मक क्रियाओं में विशिष्ट रुप से भाग लेते हैं। जब संवेग संकटकालीन स्थिति में उत्पन्न होते हैं तो अनुकम्पी तन्त्र प्रभावित होता है। क्रोध व भय की स्थिति में यह हृदय गति, रक्त प्रवाह, रक्त-चाप तथा नाड़ी गति में वृद्धि कर देता है। पाचन क्रिया में विघटन डालता है, रूधिर दबाव को बढ़ाता है तथा एड्रीनल ग्रन्थि को उत्तेजित करता है। अतएव संवेगात्मक व्यवहार में होने वाले आपत्तिकालीन कार्यों पर यह तन्त्र अपना नियन्त्रण रखता है। संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं में यह तन्त्र भोजन के रासायनिक तथा अन्तःस्रावी सन्तुलनों को भी बनाये रखता है। इसका दूसरा भाग परानुकम्पी तन्त्र संवेगात्मक क्रियाओं में शरीर की चिकनी पेशियों तथा उत्तेजित अंगों पर नियन्त्रण रखता है। यह संवेगों के समय हृदय की गति मन्द कर देता है। यह संवेगात्मक व्यवहार में शांतिपूर्ण ढंग से नियन्त्रण रखता है। इस प्रकार से स्वचालित तन्त्रिका तन्त्र संवेगात्मक व्यवहार में महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं।

16.6.3 मैड्यूला (Medulla)

मैड्यूला संवेगात्मक व्यवहार में निहित हृदय गति का संचालन, रक्तचाप, पुतली के प्रत्युत्तर, दांतों की गड़बड़ तथा कई स्वचालित प्रतिक्रियाओं के करने में कार्य करता है। यह स्वचालित प्रत्युत्तरों का नियमन करने के लिए कई प्रतिवर्त केंद्रों को रखता है जो कि मस्तिष्क के उच्च केंद्रों विशेषतया लघु थैलेमस के प्रभाव में कार्य करते हैं। मैड्यूला में पाये जाने वाले प्रतिवर्त नियमन समस्थिति में सहायक होते हैं तथा आंतरिक पर्यावरण स्थिर बना रहे। इसके अतिरिक्त संवेगात्मक Arousal का प्रतिबल (Stress) स्थिति में जो अन्तरांग परिवर्तन (Visceral Change) होते हैं, वे भी मैड्यूला के द्वारा ही किये जाते हैं। इस क्रिया से मैड्यूला आंतरिक पर्यावरण में भी परिवर्तन ला देता है।

16.6.4 मध्य मस्तिष्क (Mid-barin)

मध्य मस्तिष्क से कार्टेक्स तक स्थानीय उद्दीपक (localized stimulation) तक शरीर का बेकार भाग (ablation) संवेगात्मक व्यवहार में परिवर्तन ला देता है। स्थानीय उद्दीपन मध्य मस्तिष्क के किसी एक भाग के उच्च केन्द्रों को जाने वाले मार्गों को उद्दीप्त कर देते हैं। जहाँ कि व्यवहार व्यवस्थित होता है जबकि दूसरी ओर ablation केवल उच्च केंद्रों में पहुंचने वाले मार्गों को बाधित कर देता है जहाँ कि व्यवहार व्यवस्थित होता है। उदाहरणार्थ मध्य मस्तिष्क में उद्दीपक वेदना के सांवेदिक मार्गों को उद्दीप्त कर देते हैं जिससे संवेगात्मक व्यवहार होने लगते हैं। मध्य मस्तिष्क के विभिन्न स्थानों में केंद्रीय भूरे पदार्थ का उद्दीपन करने से क्रोध व्यवहार, भय व्यवहार तथा भागने का व्यवहार उद्दीप्त होता है। एक अध्ययन के आधार पर यह ज्ञात किया जा चुका है कि मध्य मस्तिष्क कुछ सुरक्षात्मक संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं को व्यवस्थित करता है।

16.6.5 लघु थैलेमस (Hypo-thalamus)

लघु थैलेमस को संवेग का प्रमुख केन्द्र माना जाता है। कुछ मनोवैज्ञानिक एवं भौतिकशास्त्री जैसे कैनन एवं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

वार्ड लघु थैलेमस को ही संवेग का स्थान समझते हैं। संवेग का यह दैहिक पहलु तीन प्रकार से कार्य करता है– सर्वप्रथम, इसके माध्यम से आवेग (impulses) ग्राहकों से प्रमस्तिष्क कार्टेक्स में पहुंचकर संवेगात्मक व्यवहार उत्पन्न कर देते हैं। द्वितीय ये प्रमस्तिष्कीय कार्टेक्स आवेगों को लाते हैं तथा तृतीय लघु थैलेमस के द्वारा ही आवेग अन्तरांग एवं पेशियों को भेजे जाते हैं। इस प्रकार संवेगों के सम्बन्ध में मस्तिष्क के इस उच्च केन्द्र का अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण भाग रहता है। लघु थैलेमस क्रोध, भय, सुरक्षा तथा पुरस्कार के संवेगों का एकीकरण अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण ढंग से करता है। इसका अग्रभाग (Anterior Hypothalamus) क्रोध व्यवहार तथा पार्श्विक एवं पृच्छ भाग (Lateral and Posterior Hypothalamus) भागने के व्यवहार को उद्दीप्त कर देता है। कैनन एवं वार्ड के अनुसार तो समस्त संवेगात्मक क्रियाएँ इसी भाग में उद्दीप्त होती हैं।

16.6.6 प्रमस्तिष्कीय कार्टेक्स (Cerebral Cotex)

संवेगात्मक व्यवहार में प्रमस्तिष्कीय कार्टेक्स का एक निश्चित तथा प्रमुख भाग होता है। इस सम्बन्ध में विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने दो उपमाओं के आधार पर कई प्रयोग करके यह स्पष्ट किया है कि प्रमस्तिष्कीय कार्टेक्स का संवेगात्मक व्यवहार में क्या महत्त्व है।

16.7 संवेग और प्रेक्षाध्यान

तंत्रिका तंत्र और अन्त:स्रावी ग्रंथि तंत्र शरीर के दो प्रमुख नियन्त्रक तन्त्र हैं। जो मिलकर सभी शारीरिक क्रियाओं का नियन्त्रण एवं नियोजन करते हैं। इन दोनों के बीच क्रिया-कलापों का ऐसा विलक्षण पारस्परिक सम्बन्ध है कि वैज्ञानिकों ने इसे नाड़ी-ग्रन्थि तन्त्र (Neuro-endocrine system) का नाम दे दिया है। संवेग की अवस्था में शरीर के अंदर विभिन्न अंगों में जो भी परिवर्तन घटित होते हैं उनका नियोजन इसी तन्त्र के द्वारा होता है। नाड़ी तन्त्र विभिन्न न्यूरोनों एवं तन्त्रिकाओं (Nerves) के अन्दर जैव विद्युत के प्रवाह को यथावश्यक बढ़ाकर सम्बन्धित अंगों में उत्तेजना पैदा करता है जिसके चलते शरीर में चयापचय की दर कई गुना बढ़ जाती है। इसके साथ-साथ हाइपोथैलेमस के माध्यम से पियूष ग्रन्थि की सक्रियता बढ़ती है और फिर अन्य अन्त:स्रावी ग्रन्थियाँ अपने हॉर्मोनों का स्राव कर उस चयापचय की दर को बढ़ाये रखने में सहयोग करती हैं। इन दोनों के सम्मिलित प्रयास से संवेगों का सम्वर्द्धन होता है।

प्रेक्षाध्यान पद्धति में चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा के अन्तर्गत जब हम नाड़ी-ग्रन्थि तन्त्र के शक्ति संस्थानों की प्रेक्षा करते हैं तो उससे मुख्यतया तीन निष्पत्तियाँ मिलती हैं– पहला तंत्रिकाओं में प्रवाहित विद्युत धारा और उनसे सम्बद्ध विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र में शुद्धता आती है। तंत्रिकाओं से निकलने वाले न्यूरोट्रांसमीटर्स की मात्रा एवं गुणवत्ता में आवश्यक शुद्धता आती है। इसके परिणामस्वरूप इनके प्रभावों में भी परिवर्तन आ जाता है। इसका दूसरा परिणाम है आनन्द केन्द्र का जागरण। आनन्द केन्द्र की जागृति से प्रतिक्रिया की दर में उल्लेखनीय कमी आती है जिससे समता, साम्यता, अनुकूलता और शालीनता के भाव उत्पन्न होते हैं। चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा का तीसरा प्रभाव है शक्ति का जागरण। उद्दीपन के कारण चयापचय की दर में अनावश्यक वृद्धि हो जाती है। और ऊर्जा का अपव्यय होता है। शक्ति के जागरण के परिणामस्वरूप हमारे शरीर के वे सभी केन्द्र सक्रिय हो उठते हैं जो एन्टीडेट का कार्य करते हैं तथा अनावश्यक शक्ति-क्षय को रोकते हैं। परिणामस्वरूप संवेगों की तीव्रता में कमी आने के साथ-साथ उनकी आवृति भी घटने लगती है।

श्वास प्रेक्षा तथा कायोत्सर्ग के प्रयोग भी शरीर के ऊर्जा केन्द्रों को नियन्त्रित करते हैं। मानसिक एकाग्रता में अभिवृद्धि और शारीरिक चंचलता में कमी से संवेगों की आवृत्ति पर अंकुश लगता है।

16.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. संवेग की परिभाषा देते हुए इसके सिद्धांतों का वर्णन कीजिए।
2. संवेग की प्रकृति का विवरण देते हुए यह बताइये कि इसे प्रेक्षाध्यान द्वारा किस प्रकार नियोजित किया जा सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. संवेग किसे कहते हैं?
2. संवेग के प्रमुख आयाम बताइये।

बहुवैकल्पिक प्रश्न

1. संवेग में शरीर का कौन सा अंग/तन्त्र प्रमुख भूमिका निभाता है–
   (क) गुर्दा (ख) लीवर (ग) स्वायत्तशासी तंत्रिका तंत्र (घ) आमाशय
2. संवेग में किसकी गति बढ़ जाती है–
   (क) छोटी आँत की (ख) हृदय की (ग) पैन्क्रियाज की (घ) दाँतों की

सन्दर्भ पुस्तकें

1. फिजियालाजिकल साइकोलोजी– ल्यूकेल, एफ.
2. शारीरिक मनोविज्ञान– आर.के.ओझा
3. प्रेक्षाध्यान– थ्योरी एण्ड प्रेक्टिस-आचार्य महाप्रज्ञ (अनु.– जे.एस. झबेरी और मुनि महेन्द्रकुमार)
4. प्रेक्षाध्यान– मुनि महेन्द्रकुमार

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जैन विश्वभारती संस्थान

(मान्य विश्वविद्यालय)

लाडनूँ–341306 (राजस्थान)

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

एम.ए./एम.एस-सी. (पूर्वार्द्ध)

विषय – योग एवं जीवन विज्ञान

तृतीय पत्र : अनुप्रायोगिक मानव शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान

संवर्ग

संवर्ग–1	कोशिका, उत्तक, मांसपेशियाँ एवं अस्थि तंत्र
संवर्ग–2	तंत्रिका तंत्र, मस्तिष्क एवं सुषुम्ना
संवर्ग–3	स्वायत्तशासी तंत्रिका तंत्र एवं प्रेक्षाध्यान तथा अन्त:स्रावी ग्रंथि तंत्र एवं हार्मोन
संवर्ग–4	श्वसन तंत्र, पाचन तंत्र एवं रक्त परिवहन तंत्र
संवर्ग–5	आहार, रोग प्रतिरोधी तंत्र, स्मृति एवं भावावेश

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विशेषज्ञ समिति

1. **प्रो. संग्रामसिंह नाथावत**
   आचार्य, मनोविज्ञान विभाग
   एमिटी विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)

2. **प्रो. ए.के. मलिक**
   पूर्व आचार्य, मनोविज्ञान विभाग
   जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.)

3. **प्रो. जे.पी.एन. मिश्रा**
   प्रो. एवं डीन, स्कूल ऑफ लाईफ साईंस,
   गुजरात केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गांधीनगर

4. **डॉ. कामाख्या कुमार**
   सह–आचार्य योग विज्ञान विभाग, देव संस्कृति विश्वविद्यालय
   शांतिकुंज–गायत्रीकुंज, हरिद्वार

5. **प्रो. समणी मल्लीप्रज्ञा**
   आचार्या, जीवन विज्ञान, प्रेक्षाध्यान एवं योग विभाग
   जैन विश्वभारती संस्थान लाडनूँ (राज.)

6. **डॉ. साधना दौनेरिया**
   विभागाध्यक्ष, योग विभाग
   बरकत्तुल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

लेखक

प्रो. जे.पी.एन. मिश्रा

डॉ. प्रद्युम्नसिंह शेखावत, डॉ. युवराजसिंह खँगारोत

कॉपीराइट

जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ

नवीन संस्करण : 2017

मुद्रित प्रतियाँ : 2000

प्रकाशक

जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ–341 306 (राज.)

Printed at

M/s Nalanda Offsets, Jaipur

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विषय सूची

इकाई		पृष्ठ संख्या
संवर्ग–1 : कोशिका, उत्तक, मांसपेशियाँ एवं अस्थि तंत्र		
इकाई–1	संरचनात्मक संगठन, कोशिका संरचना एवं कार्य।	1–16
इकाई–2	उत्तक– संरचना, प्रकार एवं कार्य।	
	मांसपेशियाँ– प्रकार, क्रियाविधि एवं पेशियों का तंत्रिका अंत:स्रावी नियंत्रण।	17–29
इकाई–3	अस्थि तंत्र– कंकाल, मेरुदण्ड एवं जोड़ या संधियाँ।	30–48
संवर्ग–2 : तंत्रिका तंत्र, मस्तिष्क एवं सुषुम्ना		
इकाई–4	तंत्रिका तंत्र– संरचना, प्रकार एवं कार्यप्रणाली।	49–56
	तंत्रिका आवेग संप्रेषण, न्यूरोट्रांसमीटर, तनाव, भावावेश एवं प्रेक्षाध्यान।	
इकाई–5	मस्तिष्क– मस्तिष्क के प्रमुख भागों की संरचना एवं कार्य।	57–65
इकाई–6	सुषुम्ना– संरचना एवं महत्त्वपूर्ण कार्य।	66–69
संवर्ग–3 : स्वायत्तशासी तंत्रिका तंत्र एवं प्रेक्षाध्यान तथा अन्त:स्रावी ग्रंथि तंत्र एवं हार्मोन		
इकाई–7	स्वायत्तशासी तंत्रिका तंत्र– अनुकंपी एवं परानुकंपी प्रभाग : संरचना एवं कार्य।	70–73
इकाई–8	स्वायतशासी तंत्रिका तंत्र एवं तनाव, तनाव प्रबन्धन में प्रेक्षाध्यान की भूमिका।	74–80
इकाई–9	अंत:स्रावी ग्रंथि तंत्र एवं हार्मोन– संगठन एवं उनके महत्त्वपूर्ण कार्य।	81–93

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संवर्ग–4 : श्वसन तंत्र, पाचन तंत्र एवं रक्त परिवहन तंत्र

इकाई–10 श्वसन तंत्र की मूल संरचना, श्वसन प्रक्रिया, प्रमुख कार्य तथा श्वसन प्रक्रिया से ऊर्जा नियोजन में प्रेक्षाध्यान का योगदान। 94–102

इकाई–11 पाचन तंत्र की मूलभूत संरचना, प्रमुख कार्य, पाचन प्रक्रिया एवं ऊर्जा नियोजन में प्रेक्षाध्यान का योगदान। 103–120

इकाई–12 रक्त परिवहन तंत्र : रक्त एवं हृदय की संरचना एवं कार्य; हृदय कार्यों एवं रक्तचाप पर प्रेक्षाध्यान का प्रभाव। 121–133

संवर्ग–5 : आहार, रोग प्रतिरोधी तंत्र, स्मृति एवं भावावेश

इकाई–13 ऊर्जा की आवश्यकता– पोषक तत्त्व, शाकाहार एवं संतुलित आहार, उपवास एवं स्वास्थ्य। 134–153

इकाई–14 रोग प्रतिरोधी तंत्र का मन द्वारा नियोजन। 154–161

इकाई–15 स्मृति (Memory) और स्मृति एनग्राम (Memory Engram), सीखने एवं स्मृति की प्रक्रिया में जैव रासायनिक परिवर्तन। 162–171

इकाई–16 भावावेश (संवेग) का शरीर क्रिया वैज्ञानिक आधार एवं प्रेक्षाध्यान। 172–182

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun